CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ISSN 2250 – 0391

स्वाध्याय

पुस्तक ५९, वर्ष २०२२

योगशास्त्र विशेषाङ्क

सम्पादक
श्वेता प्रजापति

THE MAHARAJA SAYAJIRAO UNIVERSITY OF BARODA
सत्यं शिवं सुन्दरम्
Estd. 1949
Accredited 'A' Grade by NAAC

प्राच्यविद्यामन्दिर
महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ISSN 2250 - 0391

स्वाध्याय

SVĀDHYĀYA

Issue No. 59, Year 2022

योगशास्त्र विशेषाङ्क

Editor
Dr. Sweta Prajapati

THE MAHARAJA SAYAJIRAO UNIVERSITY OF BARODA

सत्यं शिवं सुन्दरम्

Estd. 1949

Accredited 'A' Grade by NAAC

प्राच्यविद्यामन्दिर

Oriental Institute

The Maharaja Sayajirao University of Baroda

Vadodara - 390 001

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ISSN 2250 - 0391

Svadhyaya

Referred and Blind 'Peer-reviewed' Annual Multilingual Research Journal

Issue No. 59, Year 2022

Editor

Dr. Sweta Prajapati

Advisory Board

Prof. Ramakant Pandey
Dept. of Sahitya, Central Sanskrit University, Jaipur - Campus, Jaipur

Prof. Rabindrakumar Panda
Dept. of Sanskrit, Pali & Prakrit, The Maharaja Sayajirao University of Baroda, Vadodara

Prof. Mansukh Moliya
Head, Dept. of Sanskrit, Saurashtra University, Rajkot

Dr. Bharat Pandya
Dept. of Gujarati, The Maharaja Sayajirao University of Baroda, Vadodara

Editorial Board

Dr. J. K. Umrethiya
Dr. Ramanath Pandey
Dr. Sharmila Bagchi
Dr. Vipul Patel
Dr. Nandkishor Mishra

Address

Director
Oriental Institute
Opp. Palace Gate, Palace Road
The Maharaja Sayajirao University of Baroda, Vadodara - 390 001
Phone: (+91-265) 2425121, **(M)**: 9898472669
E-mail : director-oriental@msubaroda.ac.in
Website : www.msubaroda.ac.in

Subscription : ₹ 300/- Annual (For India) / $ 50 Annual (For Foreign Countries)

Note: The statements and views expressed by the authors of articles in this journal are their own and not necessarily of the Editorial Board.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धर्मेन्द्र प्रधान
ଧର୍ମେନ୍ଦ୍ର ପ୍ରଧାନ
Dharmendra Pradhan

सत्यमेव जयते

मंत्री
शिक्षा; कौशल विकास
और उद्यमशीलता
भारत सरकार
Minister
Education; Skill Development
& Entrepreneurship
Government of India

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा (गुजरात) का सुख्यात अध्ययन केंद्र – प्राच्यविद्यामन्दिर (Oriental Institute) अपनी प्रतिष्ठित पत्रिका 'स्वाध्याय' का 59वां अंक "योग-विशेषांक" के रूप में प्रकाशित करने जा रहा है।

भारतीय मानस सनातन रूप से ज्ञान का उपासक रहा है। इसलिए भारतीय ज्ञान प्रणाली (Indian Knowledge System) का सभी ज्ञानानुशासनों में लगभग एकाधिकार रहा है। विज्ञान, प्रौद्योगिकी, आध्यात्म, दर्शन, योग, साहित्य, कला तथा खगोलशास्त्र जैसे क्षेत्रों में वैचारिक गहराइयों तक उतरकर हमारे प्राचीन मनीषियों ने हमें जो ज्ञान का खज़ाना दिया है, वह न सिर्फ भारत के लिए बल्कि पूरे विश्व के लिए एक विरासत की तरह है। भारतीय ज्ञान पद्धति की जड़ें 'श्रुति-वेद' से जुड़ी हुई हैं जिसमें हमारी आध्यात्मिकता और योग की भी अलौकिक परम्परा शामिल है। यह परम्परा भारत के सात ब्रह्म-ऋषियों (सप्तऋषियों) द्वारा स्थापित की गई महान परम्परा है।

महर्षि पतंजलि के अमर ग्रंथ 'योगसूत्र' के अनुसार – चित्त की वृत्तियों को चंचल होने से रोकना (चित्तवृत्तिनिरोधः) ही योग है। वहीं श्रीमद् भगवत गीता में योग के महत्व का निदर्शन कराते हुए कहा गया है – "योगः कर्मसु कौशलम्" अर्थात् योग से ही कर्मों में कुशलता है। आध्यात्मिक उन्नति, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए योग का निर्विवाद महत्व है। आधुनिक युग में तो योग का महत्व और अधिक बढ़ गया है। आज के समय की प्रतिस्पर्धा, प्रदूषण, भाग-दौड़ और तनाव में योग अधिक आवश्यक हो गया है। इसलिए 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः' के हमारे आदर्श को विश्व-पटल पर रखते हुए आदरणीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने प्रतिवर्ष 21 जून को 'अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस' मनाने का निर्णय लिया था। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी विद्यार्थियों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास पर केन्द्रित है, जिसमें योग सहित भारतीयता के पक्षों पर विशेष बल दिया गया है। मुझे आशा है कि 'प्राच्यविद्यामन्दिर' जैसे प्रतिष्ठित संस्थान इस नीति के क्रियान्वयन में अपनी महती भूमिका का निर्वहन करेंगे।

मैं प्राच्यविद्यामन्दिर (Oriental Institute) को इस महत्वपूर्ण विषय पर अंक प्रकाशित करने के लिये हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ देता हूँ।

धर्मेन्द्र

(धर्मेन्द्र प्रधान)

सबको शिक्षा, अच्छी शिक्षा — स्वच्छ भारत — कौशल भारत, कुशल भारत

MOE - Room No. 3, 'C' Wing, 3rd Floor, Shastri Bhavan, New Delhi-110 115, Phone : 91-11-23782387, Fax : 91-11-23382365
MSDE - Room No. 516, 5th Floor, Shram Shakti Bhawan, Rafi Marg, New Delhi-110001, Phone : 91-11-23465810, Fax : 011-23465825
E-mail : minister.sm@gov.in, minister-msde@gov.in

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सत्यं शिवं सुन्दरम्
Estd. 1949

The Maharaja Sayajirao University of Baroda
Accredited 'A' Grade by NAAC

Maharaja Fatehsinghrao Gaekwad Road, Fatehgunj
Vadodara-390 002, Gujarat, India

शुभेच्छा संदेश...

प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा द्वारा प्रकाशित संशोधन पत्रिका ''स्वाध्याय'' का यह ५९वाँ अङ्क **''योगशास्त्र विशेषाङ्क''** के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है । प्राच्यविद्यामन्दिर के तत्कालीन निदेशक प्रो. भोगीलाल सांडेसरा द्वारा ई. स. १९६१ से प्रारम्भ हुआ ''स्वाध्याय'' भारत के अध्येताओं एवं विद्वानों के समक्ष एक गुणवत्तायुक्त संशोधन पत्रिका के रूप में सर्वस्वीकृत हुआ है ।

प्रस्तुत **''योगशास्त्र विशेषाङ्क''** में भारत के विशिष्ट विद्वानों द्वारा लिखे हुए १७ शोधलेखों का समावेश हुआ है । इस अङ्क की यह विशेषता है कि प्राच्यविद्यामन्दिर में संगृहीत अज्ञात योग ग्रन्थों का पाण्डुलिपि के आधार पर प्रथम बार सम्पादन एवं प्रकाशन हुआ है ।

आज समस्त विश्व 'योग' शब्द से परिचित है और इसे मनुष्य के स्वास्थ्य से जुडे विज्ञान के रूप में स्वीकार किया गया है । इसका महत्त्व समझते हुए संयुक्त-राष्ट्र-परिषद् ने २१ जून को प्रतिवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय विश्वयोगदिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया है । साम्प्रत समय में स्वामी शिवानन्द, बाबा रामदेव इत्यादि विशेषज्ञों ने योग का भारत और विदेश की भूमि पर भी प्रचार-प्रसार किया है । मैं आशान्वित हूँ कि प्राच्यविद्यामन्दिर द्वारा प्रकाशित प्रस्तुत **''योगशास्त्र विशेषाङ्क''** विद्वानों, विद्यार्थियों और योग में रुचि रखने वाले सभी सुधीजनों को उपयोगी सिद्ध होगा । इस विशेष प्रकाशन के लिये मैं प्राच्यविद्यामन्दिर को हार्दिक अभिनन्दन और विशेष शुभेच्छा प्रदान करता हूँ ।

प्रो. (डॉ.) वी. के. श्रीवास्तव
कुलपति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुरोवचन

प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा द्वारा प्रकाशित संशोधन पत्रिका ''स्वाध्याय'' का यह ५९वाँ अङ्क **''योगशास्त्र विशेषाङ्क''** के रूप में आप सभी विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अतीव आनन्द एवं सन्तोष का अनुभव कर रही हूँ । प्राच्यविद्यामन्दिर के तत्कालीन निदेशक प्रो. भोगीलाल सांडेसरा द्वारा ई. स. १९६३ से प्रारम्भ हुआ ''स्वाध्याय'' (वार्षिक) भारत के अध्येताओं एवं विद्वानों के समक्ष एक गुणवत्तायुक्त संशोधन पत्रिका के रूप में स्वीकृत है ।

स्वाध्याय में पिछले तीन अङ्कों से गुजराती के उपरान्त हिन्दी और संस्कृत भाषा में लिखे गये आलेख भी समाविष्ट किये जा रहे हैं । इसके पूर्व ''स्वाध्याय'' में ''शताब्दी विशेषाङ्क'', ''गुजरातनुं रूपक क्षेत्रे प्रदान'', ''श्रीमद्भागवत विशेषाङ्क'' और ''पाण्डुलिपि विशेषाङ्क'' प्रकाशित हुए हैं । प्रस्तुत अङ्क को ''योगशास्त्र विशेषाङ्क'' बनाने के पीछे एक उद्देश्य सन्निहित रहा है । अनेक वर्षों से संरक्षित पाण्डुलिपियों में सन्निहित ज्ञान से परिपूर्ण प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन, सम्पादन एवं प्रकाशन हो तभी प्राच्यविद्यामन्दिर जैसी संस्था की स्थापना का महाराजा सयाजीराव गायकवाड का स्वप्न साकार होगा ।

''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'' (पातञ्जलयोगसूत्र, १.२) योग सभी चित्तवृत्तियों का पूर्णरूप से निरोध है । चित्तवृत्तियों पर आध्यात्मिक अनुशासन (अङ्कुश) को योग कहते हैं । यह एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है । आज समस्त विश्व 'योग' शब्द से परिचित है व इसे एक स्वास्थ्य से जुडे विज्ञान के रूप में स्वीकार करता है । ११ दिसम्बर २०१४ से संयुक्त राष्ट्र परिषद् ने दि. २१ जून को प्रतिवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय विश्व-योग-दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया है । इससे समस्त विश्व का ध्यान योग की तरफ आकर्षित हुआ है ।

योग को आज जीवन का आवश्यक अङ्ग बनाने में हमारे आधुनिक योगगुरुओं का बहुत बडा योगदान रहा है । आधुनिक योग के जनक तिरुमलाई कृष्णमाचार्य, स्वामी शिवानन्द, बी. के. एस अय्यर, महेश योगी, परमहंस योगानन्द, कैवल्यानन्द, बाबा रामदेव आदि ने सम्पूर्ण विश्व में अपनी संस्थाओं द्वारा योग का विधिवत प्रचार-प्रसार किया है ।

इसी प्रयास में आगे बढते हुए हमने इस बार ''स्वाध्याय'' पत्रिका का ''योगशास्त्र विशेषाङ्क'' प्रकाशित करने का प्रयास किया है । हमारे संस्थान के पाण्डुलिपि सङ्ग्रह में योग विषय पर अनेक अप्रकाशित ग्रन्थ उपलब्ध हैं । हमारा प्रयास था कि इनमें से कुछ ग्रन्थों को सम्पादित कर इस अङ्क

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में प्रकाशित किये जाएँ एवं हम अपने इस प्रयास में सफल भी रहे । ८ अप्रकाशित ग्रन्थ सम्पादित कर इस अङ्क में सम्मिलित किये गये हैं । इनके अतिरिक्त पुराणों में योग, विशेष रूप से आयुर्वेद में योग, मनोविज्ञान और योग, अष्टाङ्ग योग पर आलेख भी सम्मिलित किये गये हैं ।

कुछ ग्रन्थों की एक से अधिक प्रतिलिपियाँ अन्य संस्थानों में होने पर भी अनुपलब्ध ही रहीं । इसलिए उन ग्रन्थों का एक ही पाण्डुलिपि के आधार पर सम्पादन किया गया, जबकि कुछ ग्रन्थों की एक एक ही पाण्डुलिपि प्राप्त हुई थी । तथापि ''योगः कर्मसु कौशलम्'' का अनुसरण करते हुए हमने इस विशेषाङ्क को प्रारूप देने का प्रयास किया है । इस प्रयास में सहयोग देने वाले सभी विद्वान् ही इस संस्था की वास्तविक पूँजी है ।

इस अङ्क में प्रो. सत्यव्रत वर्मा, डॉ. धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी, प्रो. मनसुख मोलिया, प्रो. रवीन्द्रकुमार पण्डा, प्रो. बनमाली बिश्वाल. डॉ. अनिलकुमार, डॉ. शैलेषकुमार मिश्र, डॉ. वी. सौम्यनारायणन् आदि प्रौढ-विद्वानों के १७ लेख हमें प्राप्त हुए हैं तथा इस क्षेत्र में कार्य करने के लिए उत्सुक जिज्ञासुओं के पास से भी छोटे-छोटे ग्रन्थों को सम्पादित कराया गया है । सामान्यतः कुछ ग्रन्थ छोटे होने के कारण उपेक्षित अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं इसलिये उनका सम्पादन करवा कर नई पीढी को सम्पादन कार्य में संलग्न करके उनको प्रशिक्षण प्रदान करने का सत्प्रयास भी इस अङ्क द्वारा किया गया है । डॉ. किरण शिंग्लोत का योग और चिकित्सा से संबंधित लेख व्यावहारिक तौर पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण है ।

''स्वाध्याय'' के प्रस्तुत ५९वे अङ्क के प्रकाशन में डॉ. जयन्त उमरेठिया एवं समस्त सम्पादक-समिति-मण्डल के उत्साह एवं सूक्ष्मदृष्टि के कारण कार्य अनायास ही सिद्ध एवं फलीभूत हो गया । परामर्शक-समिति का मार्गदर्शन एवं महत्त्वपूर्ण निर्देश हमारा मार्ग प्रशस्त कर देता है । महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय की साधना प्रेस के प्रबन्धक श्री जतिन सोमाणी जी का सहयोग भी उल्लेखनीय है । मैं तो केवल निमित्तमात्र बनकर गौरवान्वित अनुभव करती हूँ ।

प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा द्वारा प्रस्तुत ''स्वाध्याय'' का **''योगशास्त्र विशेषाङ्क''** सुधीजनों को अवश्य रुचिकर लगेगा ऐसा हमें विश्वास है । आपके मन्तव्य एवं सहयोग की अपेक्षा के साथ ।

संवत् २०७८, अक्षयतृतीया
३ मई २०२२

श्वेता प्रजापति
कार्यकारी निदेशिका
प्राच्यविद्यामन्दिर, वडोदरा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वाध्याय

पुस्तक ५९, वर्ष २०२२

अनुक्रमणिका

संस्कृत

०१. योगसिद्धामृतम्-हस्तलेखाधारेण सम्पादितोऽप्रकाशितो योगग्रन्थः - बनमाली बिश्वालः १-२५

०२. दत्तात्रेययोगशास्त्रम्-अप्रकाशितग्रन्थस्य सम्पादनम् - रवीन्द्रकुमारः पण्डा २७-४०

०३. योगसारः-अप्रकाशितग्रन्थः - अनिलकुमारः ४१-५९

०४. योगेनान्ते तनुत्यजः रघवः - वी. सौम्यनारायणन् ६१-६६

०५. मनोविज्ञानस्य विषये योगशास्त्रस्य प्रसङ्गः - एस. नरसिम्हन् ६७-७६

०६. योगदर्शनानुसारं यमस्वरूपम् – बी. केशवप्रपन्नः पाण्डेयः ७७-८२

०७. योगदर्शनानुसारेण प्राणायामस्वरूपप्रतियादनम् - वी. बालाजी ८३-८६

हिन्दी

०८. पातञ्जलयोगशास्त्रप्रक्रिया-पतञ्जलि के योगसूत्रों का विहगावलोकन - शर्मिला बागची ८७-१०४

०९. अच्युत विरचित "संयमसत्कृतिः" एक अप्रकाशित ग्रन्थ - नन्दकिशोर मिश्र १०५-११४

१०. पुराणों में योगाङ्गविमर्श - धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी ११५-१३४

११. कूर्मपुराण और अग्निपुराण में अष्टाङ्गयोग के स्वर - सत्यव्रत वर्मा १३५-१४१

१२. योग के अष्टाङ्ग आर्युर्वेदशास्त्रीय अवधारणाएँ - शैलेष कुमार मिश्र १४३-१५८

१३. गोरक्षनाथ की योग-परम्परा - गोविन्दकुमार टी. वेकरिया १५९-१७४

ગુજરાતી

१४. યોગનો ચિકિત્સાલક્ષી પ્રયોગ – કિરણ ન. શીંગ્લોત १७५-१८३

१५. ગોરક્ષનાથવિરચિત નિરંજનપુરાણ – મનસુખ કે. મોલિયા १८५-१९९

१६. શ્રીગરીબગિરિ કૃત યોગપાવડી : પરિચય – જે. કે. ઉમરેઠિયા २०१-२०९

१७. શિવયોગસારસઙ્ગ્રહઃ-શિવયોગની એક અપ્રકાશિત કૃતિ- શ્વેતા પ્રજાપતિ, હર્ષલ ભટ્ટ २११-२२१

१८. प्राच्य-विद्यामन्दिर की वार्षिक गतिविधियाँ-२०२१-२०२२ २२३-२२५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

योगसिद्धामृतम्
(हस्तलेखाधारेण सम्पादितोऽप्रकाशितो योगग्रन्थः)

बनमाली बिश्वालः*

प्रस्तावना

योगसिद्धामृतमित्याख्यस्याप्रकाशितस्य प्रस्तुत-योगग्रन्थस्य हस्तलेखो मया बडौदास्थात् प्राच्यविद्यानुसन्धानकेन्द्रात् सम्प्राप्तः । ३५ पत्र -विशिष्टस्य तदनुसारेण ७० पृष्ठसम्बलितस्य चास्य हस्तलेखस्य अधिगमसङ्ख्या १२१४५ इत्यङ्कितमस्ति । ०९x०५ 'से.मी.' इत्याकारविशिष्टे चास्मिन् हस्तलेखे प्रतिपृष्ठं षट् पङ्क्तयः तथा प्रतिपङ्क्ति च १४-१५ अक्षराणि सन्ति । अस्य हस्तलेखस्य भाषा संस्कृतं तथा लिपिः देवनागरी वर्तते । योगपरके कारिकामये चास्मिन् ग्रन्थे सर्वमाहत्य अनुष्टुप्छन्दोबद्धाः १७२ कारिकाः विलसन्ति ।

उपर्युक्तस्य अस्य हस्तलेखस्याधारेण प्रस्तुतोऽयश्च योगविषयको ग्रन्थः ऐदम्प्राथम्येन मया सम्पादितः यश्चेदानीं तत एव प्रकाशितायां स्वाध्याय-पत्रिकायां प्रकाश्यते । दौर्भाग्यात् न कुत्रापि हस्तलेखे (न पुष्पिकायां न वाऽन्यत्र) लेखकस्य लिपिकारस्य वा नाम तत्रोल्लिखितं वर्तते ।

सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थः शिवपार्वत्योः संवादरूपेण निबद्धो वर्तते । संवादक्रमे शिवस्य कृते मुख्यतया ईश्वरशब्दस्य तथा पार्वत्याः कृते च देवीशब्दस्य प्रयोगो वर्तते । किन्तु शिवस्य कृते तत्र अन्यानि नामान्यपि सन्ति - यथा साम्बः, उमापतिः, श्रीचन्द्रचूडः, श्रीशम्भुः, श्रीपार्वतीपतिः, अम्बिकापतिः तथा श्रीसोमसुन्दरश्चेति । एवमेव पार्वत्याः प्रसङ्गेऽपि कल्याणी, भवानी, शाम्भवी, श्रीशङ्करी तथा करुणामृतसागरादीनि नामानि तत्रोपलभ्यन्ते । तयोश्च संवादः योगविषयको वर्तते । अत्र पार्वती शिवं योगविषयकान्प्रश्नान् पृच्छति । तद्यथा ग्रन्थस्यारम्भे सा पृच्छति यत् संसारे सर्वे जीवाः सुखदुःख-मायाजालेन आबद्धाः सन्ति । तेषां मुक्तिरस्मात् मायाजालात् कथं सम्भवतीति कृपया तन्मार्गान् उपदिशतु । यद्यपि नैके मार्गा भवता पूर्वमप्युपदिष्टाः किन्त्विदानीमेकं मोक्षदं मार्गमुपदिश । यथोक्तं मूलग्रन्थो

सर्वे जीवास्सुखैर्दुःखैर्मायाजालेन वेष्टिताः ।
तेषां मुक्तिः कथं देव! कृपया वद शङ्कर ॥२॥

'स्वाध्याय' - पु. ५९, वर्ष २०२२, पृ. १-२५. ISSN 2250-0391

* केन्द्रीय-संस्कृत-विश्वविद्यालयः ५६-५७, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी, नई दिल्ली-११००५८, M: 09450781742, Email: banamali7@gmail.com

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वसिद्धिकरं मार्गं मायाजालनिकृन्तनम् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिनाशनं सुखदं पदम् ॥३॥

नानामार्गस्त्वया पूर्वं कथितास्तु महेश्वर ।
अधुना मोक्षदं मार्गं ब्रूहि योगविदां वर ॥४॥

पार्वत्याः प्रश्नान् श्रुत्वा शिवोऽपि तस्याः प्रश्नानामुचितं समाधानं प्रदातुं वदति -

बद्धा येन विमुच्यन्ते नास्ति मार्गमतः परम् ।
तदहं कथयिष्यामि तव प्रीत्या महेश्वरि ॥५॥

नानामार्गैस्तु दुष्प्राप्यं कैवल्यं परमं पदम् ।
सिद्धमार्गेण लभते नान्यथा शिवभाषितम् ॥६॥

अत एव ग्रन्थकारेण ग्रन्थस्य योगसिद्धामृतमिति शीर्षकं स्वीकृतं यच्च सर्वथोपयुज्यते । अत्र च सर्वादौ योगसिद्धामृतमित्यस्य शीर्षकस्योपरि काचित् चर्चा करणीया । योगसिद्धामृतमित्यस्य व्युत्पत्तिः कदाचिदेवं कर्तुं शक्यते-योगसिद्धो अमृतम् योगसिद्धामृतम् अर्थाद् योगस्य सिद्धौ अमृतरूपोऽयं ग्रन्थः । अथवा एवमपि वक्तुं शक्यते योगसिद्धिरूपममृतम् एतद्ग्रन्थमाध्यमेन लभ्यते अथवा योगसिद्धान्तरूपममृत-मस्माद् ग्रन्थाल्लभ्यते । अथवा योगस्य सिद्धिर्जीवने अमृतत्वं साधयतीति सूचयितुं शीर्षकमिदं ग्रन्थकारेण चित्तं स्यात् । ग्रन्थस्य मङ्गलाचरणाद् यद्यप्येतत् पूर्णरूपेण नैव स्पष्टीभवति यद् ग्रन्थलेखकः शैवो वा वैष्णवो वेति, किन्तु तस्य शैवत्वपक्षः प्रबलः प्रतीयते । यतोहि तत्र मङ्गलमाचरन् लेखको वदति-

नमस्ते परिपूर्णाय जगदानन्दहेतवे ।
सदाशिवजगन्नाथकारुण्यामृतवारिधे ॥१॥

वस्तुतोऽत्र सदाशिवपदं तु शिवार्थं बोधयति । किन्तु तत्र प्रयुक्तं जगन्नाथपदं कदाचिद् भ्रममुत्पादयति । किमेतत्पदेन भगवतो जगन्नाथस्य ग्रहणमथवा शिवस्य । परन्तु जगदिति पदं विश्ववाचकम् । अतो जगन्नाथोऽपि विश्वनाथो भवितुमर्हति । ग्रन्थश्च शिवपार्वत्योः संवादात्मको वर्तते । अतोऽत्र शिवार्थः सर्वथा सार्थकीभवति । अन्तिमपुष्पिकायामपि ग्रन्थकारो लिखति-

नमस्ते योगिराजाय सर्वज्ञाय नमो नमः ।
इति सदाशिवानुगृहीतं योगसिद्धामृतं सम्पूर्णम् ॥१५४॥

अत्र स योगिराजं शिवं नमस्करोति तथा चात्मानं सदाशिवानुगृहीतं मनुते । अत एव लेखकः शैवो वर्तते इति वक्तुं शक्यते ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यथा मया पूर्वमुल्लिखितं प्रस्तुतो ग्रन्थो योगविषयको वर्तते । ग्रन्थस्य मुख्यं लक्ष्यं भवति कैवल्यस्य परमपदस्य प्राप्तिः । तच्च योगशास्त्रेण योगसाधनया वा सम्भवति । अतो योगशास्त्रस्य ऐतिहासिकं क्रमविकासं तथा योगसिद्धान्तस्य स्वरूपञ्च किञ्चित् परिशीलयामः ।

सर्वेषां भारतीय-शास्त्राणामेकमेव लक्षं वर्तते- धर्मार्थकाममोक्ष-रूप-चतुर्वर्ग-पुरुषार्थ-प्राप्तिः । एषु अन्तिमपुरुषार्थाय मोक्षाय वैदिकर्षिभिः समधिकं महत्त्वं प्रदत्तम् । धर्मार्थौ च मोक्ष-कामयोः साधकौ परिगण्येते । अनयोरपि कामो दुःखदोऽस्तीत्यतः मोक्ष एव पुरुषार्थेषु श्रेष्ठो मतः । महर्षेः श्री-अरविन्दस्य मतानुसारं योगो नाम स एव प्रयासः यः परमात्मानमात्मना मेलयति । अर्थाद् योगो नाम कश्चन योजकः सम्बन्धः । वैशेषिकदर्शन-प्रवर्तकेन कणादेन धर्म-मोक्षौ योजयितुं प्रयासो विहितः तथा धर्मं परिभाषयता तेनोक्तम् - यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः । एवं तेन धर्मदर्शनयोर्मध्ये एकं स्वस्थं सम्बन्धं प्रतिष्ठापयितुं प्रयत्नः कृतः । धर्मदर्शनयोर्मध्ये यः स्थूलो भेदोऽस्ति स चायं वर्तते यद् धर्मः कर्मकाण्डोपरि आधृतः, मोक्षश्च ज्ञानकाण्डोपरि । किन्तु योगः उभयोः प्रसङ्गे काञ्चित् महत्त्वपूर्णां भूमिकां निर्वहति । कथनस्यावश्यकता नास्ति यद् वैराग्यं विना जन्म-चक्रान्मुक्तिः न सम्भवति । किन्तु वैराग्यमपि आत्मसंस्कारं चित्तशुद्धिं वा विना न सम्भवति । चित्तशुद्धिरपि योगाभ्यासं विना न सम्भवति । अतः समेषां जीवने योगस्य अनिवार्यता वर्तते ।

एवं भारते आस्तिक-नास्तिक-दार्शनिक-चिन्तनेषु योगदर्शनस्य महत्त्वमनस्वीकार्यम् । चार्वाकातिरिक्तेषु प्रायः समेषु भारतीय-दर्शनेषु न केवलं चित्त-शुद्धतायाः किन्तु चारित्रिकपरिष्काराणां विविधसंयमानामनिवार्यतोपरि बलं प्रदीयते । वस्तुतः अयमेव योगदर्शनस्य प्रमुखः प्रतिपाद्यो विषयः वेदान्त-दर्शनस्य साधन-चतुष्टये, न्यायदर्शनस्य अध्यात्म-विध्युपाये तथा बौद्ध-जैन-दर्शनयोः तत्तद्ग्रन्थेषु विविध-प्रसङ्गेषु च योगविषयकं चिन्तनं द्रष्टुं शक्यते । योग-योगदर्शनयोर्मध्ये तथैव भेदः यथा धर्म-धर्मदर्शनयोर्मध्ये । योगदर्शने योग-विधीनाम्, अवस्थानां तथा चोपलब्धीनां दार्शनिकं विवेचनं वरीवर्तते । कश्चन योगी योग-दार्शनिको भवेदिति नास्ति नियमः किन्तु कश्चन योग-दार्शनिको योगीनां जीवन-दर्शनैरवश्यमेव परिचितो भवेत् ।

योग-शब्दोऽयं युज्-धातोः, युजिर्-धातोर्वा भावाद्यर्थेषु घञ्-प्रत्यययोगेन निष्पन्नो भवति । वस्तुतः युज्-धातुः पाणिनीय-धातुपाठे वारत्रयं प्रयुक्तो वर्तते । युजिर् योगे इति रुधादिगणीय-धातोः, युज् समाधौ इति दिवादिगणीय-धातोः तथा युज् संयमने इति चुरादिगणीय-धातोर्वा योग-शब्दो निष्पद्यते। दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता इति पातञ्जलयोगसूत्रस्य (२.६) प्रसङ्गे आचार्येण श्री एस. एन. दासगुप्तेन एष एव विचारः प्रकटीकृतः यत् पाणिनेः समयं यावद् योग-शब्दः पारिभाषिकार्थेन युक्तोऽभवत् । पाणिनिना 'युज् समाधौ' इति धातुः 'युजिर् योगे' इत्यस्माद् धातोः एतदर्थं पृथक्त्वेन स्वीकृतः यतोहि समाध्यर्थकः एकाग्रतार्थको वा युज्-धातुः क्रियापदैः न कुत्रापि प्रयुक्तो दृश्यते । श्रीदासगुप्तमहोदयस्य मन्तव्यमेतस्मिन् सन्दर्भे उद्धरणीयं वर्तते यद् 'युग्य' -पदं 'युजिर् योगे' इत्यस्माद् धातोः निष्पन्नं न तु 'युज् समाधौ' इत्यतः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यदि वयं तदस्य ब्रह्मचर्यम् (पा. ५.१.९४) इति पाणिनेः सूत्रं विचारयामः तर्हि एतत् स्पष्टीभवति यत्तस्य समयं (गोल्डस्टुकरस्य मतानुसारेण पाणिनिः बुद्ध-पूर्वकालिकः आसीत्) यावद् ब्रह्मचर्यरूपेण न केवलं तपस्या-संयमादीनां व्यवहारो विभिन्न-रूपेषु प्रवर्तित आसीत् प्रत्युत तत्सम्बद्धा संयमस्य काचन बौद्धिकी नैतिकी तथा सुनिर्धारिता च प्रणाली श्री-योग-नाम्ना प्रचलिता आसीत् ।

भगवद्गीतायां योगशब्दः युज् समाधौ तथा युजिर् योगे इत्यनयोरर्थयोः प्रयुक्तः । तत्र एतदुच्यते यद् यदि योगी आत्मानं समाधौ लयं प्रापयति तर्हि स सर्वोच्च-श्रद्धायाः पात्रं भवति एवं तत्रैकतः युज् समाधौ इत्यनुसारं निर्गुणसमाधेः तपसो वा पूर्ण-नियन्त्रिता प्रक्रिया वर्तते तथा चापरतः युजिर् योगे इत्यनुसारं वैदिक-ऋषिभिः प्रवर्तितानां यजनादिक्रियाणां सम्पादनार्थमपि मार्गः प्रस्तुतोऽस्ति । वास्तविको योगी स एव भवति यः एतयोः द्वयोः मार्गयोः सर्वोत्तमादर्शस्य समन्वयं स्थापयित्वा स्वकर्तव्यं प्रति सचेष्टो भवति किन्तु योगस्य स्वार्थमयोद्देश्येषु आसक्तो न भवति ।

कालक्रमेण योग-प्रक्रियाभिः एकम् अन्यद्रूपमपि गृहीतं यद् हठयोगरूपेण ज्ञायते यत्र विविध-योगानां निरन्तराभ्यासेन विभिन्न-जटिल-नाडिसमूहस्य रहस्यात्मिका चामत्कारिकी शक्तिः दृग्गोचरीभवति । एवं स च योगः स्थूलरूपेण द्विविधः - राजयोगः हठयोगश्चेति । दत्तात्रेय-योगशास्त्रे तथा योगराज-उपनिषदि च योगः चतुर्धा विभक्तो दृश्यते - मन्त्रयोगः, लययोगः, हठयोगः तथा राजयोगश्चेति । एषु चतुर्थः राजयोगः योगानामुत्तमो योगो भवति इति तत्र प्रतिपादितं वर्तते -

मन्त्रयोगो लयश्चैव हठयोगस्तथैव च ।
राजयोगश्चतुर्थः स्याद् योगानामुत्तमस्तु सः ॥ (दत्तात्रेययोगशास्त्रम् - १८-१९)

तत्र राजयोगो नाम पतञ्जलि-प्रतिपादितो योगः । पक्षान्तरे हठयोगस्तु तन्त्रशास्त्रोक्तो योगः इति प्रसिद्धिः ।

वस्तुतः शास्त्रेषु हठयोगस्य तथा राजयोगस्य साधनायै एक एव अभ्यासो निर्धारितः । अस्मिन् प्रसङ्गे हठयोगप्रदीपिकाकारस्य मतं परिशीलनीयम् - केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते ।

अर्थाद् राजयोगं विना हठयोगाभ्यासो न सम्भवति वस्तुतः हठयोगः राजयोगश्च परस्परं पूरकौ स्तः । हठयोगप्रदीपिकायामेतदप्युक्तमस्ति -

हठं विना राजयोगः राजयोगं विना हठः ।
न सिद्ध्यति ततो युग्मानिष्पत्तेः समभ्यसेत् ॥ (दत्तात्रेययोगशास्त्रम् - १८-१९)

वस्तुतः ह-ठयोः वर्णयोः योगेन हठयोगो निष्पन्नः यः क्रमशः सूर्यनाडी-चन्द्रनाड्योः वाचकोऽस्ति-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते ।
सूर्य-चन्द्रमसोर्योगात् हठयोगो निष्पद्यते ॥

प्रकारान्तरेण अन्यत्रापि योगः द्विविधः प्रतिपादितोऽस्ति - सम्प्रज्ञातः असम्प्रज्ञातश्चेति । योगदर्शनं नाम ज्ञान-प्रधानस्य सांख्यदर्शनस्य द्वितीयो भागः इति कैश्चिन्मन्यते । अत एव इयं सूक्तिः प्रसिद्ध्यति -

सांख्ययोगौ पृथग् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति सः पश्यति ॥ इति।

किन्तु व्यवहारतः कर्म-उपासनाप्रधानं योगदर्शनमेकं पृथग् दर्शनं वर्तते । यतो हि योगदर्शनं तानेव सिद्धान्तान् उपदिशति यैः मानवात्मा पूर्णरूपेण परमात्मना युक्तः भवेत् तथा तस्य मोक्षप्राप्तिः सम्भवेत् ।

अत्र च सर्वादौ योगशास्त्रस्य ऐतिहासिक-क्रमविकासं संक्षेपेण निरूपयितुं कश्चन प्रयासो विधीयते । योग-शब्दस्योल्लेखः वेदोपनिषद्-भगवद्गीता-पुराणादिष्वपि द्रष्टुं शक्यते । भारतीय-दर्शने तु एषः योगः महत्त्वपूर्ण-शब्दरूपेण स्वीकृतः । एवमेव गुरुशिष्यपरम्परया समागतं योगसिद्धान्तं योगशास्त्रं वा पतञ्जलिना स्वकीये योगसूत्रे सुव्यवस्थितम् । अतः सुव्यवस्थितयोगशास्त्रस्य प्रवर्तन-श्रेयः महर्षये पतञ्जलये एव प्रदीयते येन योगसूत्राख्यं योगदर्शनस्य प्रमुखं मौलिकञ्च ग्रन्थं प्रणीय एतन्महत्त्वपूर्णं दर्शनं विश्वे जनसामान्य-समक्षं प्रस्तुतम् ।

श्रीएस. एन. दासगुप्तेन (भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग-१) एवं विचारितमस्ति यत् पतञ्जलिना न केवलं योगस्य विभिन्न-प्रक्रियाणां संकलनं तथा योग-सम्बद्धानां विभिन्न-विचारधारामणामेकत्र सम्पादनेव कृतमपितु समेषां सांख्य-तत्त्व-दर्शनानां समन्वयं विधाय एतत् प्रमाणीकृतं तथा तस्मै एतदपि रूपं प्रदत्तं येनैतदद्य दर्शनरूपेण अस्मत्समक्षं विद्यते ।

वाचस्पतिमिश्रः विज्ञानभिक्षुश्च (व्यासभाष्यस्य द्वौ महान्तौ टीकाकारौ) अपि एतन्मतं समर्थयतः यत् पतञ्जलिः, योगदर्शनस्य जन्मदाता नासीत् किन्तु सम्पादकः एवासीत् । पातञ्जलयोगसूत्राणां विश्लेषणात्मकाद् अध्ययनादपि एषा धारणा पुष्टा भवति यदत्र न काचित् मौलिकी स्थापना वर्तते, किन्तु एतदेकमुच्चस्तरीयं प्रणालीबद्धश्च संकलनमस्ति येन सह पतञ्जलिना समुचितं मौलिकं विवेचनमपि संयोजितमस्ति । प्रथमेषु त्रिषु अध्यायेषु परिभाषारूपेण वर्गीकरण-रूपेण चात्यन्तं वैज्ञानिकं विवेचनमुपलभ्यते । तत्रापि पतञ्जलिना उपलब्धसामग्रीभ्यः वैज्ञानिकं प्रणालीबद्धश्च रूपं प्रदत्तम् । श्री दासगुप्तेन प्रतिपादितं यत्तेन विकीर्णानि तथ्यानि सुव्यवस्थितानि । बौद्धानां खण्डन-प्रसंगोऽपि अन्तिमेऽध्याये प्राप्यते । प्रथमेषु त्रिषु अध्यायेषु योग-सिद्धान्ताः व्याख्याताः । एवमन्तिमाध्यायादेषां भिन्नता स्पष्टीभवति । तृतीयाध्यायस्यान्ते 'इति' शब्दस्योल्लेखादेतत्स्पष्टीभवति यद् योगसम्बद्धतथ्यानां संकलनं सम्पन्नमिति । चतुर्थाध्यायस्यान्तेऽपि पुनरेकवारम् 'इति' शब्दः प्रयुक्तः यः सम्पूर्णस्य ग्रन्थस्य समाप्ति-द्योतकः । अन्तिमाध्यायस्य शैल्यामपि किञ्चित् परिवर्तनं स्पष्टं परिलक्ष्यते । अस्याध्यायस्य कलेवरोऽपि अन्याध्यायापेक्षया लघुतरः । अत्र केवलं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चतुस्त्रिंशत् सूत्राणि सन्ति किन्तु अन्येष्वध्यायेषु सूत्रसंख्या पञ्चाशदधिका । अतः एवमनुमातुं शक्यते यत् चतुर्थाध्यायः प्रक्षिप्तोऽस्ति ।

किन्तु वस्तुतः अस्य योगशास्त्रस्य प्रथमः प्रवक्ता हिरण्यगर्भः आसीदिति भारतीया परम्परा प्रमाणयति । तथा चोक्तं महाभारते शान्तिपर्वणि -

> सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते ।
> हिरण्यगर्भो योगस्य वेत्ता नान्यः पुरातनः ॥ इति। (महाभारतम्, शान्तिपर्व ३४९.६५)

एवमेव याज्ञवल्क्यस्मृतिः अपि मतमेतत् समर्थयति-

> योगशास्त्रञ्च मत्प्रोक्तं ज्ञेयं योगमभीप्सता । (याज्ञवल्क्यस्मृतिः ३.४.११०) इति।

ऋग्वेदे एतद् द्रष्टुं शक्यते यत्तदानीं धार्मिक-दार्शनिक-विचारयोः विकासेन सहैव धार्मिक-यम-नियम-आचाराणां महत्त्वं सर्वातिशायि आसीत् । तपः ब्रह्मचर्यञ्च उदात्तगुणत्वेन स्वीकृते आस्ताम् । ते च उच्चतमशक्तेः स्रोतोभूते मन्येते स्म । (कठोपनिषद्, मैत्रायण्युपनिषद्) आत्मसंयमः तपस्सिद्धान्तश्च यदा विकसितौ अभवतां तदा अपरा मान्यता सिद्धिं प्राप्तवती यत् चञ्चल-चित्तवृत्तयः तथैव अनियन्त्रणीयाः सन्ति यथा चोद्धताः अश्वाः । एतस्मात् कारणाद् योग-शब्दस्य प्रयोगः इन्द्रिय-नियन्त्रण-सन्दर्भेऽजायत ।

न केवलं स्मृति-धर्मशास्त्र-पुराणेषु किन्तु उपनिषत्सु अपि अष्टाङ्ग-योगविषयिणी चर्चा समुपलभ्यते । यद्यपि तदानीं योगमार्गस्य प्राणायामस्य वैज्ञानिकी प्रक्रिया पूर्णतः विकसिता नासीत्, तथापि प्राचीनोपनिषत्सु स्वास्थ्य-सम्बद्ध-विज्ञानमधिकृत्य कतिपय-महत्त्वपूर्ण-विवेचनानि उपलभ्यन्ते । मैत्रायण्युपनिषदः स्पष्टं ज्ञायते यद् योगदर्शनस्य प्रणालीबद्धः विकासः समभवदिति । योगदर्शनस्य सिद्धान्ताः कठोपनिषदि तथा श्वेताश्वतरोपनिषदि अपि दृश्यते । मैत्रायण्युपनिषदि एकमुद्धरणं मिलति यत्र शाक्यायन-बृहद्रथयोः संवादश्चित्रितोऽस्ति । तत्र योग-प्रक्रियायाः प्रामाण्य-सिद्ध्यर्थं केषुचित् क्षेत्रेषु सांख्यतत्त्व-दर्शनस्य सहायता गृहीताऽस्ति । एतस्मात्तथ्यादेतत् प्रतीयते यद् योग-प्रणाल्यां सांख्यप्रतिपादितस्य तत्त्व-दर्शनस्य समन्वयस्तु अस्याः विचारधाराया अनुयायिनामवदानमस्ति यस्मै अनन्तरं पतञ्जलिना किञ्चित् प्रणालीबद्धं रूपं प्रदत्तम् ।

शाक्यायनमतानुसारं केचन एवं मन्यते यत् प्रकृतेः वैभिन्नयाद् गुणाः इच्छा-बन्धनेन बध्यन्ते तथा ततः मुक्तिः तदैव भवति यदा इच्छायाः दोषाः अपनीयन्ते, तदा च ते बुद्ध्या एव अवलोक्यन्ते यान् वयम् अभिलाष-कल्पना-संशय-विश्वास-अविश्वास-निश्चय-अनिश्चय-लज्जा-विचार-भयादि-नामभिः जानीमः । परन्तु तत् सर्वं केवलं बुद्धिगतमेवास्ति । वस्तुतः यश्च इच्छा-कल्पना-धारणाभिः वशीभूतो न भवति स एव स्वतन्त्रो भवति । अतः मनुष्यः स्वेच्छाकल्पना-धारणादिभ्यो मुक्तो भवेत् । एतदेव स्वातन्त्र्यस्य लक्ष्यम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एष एव ब्रह्म-प्राप्तेः मार्गः । एतदेव तद् द्वारं येन सः अन्धकारमतिक्रान्तुं शक्नोति । सर्वाश्च इच्छास्तत्रैव शान्ताः भवन्ति । यदा पञ्च-ज्ञानेन्द्रियाणि मनसि स्थिराणि भवन्ति तथा यदा बुद्धिरविचलिता भवति सा एव सर्वोत्कृष्टा स्थितिः मन्यते । श्री एस.एन. दासगुप्तेन अस्मिन् सन्दर्भे स्वमन्तव्यमेवं प्रस्तुतं यद् वात्सायनेन न्यायसूत्र-भाष्ये (न्या.सू.१.१.२९) सांख्य-योगयोः भेदः एवं प्रतिपादितोऽस्ति-सांख्यमतेन न किमपि वस्तु उत्पन्नं विनष्टं वा भवति । शुद्ध-चैतन्ये न किमपि परिवर्तनं सम्भवति (निरतिशयाः चेतनाः) । सर्वश्च परिवर्तनं शरीरेन्द्रिय-मनःसु तथा बाह्य-पदार्थेषु च भवति । पक्षान्तरे योगस्य मतमिदं वर्तते यत् सकला सृष्टिः पुरुषस्य कर्माधृता वर्तते । समे दोषाः प्रवृत्तयश्च कर्मवशादेव भवन्ति । चेतना सगुणा वर्तते । यद् असत् तत् सत्तायाम् आगन्तुं शक्नोति । एवमेव यदुत्पन्नं तद् विनष्टमपि भवति । एतच्च मतं व्यास-भाष्ये प्रतिपादिताद् योग-विवेचनात् सर्वथा भिन्नमस्ति । सैद्धान्तिक-रूपेण चैतद् न्याय-दर्शनस्य निकटतरं वर्तते । यदि वात्स्यायनस्य मतं समीचीनं तर्हि एवं प्रतीयते यत् सृष्टिरचनायाः पृष्ठभागे किमप्युद्देश्यं निहितमस्तीत्येषा धारणा सांख्ये योगादेव गृहीता स्यादिति । एतत्सूत्रोपरि उद्योतकरस्य विवेचनं न कमपि भेदं सङ्केतयति किन्तु तत्रायं दृष्टिकोणः सांख्य-योगौ उभावत्र स्वीकुरुतः । आश्चर्यकरं तथ्यमेतद् वर्तते यद् वात्सायनेन स्वभाष्ये (न्या.सू.१.२) व्यास-भाष्यादेका उक्तिः समुद्धृता (न्या.सू.३.१३) तथा सा च स्वविरोधिनी (विरुद्धा) इत्युद्घोषिता । (द्र. भारतीय दर्शन का इतिहास, भागः-१)

शाण्डिल्य-योगतत्त्व-ध्यानबिन्दु-हंस-अमृतनाद-बाराह-मण्डल-ब्राह्मण-नादबिन्दु-योगकुण्डल्याद्यु -पनिषत्-साहित्यस्य समीक्षणात् स्पष्टीभवति यद् विभिन्न-प्रणालिषु योग-प्रक्रियाः परिवर्तिताः अभवन् किन्तु तत्र सांख्य-प्रतिपादित-दार्शनिक-विचारधारायाः न काचिदन्या प्रवृत्तिः । योग-प्रक्रियाणां विकासः शैव-शाक्त-सिद्धान्तानुरूपमपि सन्दृश्यते तथा मन्त्र-योग-नाम्ना चानेकानि रूपाणि समभवन् ।

एतत्क्रमे दर्शनोपनिषद्यपि अष्टाङ्गयोगविषयिणी चर्चा एवं वर्तते । तद्यथा -

अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् ।
क्षमाधृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमाः दशाः ॥ (दर्शनोपनिषद् १.६)

तपः सन्तोषमास्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम् ।
सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्यतिश्च जपो व्रतम् ॥ (दर्शनोपनिषद् २.४)

अत्र चेदं तथ्यं बोध्यं यत् षष्ठो भगवदवतारो दत्तात्रेयः इति । स च आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्यः ऊचिवान् (भाग.१.३.१२) । तेन च स्वसंहितायां योगोऽनुशिष्टः इति प्रमाणमुपलभ्यते ।

पुराणेष्वपि योगतत्त्वविषये विशदं विवेचनं समुपलभ्यते । तद्यथा स्कन्दपुराणे, विष्णुपुराणे, ब्रह्मवैवर्तपुराणे, गरुडपुराणे, मार्कण्डेयपुराणे, लिङ्गपुराणे तथा श्रीमद्भागवते (११.२०.६-११) च योगस्य विविधाः पक्षाः वर्णिताः सन्ति । स्कन्दपुराणे काशीखण्डे ३२तमे अध्याये उक्तमस्ति यत् कलौ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

योगसिद्धिर्नास्ति इति । तत्र च स्पष्टमुक्तं वर्तते - 'न सिद्ध्यति कलौ योगः न सिद्ध्यति कलौ तपः' इति । (स्कन्दपुराणे काशीखण्डे ४२तमे अध्याये)

एवमेव योगस्य षडङ्गानि भवन्तीत्यपि स्कन्दपुराणे प्रतिपादितं वर्तते । अन्यत्रापि तथा-

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा ।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट् ॥ (वै.वि., वै ५.२.१६.सू.)

एवमेव भागवतेऽपि योगस्त्रिविधः प्रोक्तः ज्ञानयोगः -, कर्मयोगः भक्तियोगश्चेति । (भागवतम्-११.२०. ६)

भारते योगशास्त्रस्य महती परम्परा विद्यते । न केवलमियं परम्परा योगदर्शने एव द्रष्टुं शक्यते, अपि तु अन्येषु विभिन्न-दर्शनेषु, अन्येषु च शास्त्रेषु योगस्य चर्चा प्रसङ्गतो भवति । यथा वेदोपनिषद्-भगवद्गीता-पुराणादिषु योगस्योल्लेखो वर्तते न्यायवेदान्तादि-दर्शनेषु च यत्र तत्र योगस्य चर्चा दृक्पथमायाति । न्यायसूत्रस्य तत्त्वज्ञानोत्पत्तिप्रकरणेऽपि गौतमेन नैकेषु सूत्रेषु योगाभ्यास उपदिष्टः । तद्यथा- अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासस्योपदेशः (न्यायसूत्रम् ४.२.४२), तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः (न्यायसूत्रम् ४.२.४६) तथा समाधिविशेषाभ्यासात् (न्यायसूत्रम् ४.२.३८) । एवमेव समुदायशब्दस्य अवयवशक्तिः योगः इति तर्कदीपिकाकारः अपि प्रतिपादयति । तद्यथा पाचकादिपदेषु योगः इति । अत्र पाचकादिपदात् पचति इति व्युत्पत्त्या पाककर्ता इत्यर्थो बुध्यते । मीमांसादर्शनेऽपि विविध-प्रसङ्गेषु योगविषयिण्यश्चर्चाः सन्दृश्यन्ते । तद्यथा योगबलं समाख्या इति मीमांसकाः वदन्ति । (द्र. योगः वाचस्पत्यम्) भामत्याख्ये वेदान्त-दर्शनस्य प्रामाणिके वृत्तिग्रन्थे वाचस्पतिमिश्रेणोक्तम् - 'सा हि संस्कार-दीर्घकाल-नैरन्तर्य-सेविता सती दृढ-भूमिर्विशेषसाक्षात्काराय प्रभवति कामिनी-भावनेव स्त्रैणस्य पुंसः' इति । यद्यप्यत्र स्थूलतया प्रतीयते यद् 'यद्यपि एतेन योगः प्रत्युक्तः' (ब्रह्मसूत्रम् २.१.३) इत्यनेन वेदान्तसूत्रेण योगस्यावश्यकता प्रत्याख्याता इति तथापि एतत् तथ्यमस्ति यदेतत् खण्डनं केवलं सांख्ययोगस्य सृष्टिप्रक्रियां यावत् सीमितं वर्तते । आत्मसंस्कार-चित्तशुद्ध्योः प्रसङ्गे एतस्य न कश्चन सम्बन्धो वर्तते इति तथ्यं वाचस्पति-मिश्रेण भामती-टीकायां स्पष्टीकृतं वर्तते ।

उपायः, युक्तिः तथा जीवात्म-परमात्मनोः सम्बन्धो योगः इति केचिद्वेदान्तिनः प्रतिपादयन्ति - योगं संयोगमित्याहुर्जीवात्मपरमात्मनोः इत्यपि वाचस्पत्ये उद्धृतं वर्तते । एवमेव देवतानुसन्धानं योगः इति च रामानुजीयाः नारदपञ्चरात्रविदश्च अभिप्रयन्ति । (सर्वदर्शनसङ्ग्रहः, रामानुजदर्शनम् पृ. ११७)

न केवलमास्तिक-दार्शनिकैः किन्तु नास्तिक-दार्शनिकैस्तथा अन्यैरपि शास्त्रकारैः पारिभाषिकार्थे योगशब्दस्य प्रयोगः कृतः । अत्र संक्षेपेण तादृशानि कानिचन मतानि उपस्थाप्यन्ते - 'अप्राप्तस्यार्थस्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राप्तये पर्यनुयोगो नाम योगः 'इति योगाचारादौ बौद्धाः आमनन्ति । एवमेव केषाञ्चिज्जैनाचार्याणां मते योगो नाम तत् तत्त्वं यत् कञ्चन मोक्षेन योजयति । तथा चोक्तम् - मोक्षेण योजनादेव योगो ह्यत्र निरुच्यते (यशोविजय.. द्वात्रिंशिका - १०.१) इति । यथा वेद-वेदाङ्गेषु तथा शास्त्रन्तरेष्वपि योग-शब्दस्य प्रयोगः द्रष्टुं शक्यते । तद्यथा कोषेषु. अर्थशास्त्रे, व्याकरणशास्त्रे, ज्योतिषशास्त्रे तथा काव्यशास्त्रे च योग-शब्दस्य प्रयोगः उल्लेखनीयः । विविध-कोषेषु, योगस्य बहवः अर्थाः समुपलभ्यन्ते । योगः सन्नहनः, उपायः, ध्यानं, सङ्गतिः, युक्तिश्चेत्यमरसिंहः (अमरकोषः ३.३.२२) प्रतिपादयति । एवमेव अपूर्व्यसम्प्राप्तिः, वपुःस्थैर्यम्, प्रयोगः, विष्कम्भादिः. भेषजम्, विश्रब्धघातकः, द्रव्यम्, कार्मणम् इति मेदिनीकोषः अभिप्रैति । धनम् इति हेमचन्द्रः मनुते । चारः, सूत्रम् इति च त्रिकाण्डशेषः सूचयति । अर्थशास्त्रे दर्शन-विज्ञानयोः विषयाणां नाम-परिगणनप्रसङ्गे कौटिल्येन सांख्ययोग-लोकायतयोः नाम समाधेः सर्वेषु चरणेषु उल्लिखितम् । एतस्मादनुमातुं शक्यते यत् तदानीन्तनं कालं यावदेकाग्रताया अभ्यासात् पूर्वं तथा योगबुद्धेः पूर्वमेव रहस्यात्मक-समाधेः प्रक्रिया विकसिता आसीत् । व्याकरण-ज्योतिष-काव्याशास्त्रादिषु योगः भिन्नार्थे प्रयुक्तः । तस्य चर्चा अत्र न क्रियते ।

वस्तुतः योगस्यावश्यकता न केवलं दर्शनेषु किन्तु धर्म-प्रसङ्गेष्वपि वर्तते । यथा च सन्ध्या-वन्दनादिषु विहितेषु व्रतोपवासादि-नैमित्तिकपर्वस्वपि आसन-प्राणायामादि-रूपो योगः विधीयते । भगवद्गीताऽपि उपनिषद्रूपेण स्वीकृता वर्तते यत्र नैकेषां योगानां चर्चा आयाति । वस्तुतः ध्यानयोगं, सांख्ययोगं तथा कर्मयोगश्चाधिकृत्य भगवद्गीतायाः अधोलिखिताः श्लोकाः अपि अनुशीलनीयाः -

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ (देवीभागवतम् ३.१५.१३) इति ।

गीतायाः पञ्चमेऽध्याये संन्याससयोगाय तथा कर्मयोगाय अपि उल्लेखयोग्यं प्राधान्यं प्रदत्तमस्ति-

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥ (भगवद्गीता ५.२)

धर्मस्य एतेषु दशविकल्पेषु योगाङ्गान्यपि द्रष्टुं शक्यन्ते । भगवद्गीतानुसारं योगस्य लक्षणद्वयं भवितुमर्हति, तत्र च एकत्र योगशब्दः समत्वार्थे प्रयुक्तः । तद्यथा -

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ (भगवद्गीता- २.४८) इति।

अथवा तत्र कर्मणः कौशलत्वमपि योगः इत्युच्यते -

योगः कर्मसु कौशलम् । (भगवद्गीता- १.५०) इति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एतदतिरिक्तानि भगवद्गीतायाः इमानि वचनानि अपि योगतत्त्वसम्बद्धानि सन्ति यत्र समदर्शनं नाम योगः इत्युच्यते । भगवद्गीतानुसारेण सर्वेषु भूतेषु आत्मानम् आत्मनि च सर्वभूतानि यः पश्यति सः एव योगी इति योगिनः लक्षणं कर्तुं शक्यते । तद्यथा -

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ (भगवद्गीता- ६.२९) इति।

योगविद्याविषये, योगपरम्पराविषये च बहु किमपि प्रतिपादयितुं शक्यते । किन्त्वत्र बहुविधाः सीमानः सन्ति । अत एव अधिकमनुक्त्वा प्रस्तुतग्रन्थस्य संशोधितं सम्पादितश्च रूपमत्र प्रस्तूयते । छन्दोदृष्ट्या, व्याकरणदृष्ट्या च यत्र यत्र मया त्रुटयोऽवलोकिताः, ताश्च त्रुटयः यथाशक्यं संशोधिताः । शुद्धपाठदृष्ट्या संशोधितानि संयोजितानि च पदानि अत्र कोष्ठकमध्ये प्रदत्तानि योगशास्त्रपरम्परायां, योगदर्शनपरम्परायां च प्रस्तुतग्रन्थस्य महदवदानं सेत्स्यतीति शम् ।

योगसिद्धामृतम्

(हस्तलेखाधारेण सम्पादितो मूलग्रन्थः)

योगसिद्धामृतप्रारम्भः

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

नमस्ते परिपूर्णाय जगदानन्दहेतवे ।
सदाशिवजगन्नाथकारुण्यामृतवारिधे ॥१॥

[देव्युवाच]

सर्वे जीवास्सुखैर्दुःखैर्मायाजालेन वेष्टिताः ।
तेषां मुक्तिः कथं देव! कृपया वद शङ्कर ॥२॥

सर्वसिद्धिकरं मार्गं मायाजालनिकृन्तनम् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिनाशनं सुखदं पदम् ॥३॥

नानामार्गास्त्वया पूर्वं कथितास्तु महेश्वर ।
अधुना मोक्षदं मार्गं ब्रूहि योगविदां वर ॥४॥

ईश्वर उवाच

बद्धा येन विमुच्यन्ते नास्ति मार्गमतः परम् ।
तदहं कथयिष्यामि तव प्रीत्या महेश्वरि ॥५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नानामार्गैस्तु दुष्प्राप्यं कैवल्यं परमं पदम् ।
सिद्धमार्गेण लभते नान्यथा शिवभाषितम् ॥६॥

पतिता(श्)शास्त्रजालेषु प्रज्ञया तेन मोहिताः।
अनिर्वाच्यपदं वक्तुं न शक्यं तैस्सुरैरपि ॥७॥

स्वात्मप्रकाशरूपं तत् किं शास्त्रेण प्रकाश्यते ।
निष्कलं निर्मलं शान्तं सर्वातीतं निरामयम् ॥८॥

तदेव जीवरूपेण पुण्यपापफलैर्वृतम् ।

देव्युवाच

परमात्मपदं नित्यं तत्कथं जीवतां गतम् ।
तत्त्वातीतं महादेवप्रसादात् कथयेश मे ॥९॥

ईश्वर उवाच

सर्वभावपदातीतं ज्ञानरूपं निरञ्जनम् ।
वारिवत्स्फुरितं तस्मिन् तत्राहङ्कृतिरुद्धितः ॥१०॥

पञ्चात्मकमभूत्पिण्डं धातुबद्धं गुणात्मकम् ।
सुखदुःखैस्सदायुक्तं जीवभावनयाऽऽकुलम् ॥११॥

तेन जीवाभिधा प्रोक्ता विशुद्धे परमात्मनि ।
काम(:) क्रोध(:) भयं चापि मोहलोभमदोरुजः ॥१२॥

जन्म मृत्युश्च कार्पण्यं शोकस्तन्द्राक्षुधातृषा(:)
तृष्णा लज्जा भयं दुःखं विषादो हर्ष एव च ॥१३॥

एभिर्देवि विनिर्मुक्तः सजीवो मुक्त उच्यते ।
तस्माद् दोषविनाशार्थमुपायं कथयामि ते ॥१४॥

ज्ञान केचिद्वदन्त्यत्र केवलं तन्न सिद्धये ।
योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीश्वरि ॥१५॥

योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि ।
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत् ॥१६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देवी [देव्युवाच]

अज्ञानादेव संसारो ज्ञानादेव विमुच्यते ।
योगेनैषां तु किं कार्यं मे प्रसन्नां गिरां वद ॥१७॥

ईश्वरः [उवाच]

सर्वमेतत्त्वयोक्तं ते कथयामि महेश्वरि ।
ज्ञानस्वरूपमेवादौ ज्ञेयं ज्ञानेन साधनम् ॥१८॥

अज्ञानं कीदृशं चेति प्रविचार्य विवेकिनाम् ।
ज्ञानं येन निजं रूपं कैवल्यं परसम्पदम् ॥१९॥

असौ दोषैर्विनिर्मुक्तः कामक्रोधभयादिभिः ।
सर्वदोषैर्वृतो जीवः कथं ज्ञानेन मुच्यते ॥२०॥

देवी [देव्युवाच]

स्वात्मरूपं तु यज्ज्ञानं पूर्णं तद् व्यापकं तथा ।
कामक्रोधादिदोषाणां स्वरूपं(पे) नास्ति भिन्नता ॥२१॥

पश्चात्तस्य विधिः किन्नो निषेधोऽपि कथं भवेत् ।
विवेकी सर्वदा मुक्तः संसारश्रमवर्जितः ॥२२॥

ईश्वरः [उवाच]

परिपूर्णस्वरूपं तत्सत्यमेतद्वरानने ।
सकलं निष्कलं चैव पूर्णत्वाच्च तदेव हि ॥२३॥

कलिना स्फूर्तिरूपेण संसारभ्रमतां गतम् ।
निर्मलं निष्कलं साक्षात्सकलं गगनोपमम् ॥२४॥

उत्पत्तिस्थितिसंहारस्फूर्तिज्ञानविवर्जितम् ।
एतद्रूपं समायातः(तं) स(तत्) कथं मोहसागरे ॥२५॥

निमज्जति वरारोहे त्यक्त्वा विद्यां पुनः पुनः ।
सुखदुःखादिमोहेषु यथा संसारिणां स्थितिः ॥२६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा ज्ञानी यदा तिष्ठेद्वासिना वासितस्तथा ।
तयोर्नास्ति विशेषोऽत्र समा संसारभावना ॥२७॥

ज्ञानं चेदीदृशं ज्ञानम् अज्ञानं कीदृशं पुनः ।
ज्ञाननिष्ठोविरोक्तोऽपि धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः ॥२८॥

विना देवोऽपि योगेन न मोक्षं लभते प्रिये ।

कल्याणी [उवाच]

अन्यत्किञ्चित्परिध्येयं ज्ञानिनां नास्ति शङ्कर ।
विरक्ता त्वेकनिष्ठानां कथं मोक्षो भवेन्न तु ॥२९॥

श्रीसाम्बः [उवाच]

अपक्वाः परिपक्वाश्च देहिनो द्विविधा स्मृताः ।
अपक्वा योगहीनास्तु पक्वा योगेन देहिनः ॥३०॥

पक्वे योगाग्निना देहो ह्य जडः शोक[वि]वर्जितः ।
जडस्तु पार्थिवा ज्ञेयो ह्यपक्वो दुःखदो भवेत् ॥३१॥

ज्ञानस्थोऽसौ तथाप्येवमिन्द्रयैर्विवशो भवेत् ।
तानि गाढं नियम्यापि तथाप्यस्यै प्रबाध्यते ॥३२॥

सी(शी)तोष्णसुखदुःखाद्यैर्व्याधिभिर्मानसैस्तथा ।
अन्यैर्नानाविधैर्जीवैः शास्त्राग्निजलमारुतैः ॥३३॥

शरीरं पीड्यते तैस्तैश्चित्तं संक्षुभ्यते ततः ।
ततो दुःखशतैर्व्याप्तं चित्तं क्षुब्धं भवेन्नृणाम् ॥३४॥

देहावसानमथवा चित्ते यद्यद्विभावयेत् ।
तत्तदेव भवेज्जीवः इत्येवं जन्मकारणम् ॥३५॥

देहान्ते किं भवेज्जन्म तन्न जानन्ति मानव(1)ः ।
तस्माज्ज्ञानं च वैराग्यं जीवे स्यात्केवलं श्रमः ॥३६॥

पिपीलिका यदा लग्ना देहे ध्यानाद्विमुच्यते ।
असौ किं वृश्चिकैर्दंष्ट्रो देहान्ते वा कथं सुखी ॥३७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तस्मान्मूढा न जानन्ति मिथ्यातर्केण वेष्टिता ।
अहङ्कृतिर्यदा यस्य नष्टा भवति यस्य वै ॥३८॥

देहस्य तु (देहश्चेत्तु) भवेन्नष्टो व्याधयश्चास्य किं पुनः ।
जलाग्निशस्त्रघातादिबाधा कस्य भविष्यति ॥३९॥

यथा यस्यापरिक्षीणापुष्टा चाहङ्कृतिर्भवेत् ।
तन्मानेनास्य नश्यन्ति प्रवर्तन्ते रुगादयः ॥४०॥

कारणेन विना कार्यं न कदाचन विद्यते ।
अहङ्कारं विना तद्वद् देहे दुःखं कथं भवेत् ॥४१॥

भवानी [उवाच]

योगिनः कथ्यमानास्तु किं ते व्यवहरन्ति च ।
तत्कथं व्यवहारं तु क्षि(क्षी)यते वद शङ्कर ॥४२॥

देहावसानमथवा तेषां भवति कीदृशम् ।
एतन्मे संशयं देव छेत्तुमर्हसि पावन ॥४३॥

उमापतिः [उवाच]

शरीरेण जिताः सर्वे शरीरं योगिभिर्जितम् ।
तत्कथं कुरुते तेषां सुखदुःखादिकं फलम् ॥४४॥

इन्द्रियाणि मनोबुद्धिकामक्रोधादिकं जितम् ।
तेनैव विजितं सर्वं नासौ केनापि बाध्यते ॥४५॥

महाभूतानि तत्त्वानि संहृतानि क्रमेण च ।
सप्तधातुमयो देहो दग्धो योगाग्निना शनैः ॥४६॥

देवैरपि न लक्ष्येत योगिदेहो महाबलः ।
भेदबन्धविनिर्मुक्तो नाना शक्तिधरः परः ॥४७॥

यथाकाशस्तथा देह आकाशादपि निर्मलः ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरो दृश्यस्स्थूलात्स्थूलो जडाज्जडः ॥४८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इच्छारूपो हि योगीन्द्र स्वतन्त्रस्त्वजरामरः ।
क्रीडते त्रिषु लोकेषु लीलया यत्र कुत्रचित् ॥४९॥

अचिन्त्यशक्तिमान् योगी नानारूपाणि धारयेत् ।
संहरेच्च पुनस्तानि स्वेच्छया विजितेन्द्रियः ॥५०॥

मरणं तस्य किं देवि पृच्छसीन्दुनिभानने ।
नासौ मरणमाप्नोति पुनर्योगबलेन तु ॥५१॥

हठेन मृत एवासौऽमृतस्य मरणं कुतः ।
मरणं यत्र सर्वेषां तत्रासौ परिजीवति ॥५२॥

यत्र जीवन्ति मूढास्तु तत्रासौ मृत एव वै ।
कर्त्तव्यं नैव तस्यास्ति कृतेनासौ न लिप्यते ॥५३॥

जीवन्मुक्तः सदा स्वच्छस्सर्वदोषविवर्जितः ।
विरक्ता ज्ञानिनश्चान्ये देहेन विजितास्सदा ॥५४॥

ते कथं योगिभिस्तुल्या मांसपिण्डा(:) कुदेहिनः ।

शाम्भवी [उवाच]

ज्ञानिनश्च मृता ये वै तेषां भवति कीदृशं(शी) ।
गतिः कथय देवेश कारुण्यामृतवारिधे ॥५५॥

श्रीचन्द्रचूडः [उवाच]

देहान्ते ज्ञानिभिः पुण्यात्पापाच्च फलमाप्यते ।
यादृशं तु भवेत्तत्तद्भुक्त्वा ज्ञानी पुनर्भवेत् ॥५६॥

पश्चात्पुण्येन लभते सिद्धेन सह सङ्गतिम् ।
ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा ॥५७॥

ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम् ।

भवानी [उवाच]

ज्ञानादेव हि मोक्षं च वदन्ति ज्ञानिनस्सदा ।
न कथं सिद्ध्यति ततो योगः किं मोक्षसाधनम् ॥५८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रीशम्भुः [उवाच]

ज्ञानेनैव हि मोक्षोऽस्ति वाक्यं तेषां तु नान्यथा ।
सर्वे वदन्ति खड्गेन जयो भवति तर्हि किम् ॥५९॥

विना युद्धेन वीर्येण कथं जयमवाप्नुयात् ।
तथा योगेन रहितं ज्ञानं मोक्षाय नो भवेत् ॥६०॥

ज्ञानेनैव विना योगो न सिद्ध्यति कदाचन ।
तस्मादत्र वरारोहे तयोर्भेदो न विद्यते ॥६१॥

जन्मान्तरैश्च बहुभिर्योगो ज्ञानेन लभ्यते ।
ज्ञानं तु जन्मनैकेन योगादेव प्रजायते ॥६२॥

तस्मात्परतरो योगात् नास्ति मार्गस्तु मोक्षदः ।

श्रीशङ्करी [उवाच]

बहुभिर्जन्मभिर्ज्ञानाद् योगस्सम्प्राप्यते कथम् ।
योगात्तु जन्मनैकेन कथं ज्ञानमवाप्यते ॥६३॥

ईश्वरः [उवाच]

प्रविचार्य चिरं ज्ञानान्मुक्तो भवति मन्यते ।
किमसौ मननादेव मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥६४॥

पश्चाज्जन्मान्तरशते योगादेव विमुच्यते ।
न ततो भवति योगाज्जन्ममृत्यू पुनः पुनः ॥६५॥

प्राणापानसमायोगाच्चन्द्रसूर्यैकधा भवेत् ।
सप्तधातुमयं देहमग्निना रञ्जयेद्ध्रुवम् ॥६६॥

व्याधयस्तस्य नश्यन्ति छेदखातादिका कथा ।
तदसौऽपरमाकाशरूपो देह्यवतिष्ठति ॥६७॥

किं पुनर्बहुनोक्तेन मरणं तस्य नास्ति वै ।
देहीव दृश्यते लोके दग्धकर्पूरवत्स्वयम् ॥६८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चित्तं प्राणेन सम्बद्धं सर्वजीवेषु संस्थितम् ।
रज्वा यद्वत्सुसम्बद्धः पक्षी तद्वदिदं मनः ॥६९॥

नाना विधैर्विचारैस्तु न साध्यं जायते मनः ।
तस्मात्तस्य जयोपायः प्राण एव हि नान्यथा ॥७०॥

तर्कैर्जल्पैश्शास्त्रजालैर्युक्तिभिर्मन्त्रभेषजैः ।
न वशो जायते प्राणस्सिद्धोपायं विना प्रिये ॥७१॥

उपायं तमवज्ञाय योगमार्गं प्रवर्तते ।
खण्डज्ञानेन तेनैव जायते क्लेशवत्तरः ॥७२॥

यो जित्वा पवनं मोहाद् योगमिच्छति योगिनाम् ।
सो पक्वं कुम्भमारुह्य सागरं तर्तुमिच्छति ॥७३॥

यस्य प्राणो विलीनोऽन्तस्साधके जीविते सति ।
पिण्डो न पतितस्तस्य चेतो दोषैर्विमुच्यते ॥७४॥

शुद्धे चेतसि तस्यैव स्वात्मज्ञानं प्रकाश्यते ।
तस्माज्ज्ञानं भवेद्योगाज्जन्मनैकेन पार्वती ॥७५॥

तस्माद्योगं तमेवादौ साधको नित्यमभ्यसेत् ।
मुमुक्षुभिः प्राणजयः कर्त्तव्यो मोक्षहेतवे ॥७६॥

योगात्परतरं पुण्यं योगात्परतरं शिवम् ।
योगात्परतरं सूक्ष्मं योगात्परतरं न हि ॥७७॥

शिवा [उवाच]

योगः क उच्यते देव योगाभ्यासोऽपि कीदृशः ।
योगेन वा भवेत्किन्नु तत्सर्वं वद शङ्कर ॥७८॥

श्रीपार्वतीपतिः [उवाच]

योऽपानप्राणयोर्योगः स्वरजो रेतसो(सस्) तथा ।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः ॥७९॥

एवं तु द्वन्द्वजातस्य संयोगो योग उच्यते ।
अधुना सम्प्रवक्ष्यामि योगाभ्यासस्य लक्षणम् ॥८०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मरुज्जयो यस्य सिद्धस्सेवयेत्तं गुरुं सदा ।
गुरुवक्त्रप्रसादेन कुर्यात्प्राणजयं बुधः ॥८१॥

वितस्ति प्रमितं दीर्घं चु(च)तुरङ्गुलविस्तृतम् ।
मृदुलं धवलं प्रोक्तं वेष्टनाम्वरलक्षणम् ॥८२॥

निरुध्य मारुतं गाढं शक्तिचालनयुक्तितः ।
अष्टधा कुण्डलीभूतां रज्वीं कुर्वीत कुण्डलीम् ॥८३॥

भानोराकुञ्चनं कुर्यात्कुण्डलीं चालयेत्ततः ।
मृत्युवक्त्रगतस्यापि तस्य मृत्युभयं कुतः ॥८४॥

एतदेव परं गुह्यं कथितं तु मया तव ।
वज्रासनगतो नित्यमूर्ध्वमासनमभ्यसेत् ॥८५॥

वायुना ज्वलितो वह्निः कुण्डलीमनिशं दहत् ।
सन्तप्ता साग्निना जीवशक्तिस्त्रैलोक्यमोहनी ॥८६॥

प्रविशेच्चन्द्रदण्डे तु सुषुम्ना वदनान्तरे ।
वायुना वह्निना सार्धं ब्रह्मरन्ध्रं भिनत्ति सा ॥८७॥

विष्णुग्रन्थिततो भित्वा रुद्रग्रन्थौ च तिष्ठति ।
ततस्तु कुम्भकैर्गाढं पूरयित्वा पुनः पुनः ॥८८॥

अथाभ्यसेत्सूर्यभेदमुज्जायिं चापि शीतकाम् ।
भस्त्रं च सहितो नाम स्याच्चतुष्टयकुम्भकम् ॥८९॥

पिण्डत्रयेण संयुक्तः केवलप्राप्तिकारकः ।
अथास्य लक्षणं सम्यक् कथयामि समासतः ॥९०॥

एकाकिना समुपगम्य विविक्तदेशं
प्राणादिरूपममृतं परमात्मतत्त्वम् ।
लघ्वाशिना धृतिमता परिभावितव्यं
संसाररोगहरमदिति सूर्यनाड्या ॥९१॥

समाकृष्य वायुमभ्यासं योगिना विधिवत्कुभ ।
कं कृत्वा रेचयेत् सीतरश्मिना औषधं [तथा]॥९२॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उदरे अन्तरोगघ्नं कृमिदोषं निहन्ति च ।
मुहुर्मुहुरिदं कार्यं सूर्यभेदमुदाहृतम् ॥९३॥

नाडिभ्यां वायुमाकृष्य कुण्डल्याः पार्श्वयोः क्षिपेत् ।
धारयेदुदरे पश्चाद् रेचयेदिडया सुधीः ॥९४॥

कण्ठे कफादिदोषघ्नं शरीराग्निविवर्धनम् ।
नाडिं जलापहं धातुगतदोषविनाशनम् ॥९५॥

गच्छतस्तिष्ठतः कार्यं पूजयाख्यं तु कुम्भकम् ।
मुखेन वायुं सङ्गृह्य प्राणं रन्ध्रेण रेचयेत् ॥९६॥

शीतलीकरणं चेदं हन्ति पित्तं क्षुधां तृषाम् ।
स्तनयोरधभस्त्रेव लोहकारस्य वेगतः ॥९७॥

रेचयेत्पूरयेद्वायुमाश्रमं देहगं धिया ।
यदा श्रमो भवेद्देहे तदा सूर्येण पूरयेत् ॥९८॥

कण्ठसङ्कोचनं कृत्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ।
वातपित्तश्लेष्महरं शरीराग्निविवर्धनम् ॥९९॥

कुण्डलीबोधकं वक्रदोषघ्नं सुखदं शुभम् ।
ब्रह्मनाडीमुखान्तस्थकफाद्यर्गलनाशनम् ॥१००॥

सम्यगन्तस्समुद्भूतग्रन्थित्रयविभेदकम् ।
विशेषेणैव कर्त्तव्यं भस्त्राख्यं कुम्भकन्त्विदम् ॥१०१॥

बन्धत्रयमथेदानीं प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ।
नित्यं कृतेन तेनासौ वायोर्जयमवाप्नुयात् ॥१०२॥

चतुर्णामपि भेदानां कुम्भके समुपस्थिते ।
बन्धत्रयमिदं कार्यँ वक्ष्यमाणं मया हि तत् ॥१०३॥

प्रथमो मूलबन्धस्तु द्वितीयोडडीयनादिभिः ।
जालन्धरं तृतीयस्तु लक्षणं कथयाम्यहम् ॥१०४॥

गुदं पार्श्वानुसम्पीड्य वायुमाकुञ्चयेद्बलात् ।
वारं वारं यथा चोर्ध्वं समायाति समीरणः ॥१०५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राणापानौ नादबिन्दुमूलबन्धेन चैकताम् ।
गत्वा यागस्य संसिद्धिं गच्छतो नात्र संशयः ॥१०६॥

कुम्भकान्ते रेचकादौ कर्त्तव्यस्तौड्ययानकः ।
बन्धो येन सुषुम्नायां प्राणस्तूड्डीयते यतः ॥१०७॥

तस्मादुड्डियनाख्यो यं योगिभिः समुदाहृतः ।
उड्डियानं तु सहजं गुरुणा कथितं सदा ॥१०८॥

अभ्यसेत्तदतन्द्रस्तु वृद्धोऽपि तरुणो भवेत् ।
नाभेरुर्ध्वमधश्चापि प्राणं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥१०९॥

षण्मासमभ्यसेन्मृत्युञ्जयत्येव न संशयः ।
पूरकान्ते तु कर्त्तव्यो बन्धोजालं धराभिधः ॥११०॥

कण्ठसङ्कोचरूपोऽसौ वायुमार्गनिरोधकः ।
कण्ठमाकुञ्च्य हृदये स्थापयेद्दृढमिच्छया ।
बन्धोजालं धराख्योऽयममृताप्यायकारकः ॥१११॥

अधस्तात्कुञ्चनेनू(नो)र्ध्वं कण्ठसङ्कोचने कृते ।
मध्ये पश्चिमतानेन स्यात्प्राणो ब्रह्मनाडिगः ॥११२॥

वज्रासनस्थितो योगी चालयित्वा तु कुण्डलीम् ।
कुर्यादनन्तरं भस्त्रीकुण्डलीमाशु बोधयेत् ॥११३॥

भिद्यन्ते ग्रन्थयो वंशे तप्तलोहयशलाकया।
तथैव पृष्ठवंशे स्याद् ग्रन्थिभेदस्तु वायुना ॥११४॥

पिपीलिकायां लग्नायां कडुस्तत्र प्रवर्तते ।
सुषुम्नायां तथाभ्यासात् सततं वायुना भवेत् ॥११५॥

रुद्रग्रन्थिं ततो भित्त्वा ततो याति शिवात्मकम् ।
चन्द्रसूर्यौ समौ कृत्वा तयोर्योगं प्रवर्तते ॥११६॥

गुणत्रयमतीतस्य ग्रन्थित्रयविभेदनात् ।
शिवशक्तिसमायोगो जायते परमा गतिः ॥११७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यथा करिकरेणैव पानि(नी)यं प्रपिबेत्सदा ।
सुषम्ना वज्रनाकेन पवमानं ग्रसंत्तथा ॥११८॥

वज्रदण्डे तु सम्भूता मणयश्चैकविंशतिः ।
सुषुम्नायां स्थितास्सर्वे सूत्रे मणिगणा इव ॥११९॥

मोक्षमार्गे प्रविष्टा सा सुषुम्ना विश्वधारिणि(णी) ।
यथैव निश्चितः कालश्चन्द्रसूर्यनिबन्धनात् ॥१२०॥

आपूर्य कुम्भको वायुर्बहिर्नायाति साधके ।
पुनः पुनस्तद्वदेव पश्चिमद्वारलक्षणम् ॥१२१॥

पूरितस्तु सतद्वारैरीषत्कुम्भकतां गतः ।
प्रविशेत्सर्वगात्रेषु वायुः पश्चिममार्गतः ॥१२२॥

रेचितः क्षीणतां याति पूरितः पोषयेत्तदा ।
यत्रैव जातं सकले वरं मनः तत्रैव लीनं कुरुते स योगवित् ।
स एव मुक्तो निरहङ्कृतस्सुखी मूढा न जानन्ति हि पिण्डपातिनः ॥१२३॥

चित्तं विनष्टं यदि भासितं स्यात् तत्र प्रतीतो मरुतो विनाशः ।
न चेद्यदि स्यान्न तु तस्य शास्त्रं नात्मप्रतीतिर्न गुरुर्न मोक्षः ॥१२४॥

जम्बूको रुधिरं यद्वद्बलादाकृष्यति ध्रुवम् ।
ब्रह्मनाडी तथा धातून् सन्तताभ्यासयोगतः ॥१२५॥

अनेनाभ्यासयोगेन नित्यमानसबन्धतः ।
चित्तं विलीनतामेति बिन्दुर्नो यात्यधस्तथा ॥१२६॥

रेचकं पूरकं चोल्का वायुना स्थीयते स्थिरम् ।
नाना नादाः प्रवर्तन्ते स्रंसते चन्द्रमण्डलम् ॥१२७॥

नश्यन्ति क्षुत्पिपासाद्यास्सर्वदोषा(स्)ततस्सदा ।
स्वरूपे सच्चिदानन्दे स्थितिमाप्नोति केवलम् ॥१२८॥

कथितं तु तव प्रीत्या एतदभ्यासलक्षणम् ।
मन्त्रे लयो हठो राजयोगान्तर्भूमिकाक्रमात् ॥१२९॥

एक एव चतुर्थोऽयं महायोगोऽभिधीयते ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देव्युवाच

कथयेदं महादेव योगतत्त्वं चतुर्विधम् ।
भूमिकांशानुसारेण यथाभूतक्रमान्मनः ॥१३०॥

अम्बिकापतिः [उवाच]

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः ।
हंसहंसेति मन्त्रोऽयं सर्वैर्जीवैश्च जप्यते ॥१३१॥

गुरुवाक्यात्सुषुम्नायां विपरीतो भवेज्जपः ।
सोऽहं सोऽहमितीह स्यान्मन्त्रयोगः स उच्यते ॥१३२॥

प्रतीतिर्मन्त्रयोगाच्च जायते पश्चिमे पथि ।
हकारेण तु सूर्योऽसौ ठकारेणेन्दुरुच्यते ॥१३३॥

सूर्याचन्द्रमसोरैक्यं हठ इत्यभिधीयते ।
हठेन गृह्यते जाड्यं सर्वदोषसमुद्भवम् ॥१३४॥

क्षेत्रज्ञः परमात्मा च तयोरैक्यं यथा भवेत् ।
तदैक्ये साधिते देवी चित्तं याति विलीनताम् ॥१३५॥

पवनस्थैर्यमायाति लययोगोदये सति ।
लयात्सम्प्राप्यते सौख्यं स्वात्मानन्दपरं पदम् ॥१३६॥

योनिमध्ये महाक्षेत्रे जपाबन्धुकसन्निभम् ।
रजो वसति जन्तूनां देवि तत्त्वसमावृतम् ॥१३७॥

रजसो रेतसो योगो राजयोग इति स्मृतः ।
अणिमादिपदं प्राप्य राजते राजयोगतः ॥१३८॥

प्राणापानसमायोगो ज्ञेयं योगचतुष्टयम् ।
संक्षेपात्कथितं देवि नान्यथा शिवभाषितम् ॥१३९॥

देवी [उवाच]

कथयस्व महादेव काकमर्कटयोर्मतम् ।
अस्य ग्रन्थे तु नैवोक्तं कथमेतद्द्वयोर्गतिः ॥१४०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ईश्वरः [उवाच]

सत्यमेव त्वयोक्तं ते कथयामि महेश्वरि ।
आदिनाथमहामार्गमे(ए)क एव हि नापरः ॥१४१॥

द्विधैव सम्प्रति(ती)येत जन्मान्तरविभेदतः ।
क्रमेण प्राप्यते प्राप्यमभ्यासादेव नान्यथा ॥१४२॥

एकेनैव शरीरेण योगाभ्यासाच्छनैश्शनैः ।
चिरात्सम्प्राप्यते मुक्तिर्मर्कटक्रम एव सः ॥१४३॥

योगसिद्धिं विना देहः प्रमादाद्य विनश्यति ।
पूर्ववासनया युक्तः शरीरं चान्यथाप्नुयात् ॥१४४॥

ततः पुण्यवशात्सिद्धो गुरुणा सह सङ्गतः ।
पश्चिमद्वारमार्गेण ज(ा)यते त्वरितं फलम् ॥१४५॥

पूर्वजन्मकृताभ्यासात् सत्वरं फलमश्नुते ।
एतदेव हि विज्ञेयं तत्काकमतमुच्यते ॥१४६॥

नास्ति काकसमादन्यमभ्यासाख्यमतः परम् ।
न कर्मणा विना देवि योगसिद्धिः प्रजायते ॥१४७॥

तस्मात्कार्यं तदेवं तत् यस्य कस्यापि साधनम् ।
तेनैव प्राप्यते मुक्तिर्नान्यथा शिवभाषितम् ॥४८॥

हठयोगे क्रमात्कष्टासहजं वलयादिगम् ।
न तर्तुर्मोक्षमार्ग(स्)स्यात्प्रसिद्धं पश्चिमं विना ॥१४९॥

अभ्यासस्य फलं देवि कथयाम्यधुना स्फुटम् ।
आदौ रोगाः प्रणश्यन्ति पश्चाज्जाड्यं शरीरजम् ॥१५०॥

ततस्समरसो भूत्वा चेन्द्रो वर्षत्यनारतम् ।
धातूंश्च सङ्ग्रहेद्वह्निं पवनेन समन्ततः ॥१५१॥

नाना नादाः प्रवर्तन्ते मार्दवं स्यात्कलेवरम् ।
जित्वाष्ट्यादिकं जाड्यं खेचरः स भवेन्नरः ॥१५२॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वज्ञो सो भवेत्कामरूपः पवनवेगवान् ।
क्रीडते त्रिषु लोकेषु जायन्ते सिद्धयोऽखिलाः ॥१५३॥

कर्पूरे लीयमाने किं काठिन्यं तत्र विद्यते ।
अहङ्कारक्षये तद्वद्देहे कठिनता कुतः ॥१५४॥

सर्वकर्ता च योगीन्द्रस्स्वतन्त्रेऽनन्तरूपवान् ।
जीवन्म(मु)क्तो महायोगी जायते नात्र संशयः ॥१५५॥

करुणामृतसागरा [उवाच]

यत्किञ्चित्कल्पनाजालं न तन्मोक्षाय शङ्कर ।
सिद्धयः किं करिष्यन्ति निर्विकल्पे चिदात्मनि ॥१५६॥

एतन्मे संशयं देव छेत्तुमर्हसि पावन ।

श्रीसोमसुन्दरः [उवाच]

सत्येमतत्त्वयोक्तं ते वदामि शृणु सुन्दरि ।
द्विविधास्सिद्धयो लोके कल्पिताकल्पितास्तथा ॥१५७॥

रसौषधिक्रियाजालं मन्त्राभ्यासादिसाधनात् ।
सिद्ध्यन्ति सिद्धयो यास्तु कल्पितास्ताः प्रकीर्तिताः ॥१५८॥

अनित्या अल्पवीर्यास्ताः सिद्धयः साधनोद्भवाः ।
साधनेन विनाप्येवं जायन्ते स्वत एव हि ॥१५९॥

स्वात्मयोगैकनिष्ठेषु स्वतन्त्रदीश्वरप्रियाः ।
प्रभूतास्सिद्धयो यास्ताः कल्पनारहिता(:) स्मृताः ॥१६०॥

सिद्धा नित्या महावीर्या इच्छारूपाः स्वयोगजाः ।
चिरकालात्प्रजायन्ते वासनारहितेषु च ॥१६१॥

तास्तु गोप्या महायोगात्परमात्मपदव्यये ।
विना कार्यं सदा दीप्तं योगसिद्धस्य लक्षणम् ॥१६२॥

यथाकाशं समुद्दिश्य गच्छद्भिः पथिकैः पथि ।
नानातीर्थानि दृश्यन्ते नाथमार्गे तु सिद्धयः ॥१६३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वयमेव प्रजायन्ते लाभालाभविवर्जिते ।
योगमार्गे तथैवेदं सिद्धिजालं प्रवर्तते ॥१६४॥

परीक्षकैः स्वर्णकारैर्हेम सम्प्रोच्यते यथा ।
सिद्धिभिर्लक्षयेत्सिद्धं जीवन्मुक्तस्तथैव च ॥१६५॥

अलौकिकगुणस्तस्य कदाचिद् दृश्यते ध्रुवम् ।
इत्येतत्कथितं देवि योगसिद्धस्य लक्षणम् ॥१६६॥

सिद्धिभिः परिहीनं तु नरं बद्धं तु लक्षयेत् ।
अजरामरपिण्डो यो जीवन्मुक्तस्स एव हि ॥१६७॥

इ्पशुकुक्कुटकीटाद्या मृतिं सम्प्राप्नुवन्ति हि ।
तेषां किं पिण्डपातेन मुक्तिर्भवति सुन्दरी ॥१६८॥

न बहिः प्राण आयाति पिण्डस्य पतनं कुतः ।
पिण्डपातेन या मुक्तिस्सा मुक्तिर्न तु हन्यते ॥१६९॥

देहे ब्रह्मत्वमायाते जलानां सैन्धवं यथा ।
अनन्यता यदा याति तदा मुक्तः स उच्यते ॥१७०॥

चिन्मयानि शरीराणि इन्द्रियाणि तथैव च ।
ब्रह्मदेहत्वमापन्नः यथावाप्त(ो) घनस्तथा ॥१७१॥

एतत्ते कथितं देवि तव प्रीत्या महेश्वरी(रि) ।
गोपनीयं प्रयत्नेन क्रूराद् धूर्तात् शठात्खलात् ॥१७२॥

दातव्यं विष्णुभक्ताय सदाचारपराय च ।
योगबीजं महागुह्यं यन्मया प्रकटीकृतम् ॥१७३॥

श्रीदेव्युवाच

गतो मे संशयो नाथ कृपया तव शङ्कर ।
नमस्ते योगिराजाय सर्वज्ञाय नमो नमः ॥१७४॥

इति सदाशिवानुगृहीतं योगसिद्धामृतं सम्पूर्णम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

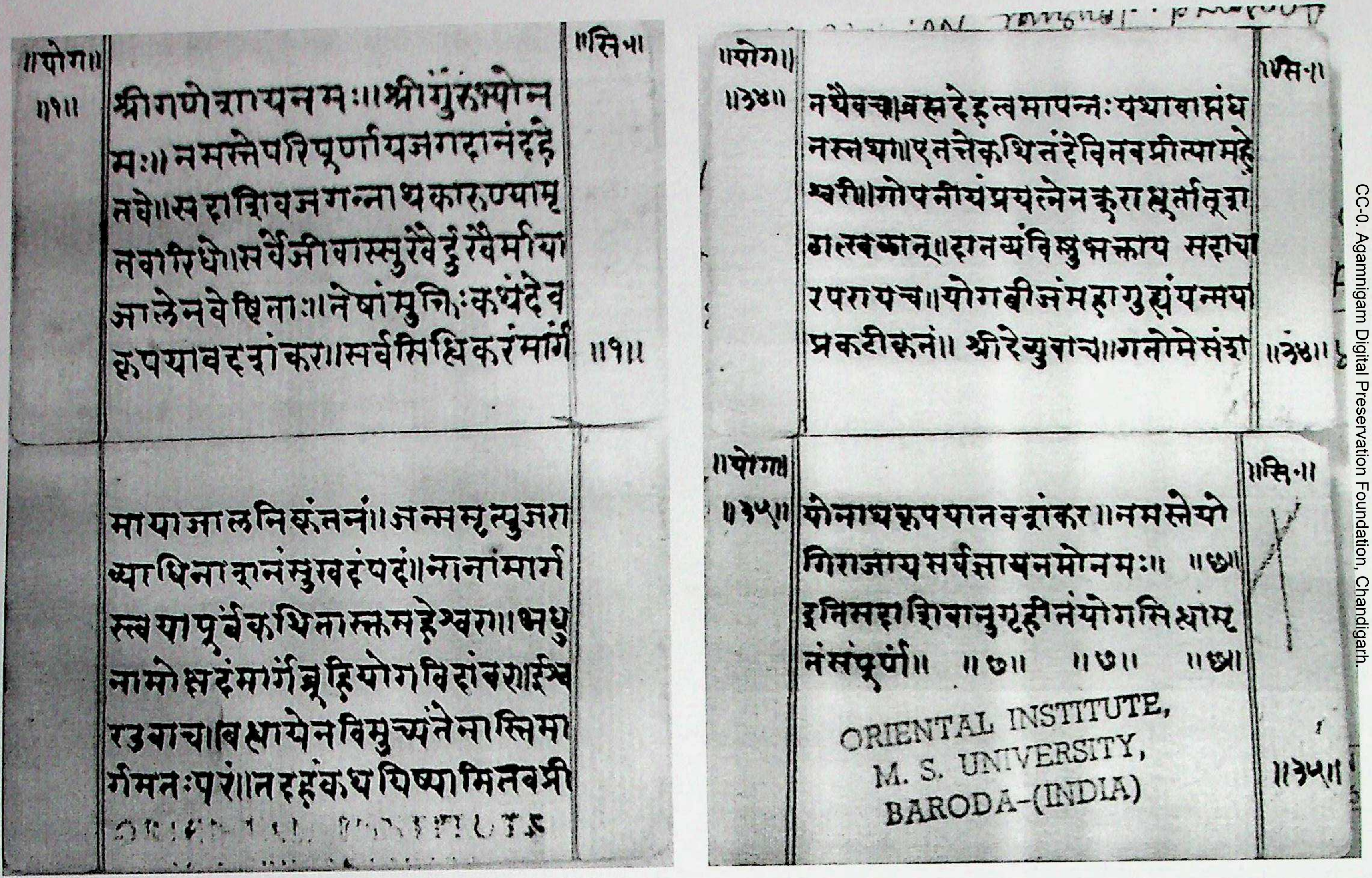
॥योग॥ ॥१॥
श्रीगणेशाय नमः॥श्रीगुरुभ्यो न
मः॥ नमस्ते परिपूर्णाय जगदानंदहे
तवे॥सदाशिव जगन्नाथ कारुण्यामृ
तवारिधे॥सर्वे जीवास्सुखे दुःखैर्माया
जालेन वेष्टिताः॥तेषां मुक्तिः कथं देव
कृपया वद शंकर॥सर्वसिद्धिकरं मार्गं ॥१॥ ॥सि॥

मायाजालनिकृंतनं॥जन्ममृत्युजरा
व्याधिनाशनं सुखदं पदं॥नानामार्गा
स्त्वया पूर्वं कथितास्तु महेश्वर॥अधु
ना मोक्षदं मार्गं ब्रूहि योगविदांवर॥ईश्व
र उवाच॥बंधनाशेन विमुच्यन्ते नास्ति मा
र्गमनःपरं॥न ह्यहं कथयिष्यामि तव श्री

॥योग॥ ॥३४॥
न चैव चास्य देहत्वमापन्नः यथावासंध
नस्तथा॥एतत्ते कथितं देवि तव प्रीत्या महे
श्वरी॥गोपनीयं प्रयत्नेन क्रूराधूर्तान्नरा
ग्रलब्धान्॥दातव्यं विष्णुभक्ताय सदाचा
रपराय च॥योगबीजं महागुह्यं मन्मया
प्रकटीकृतं॥ श्रीदेव्युवाच॥गतो मे संश ॥३४॥ ॥सि॥

॥योग॥ ॥३५॥
योनाथ कृपया तव शंकर॥नमस्ते यो
गिराजाय सर्वज्ञाय नमो नमः॥ ॥छ॥
इति श्रीशिवानुगृहीतं योगसिद्धाम
तं संपूर्णं॥ ॥७॥ ॥७॥ ॥छ॥ ॥सि॥ ॥३५॥

ORIENTAL INSTITUTE,
M. S. UNIVERSITY,
BARODA-(INDIA)

योगसिद्धामृतम्, प्राच्यविद्यामंदिर, पाण्डुलिपि क्रमाङ्क - १२१४५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दत्तात्रेययोगशास्त्रम्-अप्रकाशितग्रन्थस्य सम्पादनम्

रवीन्द्रकुमारः पण्डा*

भूमिका

दत्तात्रेययोगशास्त्रम् एकमप्रकाशितं दत्तात्रेयमुनिना प्रोक्तं योगशास्त्रविषयकं ग्रन्थरत्नमस्ति । अस्य ग्रन्थस्य एका हस्तलिखिता पाण्डुलिपिः प्राच्यविद्यामन्दिरस्य पाण्डुलिपिसंरक्षणगृहे सुरक्षिता । अस्य विषये अधोलिखितानि विवरणानि प्राप्यन्ते ।

क्रमाङ्कः	-	४२०६,	ग्रन्थसंख्या	-	१९०
विषयः	-	योगः	वस्तु	-	कर्गजः
नाम	-	दत्तात्रेययोगशास्त्रम्	लेखनकालः	-	१६३९
पत्राणि	-	१०	भाषा	-	संस्कृतम्

अस्य ग्रन्थस्य प्रारम्भः ''श्रीगणेशाय नमः, अथ श्रीगुरुदत्तात्रेयकृतं योगशास्त्रं लिख्यते । श्रीनृंसिहरूपिणे चिदात्मने सुखरूपिणे पद्यैस्त्रिभिर्निरूपिताय नमः'' इत्यनेन भवति ।

अस्मिन् ग्रन्थे १६६ श्लोका अनुष्टुप् छन्दसा विरचिताः सन्ति । भाषातिसरला मृदुला च । पूर्वोक्तात् 'लिख्यते' इति पदादेव विज्ञायते यत् गुरुणा दत्तात्रेयेण विषयाः प्रोक्ताः । तत् सर्वं केनापि अन्येन जनेन लिखितम् ।

अस्मिन् ग्रन्थे विशेषेण प्रमुखाः योगसिद्धान्ता वर्णिताः । यद्यपि विषयाणामुपस्थापनं सम्यक् कृतं तथापि न किमपि नूतनं मौलिकं वा प्राप्यते । योगविषये जिज्ञासूणां कृते नूनमेव लाभदायकमस्ति पुस्तकमिदम् ।

ग्रन्थेऽशुद्धयः सन्ति । छन्दोदोषास्तथाच व्याकरणदोषा अपि सन्ति । एकस्यैव हस्तलिखितस्य प्राप्तिकारणात् कठिनं जातमेव सम्पादनकार्यम् । तथापि यथामति कार्यं कृतं मया । कतिपयेषु स्थलेषु मम संशयाः सन्ति । तेषां निराकरणोपाया अधुना न दृश्यन्ते । अतो विरमामि ।

'स्वाध्याय' – पु. ५९, वर्ष २०२२, पृ. २७-४० ISSN 2250-0391

* संस्कृतपालिप्राकृत-विभागः, महाराजा सयाजीराव-विश्वविद्यालयः वडोदरा, M: 09974262038
Email: panda_rabindra@rediffmail.com

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अस्मिन् ग्रन्थे योगानां प्रकाराः वर्णिताः । राजयोगस्य लययोगस्य प्राणायामस्य, धारणायाश्च विशेषरूपेण वर्णनं रुचिकरम् । मुद्राणामपि वर्णनं सुस्पष्टम् । यद्यपि स्वल्पा एव विषयाः गृहीताः सन्ति तथापि इदमुपादेयम् । अयमेकः प्रकरणग्रन्थ इति कथयितुं शक्यते ।

श्रीगणेशाय नमः

अथ श्रीगुरुदत्तात्रेयकृतं योगशास्त्रं लिख्यते ।
श्रीनृसिंहरूपिणे चिदात्मने सुखरूपिणे पदैस्त्रिभिर्निरूपिताय नमः ।

सांकृतिर्मुनिवर्योऽसौ भूतले योगलिप्सया ।
सकलं च परिभ्रम्य नैमिषारण्यमाप्नुयात् (मापयत्) ॥१॥

सुगन्धि नानाकुसुमैः स्वादु सत्फलसंयुतैः ।
शाखाभिः शोभितं पुण्यं जलं कासारमण्डितम् ॥२॥

सुमुनिर्विचरन्तत्र ददर्शामृतसिन्धवैः (सिन्धवम्)
वेदिकायां समासीनं दत्तात्रेयं महामुनिम् ॥३॥

बद्धपद्मासनो नाम नासाग्रार्पितया दृशा ।
उरूमध्यगतोत्तानपाणियुग्मेन शोभितम् ॥४॥

ततः प्रणम्यमखिलं दत्तात्रेयं स साकृतिम् (सांस्कृतिः) ।
तच्छिष्यैः सह तत्रैव सन्मुखश्चोपविष्टवान् ॥५॥

तदेव सुमुनिर्योगाद् विरम्य स्वपुरस्थितम् ।
उवाच सांकृतिं प्रीतिपूर्वकं स्वागतं वचः ॥६॥

सांकृते कथय त्वं मां किमुद्दिश्य इहागतः ।
इति पृष्टः स ह प्राह योगज्ञानमिहागतः (योगज्ञानार्थमागतः) ॥७॥

श्रीदत्तात्रेय उवाच-
योगो हि बहुधा ब्रह्मन् तत्सर्वं कथयामि ते [त्वां वदाम्यहम्] ॥८॥

मन्त्रयोगो लयश्चैव हठयोगस्तथैव च ।
राजयोगो चतुर्थः स्याद्योगानामुत्तमः स्मृतः ॥९॥

आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयस्मृतः ।
निष्पत्तिश्चेत्यवस्था च चतुर्धा परिकल्पिता ॥१०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अंगेषु मातृकान्यासपूर्वमन्त्रं जपेत्सुधीः ।
एवं कृतो हि सिद्धिः स्यान्मन्त्रयोगः स उच्यते॥११॥

मृदुस्तस्याधिकारी स्याद्वादशाब्देस्तु साधनात् ।
प्रायेणोक्तमते ज्ञानं सिद्धिश्चैवाणिमादिका ॥१२॥

अल्पबुद्धिरिमं योगं सेवन्ते साधकाधमाः ।
मन्त्रयोगो ह्ययं प्रोक्तो योगानामधमस्तथा ॥१३॥

लययोगश्चित्तलयात्संकेतैस्तु प्रजायते ।
आदिनाथेन संकेता अष्टकोटिः प्रकीर्तिताः ॥१४॥

सांकृतिरुवाच-

भगवन्नादिनाथस्य कोऽयं रूपः स उच्यते किमिदं रूपमुच्यते ।
श्रीदत्तात्रेयनामानि आदिनाथश्च भैरवः ॥१५॥

शिव ईशश्च देवोऽयं लीलया विचरन् प्रभुः ।
श्रीकण्ठपर्वतो गोर्या सह प्रथमनायकान् ॥१६॥

हिमाक्षपर्वतो चैव कदलीवनगोचरे ।
गिरिकूटे चित्रकूटे सपादनियतैर्गुरोः ॥१७॥

कपर्यैकैकसंकेतं शङ्करः प्राह तत्र तान् ।
मतानि सर्वाणि वक्तुं न शक्नोमि सुविस्तरात् ॥१८॥

कानिचित्कथयिष्यामि सहजाभ्यासवत्सुखम् ।
तिष्ठन् गच्छन् स्वपन् भुञ्जन् ध्यायन् शून्यमहर्निशम् ॥१९॥

अयमेको हि सङ्केतरादिनाथेन भाषितम् ।
नासाग्रदृष्टिमात्रेणापरस्तु परिकीर्तितः ॥२०॥

शिरः पश्चाच्च भागस्य ध्यानं मृत्युञ्जये परम् ।
भ्रूमध्ये दृष्टिमात्रेण परः सङ्केत उच्यते ॥२१॥

ललाटे भूतले यश्च उत्तमः परिकीर्तितः ।
सव्यदक्षिणपादस्याङ्गुष्ठे च लयमुत्तमम् ॥२२॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्तानशिखराद् भूमौ शयनं चोक्तमुत्तमम् ।
शिथिलो निर्जने देशे कुर्याश्चेत्सिद्धिमाप्नुयात् ॥२३॥

एवं च बहुसङ्केतान् कथयामास शङ्करः।
सङ्केतैर्बहुभिश्चान्यैर्यस्य चित्तलयो भवेत् ॥२४॥

स एव लययोगः स्याद् हठयोगं ततः शृणु ।
यमश्च नियमश्चैवासनं चैव ततः परम् ॥२५॥

प्राणायामश्चतुर्थः स्यात् प्रत्याहारस्तु पञ्चमः ।
ततस्तु धारणा प्रोक्ता ध्यानं सप्तममुच्यते ॥२६॥

समाधिरष्टमः प्रोक्तः सर्वपुण्यफलप्रदः ।
एवमष्टाङ्गयोगं च याज्ञवल्क्यादयो विदुः ॥२७॥

कपिलाद्यास्तु सिद्धश्च हठं कुर्यात् ततो यथा ।
तद्यथा च महामुद्रा महाबन्धस्तथैव च ॥२८॥

ततस्यात्खेचरीमुद्रा बन्धो जालन्धरस्तथा ।
उड्डियाणं मूलबन्धो विपरीतवृत्तिस्तथा ॥२९॥

वज्रालीरमरोलीश्च सहजोलिस्त्रिधा मता ।
एतेषां लक्षणं वक्ष्ये कर्तव्यश्च विशेषतः ॥३०॥

यमा ये दश संप्रोक्ता ऋषिभिः तत्त्वदर्शिभिः ।
लघ्वाहारस्तु तेष्वेको मुख्यो भवति नापरे ॥३१॥

अहिंसा नियमेष्वेको मुख्यो भवति ना(चा)परे ।
चतुरशीति लक्षेषु आसनेषूत्तमं शृणु ॥३२॥

आदिनाथेन संप्रोक्तं पद्मासनमिहोच्यते ।
उत्तानचरणौ कृत्वा ऊरुसंस्थौ प्रयत्नतः ॥३३॥

ऊरुमध्ये तथौत्तानौ पाणी कृत्वा तु तादृशौ ।
नासाग्रे विन्यसेद्रज्ञः (?) दन्तमूलं च जिह्वया ॥३४॥

उत्तमां (?) चिबुकं वक्षः संस्थाप्य पवनं शनैः ।
यथाशक्त्या समाकृष्य पूरयेदुदरं शनैः ॥३५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यथाशक्त्यैव पश्चात्तु रेचयेत् पवनं शनैः ।
इदं पद्मासनं प्रोक्तं सर्वव्याधिविनाशकम् ॥३६॥

दुर्लभं येन केनापि धीमता लभ्यते भुवि ।
सांकृते शृणु सत्त्वस्य योगाभ्यासक्रमं मया ॥३७॥

वक्ष्यमाणं प्रयत्नेन योगिनां सर्वलक्षणैः ।
युवावस्थोऽतिवृद्धो वा व्याधितो वा शनैः शनैः ॥३८॥

अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति योगे सर्वेप्यतन्द्रितः ।
ब्राह्मणश्रमणो वापि बुद्धो वाप्यर्हतोऽपि वा ॥३९॥

कापालिको वा चार्वाकः श्रद्धया सहितः सुखी ।
योगाभ्यासरतो नित्यं सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥४०॥

क्रियायुक्तस्य सिद्धिः स्यादक्रियस्य कथं भवेत् ।
न शास्त्रपाठमात्रेण कथं सिद्धिः प्रजायते ॥४१॥

मुण्डितो दण्डधारी वा कासायवसनोऽपि वा ।
नारायणवदो (?) वापि जटिलो भस्मलेपनः ॥४२॥

नमः शिवाय वाऽन्यो वा ब्रह्मार्चापूजकोऽपि वा ।
स्थानद्वादशपूज्यो वा बहुवत्सरभाषितः ॥४३॥

क्रियाहीनाथो वा क्रूरः कथं सिद्धिमवाप्नुयात् ।
न वेषधारिणं सिद्धेः कारणं न च तत्कथा ॥४४॥

क्रियैव कारणं सिद्धेः सत्यमेव तु सांकृते ।
शिश्नोदरार्थयोगस्य कथं ये वेषधारिणः ॥४५॥

अनुष्ठानविहीनास्तु वञ्चयन्ति जनाः (जनान्) किल ।
उच्चावचोर्विप्रलम्भैर्यतन्ते कुशला नराः ॥४६॥

योगिनो वयमित्येवं मूढा भोगपरायणाः ।
शनैस्तथाविधानज्ञा योगाभ्यासविवर्जिताः ॥४७॥

वृथा तान्वचनैरेवं वर्जयेद् द्वेषकारिणः ।
एते तु विघ्नभूतास्ते योगाभ्यासस्य सर्वदा ॥४८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्जयेत् तान्प्रयत्नेन ईदृशी सिद्धिद्धा क्रिया ।
प्रथमाभ्यासकाले तु प्रवेशस्तु महामुनेः ॥४९॥

आलस्यं प्रथमो विघ्नो द्वितीयं च प्रकथ्यते ।
पूर्वोक्तधूर्तगौष्ठी च तृतीयो मन्त्रसाधनम् ॥५०॥

चतुर्थो धातुवादः स्यात् पञ्चमोऽखाद्यवादकम् (खादनम्) ।
एवञ्च बहवो दोषा मृगतृष्णासमा मुने ॥५१॥

स्थिरासनस्य जायन्ते तास्तु ज्ञात्वा त्यजेत् सुधीः ।
प्राणायमं ततः कुर्यात् पद्मासनगतः (स्थितः) स्वयम् ॥५२॥

सुशोभनं मटं कुर्यात् सूक्ष्मद्वारं तु निर्व्रजम् ।
सुष्टु लिप्तं गोमयेन सुधिया वा प्रयत्नतः ॥५३॥

मत्कुणे सशकैभूत्तैर्वर्जितं तु प्रयत्नतः ।
दिने दिने सुसंमृष्टं संमार्जयेदतन्द्रितः ॥५४॥

वासितं च सुगन्धेन धूपितं गुग्गुलादिभिः ।
मलमूत्रादिभिर्वैगैरष्टादशभिरेव च ॥५५॥

वर्जितं द्वारसम्पन्नं वस्त्रं वा जीर्णमेव च ॥
नान्यात्रास्तरणासीनः परसङ्गविवर्जितः॥५६॥

तस्मिन्स तु समास्तीर्यासनं हि विस्तरं स्वकम् ।
तत्रोपविश्य मेधावी पद्मासनसमन्वितः ॥५७॥

समं कायं प्राञ्जलिश्च प्रणम्य चेष्टदेवताम् ।
ततो दक्षिणहस्तस्य अङ्गुष्ठेनैव पिङ्गलम् ॥५८॥
[दक्षिणहस्तस्याङ्गुष्ठेनैव च पिङ्गलम्]

निरुध्य पूरयेद्वायुमिडया य शनैः शनैः ।
यथाशक्त्या निरोधेन ततः कुर्यात् तु कुम्भकम् ॥५९॥

ततस्त्यजेत् पिङ्गलया शनैरेव नवगतः (नवागतः) ।
पुनः पिङ्गलया पूर्य पूरयेदुदरं शनैः ॥६०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यथा त्यजेत्तथा पूर्य धारयेदनिरोधतः ।
एवं प्रातः समासीनः कुर्याद्विंशति कुम्भकान् ॥६१॥

कुम्भकःसहितो नाम सर्वग्रहविवर्जितः ।
एवं मध्याह्नसमये कुर्याद्विंशति कुम्भकान् ॥६२॥

एवं सायं प्रकुर्वीत पुनर्विंशति कुम्भकान् ।
एवमेवार्द्धरात्रेऽपि कुर्याद्विंशति कुम्भकान् ॥६३॥

कुर्वीत रेचपूराभ्यां सहितं प्रतिवासरम् ।
सहितो रेचपूराभ्यां तस्मात्सहितकुम्भकम् ॥६४॥

कुर्यादेवं चतुर्वारमभ्यासस्य दिने दिने ।
एवं मासत्रयं कुर्यान्नाडीशुद्धिस्ततो भवेत् ॥६५॥

यदा तु नाडिशुद्धिः स्यात्तदा चिह्नानि बाह्यतः ।
जायन्ते योगिनो देहे तानि वक्ष्याम्यशेषतः ॥६६॥

शरीरलघुतादीप्तिर्जठराग्निविवर्धनम् ।
कृशत्वं च शरीरस्य तदा जायते निश्चितम् ॥६७॥

तदा वर्ज्यान् प्रवक्ष्यामि योगविघ्नकराणि तु ।
लवणं सर्षपश्चाम्लमुष्णं रूक्षं च तीक्ष्णम् ॥६८॥

अतिभोजनं त्याज्यं स्त्रीसङ्गं च (चैव) तथा पुनः ।
अग्निसेवा तु सन्त्याज्या धूर्तगोष्ठीं च सन्त्यजेत् ॥६९॥

उपायं च प्रवक्ष्यामि क्षिप्रं योगस्य सिद्धये ।
क्षीरं घृतं च मिष्टान्नं मिताहारश्च शस्यते ॥७०॥

पूर्वोक्तकाले कुर्वीत पवनाभ्यासमेव च ।
ततः परं यथेष्टं तु शक्तिस्याद्वायुधारणे ॥७१॥

ततोऽधिकतराभ्यासाद् बलमुत्पद्यते भृशम् ।
येन भूचरसिद्धिः स्याद्भूचरणां जये क्षमः ॥८०॥

व्याघ्रो लुलायो वाण्यो वा गवयो गज एव च ।
सिंहो (महिषः) वा योगिना (वराहः) तेन म्रियते हस्तताडनात् ॥८१॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कन्दर्पस्य यथारूपं तथा तस्यापि योगिनः ।
तस्मिन् काले महाविघ्नो योगिनः स्यात्प्रमादतः ॥८२॥

तद्रूपवशगा नार्यः काङ्क्षते तस्य सङ्गमम् ।
यदि सङ्गं करोत्येव बिन्दुस्तस्य विनश्यति ॥८३॥

आयुः क्षयो बिन्दुनाशादसामर्थ्यं च जायते ।
तस्मात्स्त्रीणां सङ्गं वर्ज्यं कुर्यादभ्यासमादरात् ॥८४॥

योगिदेहं सुगन्धि स्यात्सततं बिन्दुधारणात् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन बिन्दुरक्षो हि योगिना ॥८५॥

ततो रहस्यूपविष्टः प्रणवः प्लुतमात्रया ।
जपेत्पूर्वार्जितानां च पापनाशनहेतवे ॥८६॥

सर्वविघ्नहरश्चायं प्रणवः सर्वदोषहा ।
एवमभ्यासयोगेन सिद्धिरारम्भसम्भवः ॥८७॥

ततो भवेद् घटावस्था पवनाभ्यासिनस्तदा ।
प्राणापानौ मनोवायुर्जीवात्मपरमात्मनोः ॥८८॥

अन्योन्यस्याविरोधेन एकता घटते सदा ।
तदा भवेत्घटावस्था प्रसिद्धा योगिनां सदा ॥८९॥

ततश्चिह्नानि यानि स्युस्तानि वक्ष्यामि कानिचित् ।
पूर्वं यः कथितोभ्यासश्चतुर्धान्तः परित्यजेत् ॥९०॥

दिवा वा यादि वा रात्रौ याममात्रं समभ्यसेत् ।
एवं चिरं प्रतिदिनं कुर्यात्केवलकुम्भकम् ॥९१॥

प्रत्याहारो हि एवं स्यादेवं कर्तुं हि योगिनः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो यत्प्रत्याहरति स्फुटम् ॥९२॥

योगी कुम्भकमास्थाय प्रत्याहारः स उच्यते ।
यद्यत्पश्यति चक्षुर्भ्यां तत्तदात्मनि भावयेत् ॥९३॥

त्वया यद्यत्संस्पृशति तत्तदात्मनि भावयेत् ।
यद्यज्जिघ्रति नासाभ्यां तत्तदात्मनि भावयेत् ॥९४॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जिह्वया यद्रसयति तत्तदात्मनि भावयेत् ।
एवं ज्ञानेन्द्रियाणां हि तत्संख्याभिस्तु संधयेत् ॥९५॥

यामं यामं प्रतिदिनं योगी यत्नादतन्द्रितः ।
सदा विचित्रसमर्थ्यं योगिनां जायते ध्रुवम् ॥९६॥

दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः क्षणाद्दूरगतस्तथा ।
वाक्सिद्धिः कामचारीत्वमदृश्यकरणं तथा ॥९७॥

मलमूत्रप्रलेपेन लोहादीनां च स्वर्णता ।
खेचरत्वं तथान्यत्तु सतताभ्यासयोगतः ।
तदा बुद्धिमता भाव्यं योगिनां योगसिद्धये ॥९८॥

एते विघ्ना महासिद्धेर्न रमं तेषु (रमत्तेषु) बुद्धिमान् ।
न दर्शयेद्वै कस्मैचित्स्वसामर्थ्यं हि सर्वदा ॥९९॥

कदाचिद्दर्शयेत्प्रीत्या भक्तियुक्ताय वा पुनः ।
यथा मूर्खो यथा मूढो यथा बधिर एव वा ॥१००॥

तथा वर्तेत लोकेषु स्वसामर्थ्यस्य गुप्तये ।
तेन भवन्ति वै लाभा बहवो नास्ति संशयः ॥१०१॥

स्वस्वकार्येषु योगीन्द्रं प्रार्थयन्ति न संशयः ।
तत्कर्मकरणे व्यग्रः स्वाभ्यासे विस्मृतो भवेत् ॥१०२॥

अभ्यासेन विहीनस्तु ततो लौकिकतां व्रजेत् ।
अविस्मृत्य गुरोर्वाक्यमभ्यसेत्तदहर्निशम् ॥१०३॥

एवं भवेत्घटावस्था सतताभ्यासयोगतः ।
अनभ्यासेन योगेन वृथा गोष्ठ्या न सिध्यति ॥१०४॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन योगमेव समभ्यसेत् ।
ततः परिचयावस्था जायतेऽभ्यासयोगतः ॥१०५॥

प्रयत्नैः पूरितो वायुरग्निना सह कुण्डलिम् ।
बोधयित्वा सुषुम्णायां प्रविशेदविरोधतः ॥१०६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वायुना सह चित्तं तु प्रविशेच्च महापथम् ।
महापथं श्मशानं च सुषुम्णाप्येकमेव हि ॥१०७॥

नाम्ना मतान्तरे भेदः फले भेदो न विद्यते ।
वर्त्तमानं भविष्यं च भूतार्थं चापि चेत्यसौ ॥१०८॥

यस्य चित्तं स पचनं सुषुम्णा प्रविशेद्दिवम् ।
भव्यानर्थान्स विज्ञाय योगी रहसि यत्नतः ॥१०९॥

पञ्चधा धारणं कुर्यात्ततद्भूतं भयावहम् ।
पृथिवीधारणां वक्ष्येत्पार्थिवे शोभयामहम् ॥११०॥

नाभेरधो गुदस्योर्ध्वं घटिका पञ्च धारयेत् ।
वायुं ततो भवेत्पृथ्वीधारणां तद्भयापहाम् ॥१११॥

पृथिवीसंभवस्तस्य न मृत्युयोगिनां भवेत् ।
नाभिस्थाने ततो वायुर्धारयेत्पञ्च नाडिका ॥११२॥

ततो जलाद्भयं नास्ति जले मृत्युर्न योगिनः ।
नाभ्यूर्ध्वमण्डले वायुं धारयेत्पञ्च नाडिका ॥११३॥

अग्नीया धारणा सेयं न मृत्युस्तस्य वह्निना ।
न दह्यते शरीरं च प्रक्षिप्ताप्यग्निकुण्डके ॥११४॥

नाभिभ्रुवोर्हि मध्ये तु स देशत्रयसंयुते ।
धारयेत्पञ्चघटिका वायुं सैषा हि वायवी ॥११५॥

धारणान् न (वायस्तु?) योगिनो हि भवेद्भयम् ।
भ्रूमध्यादुपरिष्टात्तु धारयेत्पञ्चनाडिका ॥११६॥

वायुं योगी प्रयत्नेन सैवामाकाशधारणा ।
आकाशधारणां कुर्वन्मृत्युञ्जयति तत्त्वतः ॥११७॥

तत्र तत्र स्थितो वापि सुखमत्यन्तमश्नुते ।
एवं च धारणा पञ्च कुर्याद्योगी विचक्षणः ॥११८॥

ततो दृढशरीरस्यान्मृत्युस्तस्य न विद्यते ।
इत्येवं पञ्चभूतानां धारणां यः समभ्यसेत् ॥११९॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ब्रह्मणः प्रलयो वापि मृत्युस्तस्य न विद्यते ।
समभ्यसेत्तदा ध्यानं घटिका सप्तमेव च ॥१२०॥

वायुं निरुध्य ध्यायेत्तु देवतामिष्टदायिनीम् ।
स गुणध्यानमेव स्यादणिमादिगुणप्रदम् ॥१२१॥

निर्गुणं खमिव ध्यात्वा मोक्षमार्गं प्रपद्यते ।
निर्गुणध्यानसम्पन्नः समाधिं च ततोऽभ्यसेत् ॥१२२॥

दिनद्वादशकेनैव समाधिसमावाप्नुयात् ।
वायुं निरुध्य मेधावी जीवन्मुक्तो भवेत्ध्रुवम् ॥१२३॥

समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनः ।
यदि स्याद्देहमुत्सृष्टुमिष्टा चेदुत्सृजेत्स्वयम् ॥१२४॥

परब्रह्मणि लीयेत त्यक्त्वा कर्म शुभाशुभम् ।
अथ येन समुत्सृष्टं स्वशरीरं यदि प्रियम् ॥१२५॥

सर्वलोकेषु विचरेदणिमादिगुणान्वितः ।
कदाचित्स्वेच्छया देवो भूत्वा स्वर्गेऽपि सञ्चरेत् ॥१२६॥

मनुष्यो वापि यक्षो वा स्वेच्छया हि क्षणाद्भवेत् ।
सिंहो व्याघ्रो गजो वा स्यादिच्छया जन्तुतां व्रजेत् ॥१२७॥

यथेष्टमेवं वर्त्तेत योगी विद्वान्महेश्वरः ।
कपिमार्गोऽयमुक्तस्ते सांकृतेष्टाङ्गयोगतः ॥१२८॥

सिद्धानां कपिलादीनां मतं वक्ष्ये ततः परम् ।
अभ्यासभेदतो भेदः फलं तु सममेव हि ॥१२९॥

महामुद्रां प्रवक्ष्यामि भैरवेणोक्तमादरात् ।
पार्ष्णिवामस्थपादस्य योनिस्थाने नियोजयेत् ॥१३०॥

प्रसार्य दक्षिणं पादं हस्ताभ्यां धारयेद् दृढम् ।
चुबुकं हृदि विन्यस्य पूरयेद्वायुना पुनः ॥१३१॥

कुम्भकेन यथाशक्त्या धारयित्वा तु रेचयेत् ।
वामाङ्गेन समभ्यस्य दक्षिणाङ्गेन चाभ्यसेत् ॥१३२॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रसारितस्तु यः पादः तमूरूपरि विन्यसेत् ।
अयमेव महाबन्धो मुद्रावच्चामुमभ्यसेत् ॥१३३॥

महाबन्धस्थितो भूमौ स्फिजौ संतापयेच्छनैः ।
अयमेव महाबन्धः सिद्धैरभ्यस्य ते नरैः ॥१३४॥

अन्तः कपालविवरे जिह्वां व्यावर्त्य बन्धयेत् ।
भ्रूमध्ये दृष्टिरप्येषा मुद्रा भवति खेचरी ॥१३५॥

कण्ठमाकुञ्च्य हृदये स्थापयेद् दृढमिष्टया ।
जालन्धरं बन्धये वत्ह्यमृतव्ययपालकः ॥१३६॥

नाभिस्थाग्निकपालस्थसहस्त्रकमलच्युतम् ।
अमृतं सर्वदा तावद्वह्निर्ज्वलति देहिनः ॥१३७॥

यथा चाग्निस्त्वदमृतं न पिबेत्तु पिबेत्स्वयम् ।
याति पश्चिममार्गेण एवमभ्यासतः सदा ॥१३८॥

अमृतं कुरुते देहं जालन्धरमतोऽभ्यसेत् ।
उड्डीयाणं तु सहजं गुणौधात्कथितं सदा ॥१३९॥

अभ्यसेदतन्द्रो यो वृद्धोऽपि तरुणो भवेत् ।
नाभेरुर्ध्वमधश्चापि तान्वै कुर्यात्प्रयत्नतः ॥१४०॥

षण्मासमभ्यसेन्मृत्युञ्जयेदेवं न संशयः ।
मूलबन्धं तु यो नित्यमभ्यसेद्यः स योगवित् ॥१४१॥

गुदेया-र्मातु संपीड्य वायुमाकुञ्चयेद् बलात् ।
वारं वारं यथा चोर्ध्वं समाधाति समीरणः ॥१४२॥

प्राणापानौ नादबिन्दुमूलबन्धेन चैकताम् ।
गत्वा योगस्य संसिद्धिं गच्छति नात्र संशयः ॥१४३॥

करणं विपरीताख्यं सर्वव्याधिविनाशकम्।
नित्यमभ्यासयुक्तस्य जठराग्निर्विवर्धते ॥१४४॥

आहारो बहुलस्तस्य संपाद्यः सांकृते ध्रुवम् ।
अल्पाहारो यदि भवेदग्नि दाहं करोति वै ॥१४५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऊर्ध्वं भानुरधश्चन्द्रस्तद्यथा शृणु सांकृते ।
अधः शिरश्चोर्ध्वपादः क्षणं स्यात्प्रथमे दिने ॥१४६॥

क्षणात्तु किञ्चिदधिकमभ्यसेच्च दिने दिने ।
वलिश्च पलितश्चैव षण्मासोर्ध्वं न दृश्यते ॥१४७॥

याममात्रं हि यो नित्यमभ्यसेत्स तु योगवित् ।
वज्रोलिं कथयिष्यामि योषितां सर्वयोगिभिः ॥१४८॥

अतीवैतद्रहस्यं हि न देयं यस्य कस्यचित् ।
स्वप्राणैस्तु समो यस्य तस्यैव कथयेद् ध्रुवम् ॥१४९॥

स्वेच्छया वर्त्तमानोऽपि योगो तु नियमैर्विना ।
वज्रोलीर्यो विजानाति स योगी सिद्धिभाजनः ॥१५०॥

तत्र वस्तुद्वयं वक्ष्ये दुर्लभं येन केनचित् ।
लभ्यते यदि तस्यैव योगसिद्धिकरं स्मृतम् ॥१५१॥

श्रीरामक्षीरमाङ्गीर द्वयोराद्यं तु लभ्यते ।
द्वितीयं वर्णनं पुंसां स्त्रीभ्यः साध्यमुपायतः ॥१५२॥

योगाभ्यासरता स्त्री च पुमान् यत्नेन साधयेत् ।
पुमान् स्त्रीवादन्योन्यं स्त्रीस्त्वं पुंस्त्वानपेक्षया ॥१५३॥

स्वप्रयोजनमात्रैकसाधनात् सिद्धिमाप्नुयात् ।
चलितं तु स्वकं बिन्दुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत् ॥१५४॥

एवं च रक्षितो बिन्दुर्मृत्युं जयति तत्त्वतः ।
मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात् ॥१५५॥

बिन्दुरक्षाप्रसादेन सर्वे सिध्यन्ति योगिनः ।
अमरोलिस्तद्यथा स्यात्सहजोलिस्ततो यथा ॥१५६॥

तदभ्यासक्रमेशस्य सिद्धानां सम्प्रदायतः ।
एतैः सर्वैस्तु कथितैरभ्यसेत्कालकालतः ॥१५७॥

ततो भवेन्द्राजयोगानान्तरा भवति ध्रुवम् ।
न द्रड् (दृढ्) मात्रेण सिद्धिस्यादभ्यासेनैव जायते ॥१५८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजयोगो वरं प्राप्य सर्वसत्वशङ्करम् ।
सर्वं कुर्यान्न वा कुर्याद्यथारुचि विचेष्टितम् ॥१५९॥

यथान्तन्वययोगेन निष्पन्ना योगिनः क्रिया ।
तदवस्था हि निष्पत्तिर्भुक्तिं मुक्तिं प्रदापयेत् ॥१६०॥

सर्वं ते कथितं ब्रह्मन्सांकृते योगमाचरात् ।
इति तस्य वचः सांकृतेर्योगमानवः (?) ॥१६१॥

सर्वसिद्धिमवाप्यासौ दत्तात्रेयप्रसादतः ।
यदिदं पठते नित्यं सायुज्यः श्रावयेदपि ॥१६२॥

तस्य योगः क्रमेणैव सिद्ध्यत्येव न संशयः ।
योगिनोऽभ्यासयुक्तस्यारण्येषु च गृहेषु च ॥१६३॥

बहुकालं रमन्ते स्म बहुकालविवर्जितः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन योगमेव समभ्यसेत् ॥१६४॥

योगाभ्यासो जन्मफलं विफला हि तथा क्रिया ।
महामायाप्रसादेन सर्वं यामस्तु तत्सुखम् ।
एतत्सर्वं यथा युक्तं तमेवाराधयेत्ततः ॥१६५॥

यः संस्मृत्यं मुनीनामपि दुरितहरो योगसिद्धिप्रदश्च
काकण्याद्याः प्रवक्तामुखहृदयहृतो योगशास्त्रस्य नाथः ।
तस्याह भक्तिशून्योऽप्यखिलजनगुरोर्भक्तिचिन्तामणे हि
दत्तात्रेयस्य विद्वः पदनलिनयुगं नित्यमेवं प्रपद्ये ॥१६६॥

इति श्रीदत्तात्रेयप्रोक्तं योगशास्त्रं सम्पूर्णम् ।

शुभमस्तु ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

योगसारः-अप्रकाशितग्रन्थः

अनिलकुमारः*

प्रस्ताविकम्

हस्तलिखितग्रन्थानां विद्यते विशिष्टयोगदानम्, तत्र केचन प्रकाशिता भवन्ति केचन अप्रकाशिताश्च । बडौदानगरे स्थितेन प्राच्यविद्यामन्दिरानुसन्धानकेन्द्रेण अप्रकाशितहस्तलिखितग्रन्थानां सम्पादनं प्रकाशनं च निरन्तरं क्रियते । तत्रत्याया निदेशिकायाः सहयोगेन केचन हस्तलिखितग्रन्थाः मयापि लब्धाः, ये चात्र सम्पादिताः । तत्राद्यो योगसार इति नाम्ना ग्रन्थो विद्यते । २७ पत्रविशिष्टस्य तदनुसारेण ५३ पृष्ठात्मकस्यास्य ग्रन्थस्याधिगमसङ्ख्या१२१४५ अङ्कितास्ति. ०९x०५ से.मी. परिमिते प्रत्येकं पृष्ठे ६ पङ्क्तयः, १४-१५ अक्षराणि च सन्ति । यत्र चतुर्ष्वध्यायेषु क्रमेण २६, ३४, ३५, २७ श्लोकास्सन्ति । एवमेवात्र द्वितीयो ग्रन्थः परिशिष्टभागे योगसारः श्रीयोगसारो वेति नाम्ना समावेशितः । ४ पत्र विशिष्टे ग्रन्थेऽस्मिन् ६ पृष्ठा विद्यन्ते । पङ्क्तीनां पृष्ठस्य परिमाणम्, पङ्क्तीनां सङ्ख्या, अक्षराणां च सङ्ख्या यथापूर्वं विद्यते । यद्यपि नास्ति मूले श्लोकसङ्ख्या तथापि गणनाक्रमेण १३ श्लोका अत्र विलसन्ति । सदाशिवयोगिनाथविरचितः तारकयोगः तृतीयो ग्रन्थोऽस्ति, यश्च योगशास्त्रे शिवप्रदीपकासारे तारकयोगविधानं नाम चतुर्थपटलिकारूपः । ५ पत्रविशिष्टेऽस्मिन् १० पृष्ठाः, २१ श्लोकाश्च सन्ति । अन्यत्सर्वं पूर्ववदेवास्ति । चतुर्थग्रन्थस्यादौ आनन्दकन्दस्य ५ श्लोकाः, अन्ये च ६ श्लोका प्रदत्ताः । ५ पत्रविशिष्टेऽस्मिन् ग्रन्थे ६ पृष्ठास्सन्ति, अन्यत्परिमाणं पूर्ववदेव ।

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।
योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

योगो भवति दुःखहा, योगः कर्मसु कौशलम्, योगश्चित्तवृत्तिनिरोध इत्यादिभिः वाक्प्रपञ्चैः विविधशास्त्रेषु मानवजीवनस्याधिदैविकाधिभौतिकाध्यात्मिकतापशमनार्थं योगस्य माहात्म्यं सर्वविदितं दृश्यते । गीतायां ज्ञानयोग-भक्तियोग-कर्मयोग-ध्यानयोग-राजयोग-हठयोगादीनां विस्तरेण चर्चा विद्यते । पातञ्जलयोगसूत्रे चत्वारः पादाः सन्ति, तत्राद्यः समाधिपादः । समाधिर्नाम तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः । अपि च धारणा पञ्चनाडीका ध्यानं स्यात् षष्टिनाडिकम्, दिनद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते ।

'स्वाध्याय' – पु. ५९, वर्ष २०२२, पृ. ४१-५९. ISSN 2250-0391

* साहित्यविभागः, केन्द्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, श्रीरघुनाथकीर्तिपरिसरः, देवप्रयागः, पौडी गढवालः, उत्तराखण्डः - २४९३०१, M: 09968115307, Email: anillbs.kumar@gmail.com

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

योगसूत्रे सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञाताभ्यां समाधिः द्विविधः प्रोक्तः । योगस्यावस्थायां जीवः स्वरूपमधितिष्ठति । एकाग्रचित्ते बाह्यवृत्तीनां निरोधेन सम्प्रज्ञातसमाधिः, निरुद्धचेतसि सर्ववृत्तीनां संस्काराणां च निरोधेनासम्प्रज्ञातसमाधिरित्युच्यते । अर्थात् सम्प्रज्ञातो निर्विकल्पकः, असम्प्रज्ञातश्च सविकल्पकः । साधनापादे योगस्य बाह्याङ्गानां क्रियायोग-क्लेश-क्लेशमुक्तीनां साधनानां यम-नियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानां च विवेचनं विहितम् । तृतीये विभूतिपादे योगस्यान्तरिकाङ्गानां योगशक्तया जायमानानां विभूतीनामैश्वर्याणां च वर्णनमायाति । चतुर्थे कैवल्यपादे समाधिस्थस्य कैवल्यं प्रतिपादितम् । एवम्प्रकारेण योगस्य विवेचनं प्रथमतया पतञ्जलिना योगसूत्रे कृतम् । तदाधारेण नैक ग्रन्था विरचिता दृश्यन्ते ।

प्रस्तुतः योगसारग्रन्थोऽपि योगशास्त्रस्य परम्परां स्वविषयवैशिष्ट्यविवेचनेन प्रस्तौति । योगस्यादिगुरुत्वेन प्रसिद्धस्य नटनायकस्य भगवतः शङ्करस्य पार्वत्या सह संवादात्समुत्पन्नोऽयं योगः इति केचिद्विदन्ति । शिवपार्वत्योः संवादेनैवायं ग्रन्थो ग्रथितः । आदौ श्रीनटनान्तगुरुम्प्रति स्वप्रणामाञ्जलिं समर्पयति ग्रन्थकारः । मननात् त्राणनात् चिन्तनाद् वेति मन्त्रः, तस्य मन्त्रस्य स्वरूपं शिवात्मकम् । न सर्वैर्ज्ञायते तस्मान्मूलमन्त्रोऽयम्, अपि च मूलाधारादुत्पन्नत्वान्मूलमन्त्रमिति । कथमिति चेत् यतोहि सप्तकोटिमहामन्त्रा उपमन्त्राश्चावर्णात्स्वरपर्यन्तमत्रैव सन्निहिताः । गुरुदर्शितमूलमन्त्रसमं नास्ति किञ्चित्प्रतिष्ठितम् । तन्मननादेव अणिमादिकमैश्वर्यं जायते । तदेव परमेश्वरस्य सूक्ष्मत्वाद् गमकत्वाद् लयनाच्च लिङ्गमित्यभिधीयते । समस्तेषु वस्तुषु संसृतत्वात् सूचकत्वाच्च तदेव सूत्रमप्युच्यते । मानवस्यान्तःकरणे विद्यन्ते तिस्रोऽव्यक्ताश्शक्तयः सत्त्वरजस्तमोरूपा यतो विश्वं प्रवर्तते । ब्रह्मणस्त्रिविधं वपुः प्रोच्यते सूक्ष्मं स्थूलं परमश्चेति, स्थूलं रूपं पञ्चब्रह्ममयं वैराजनाम्ना ज्ञायते । सूक्ष्मरूपं महेशस्य नादस्तेजःपरात्मकम् परमं ब्रह्म सच्चिदानन्दात्मकमिति । तद् ब्रह्म अप्रमेयमनिर्देश्यमवाङ्मनसगोचरं शुद्धं सूक्ष्मं निराकारं निरवेद्यं निरञ्जनं च विद्यते । सूक्ष्मदृष्ट्या सदाभ्यासेन च यदा योगिनो ध्यायन्ति, तदा तत् तत्त्वं नादरूपेण प्रकाश्यते । न नादात्परो मन्त्रः, न च स्वात्मनः श्रेष्ठो देवः । ध्यानात्परा कापि पूजा नैव विद्यते न च तृप्तेः परं किमपि सुखम् । एतद्रहस्यं योगिनां कृते भगवता शम्भुना प्रोक्तं यद् ज्ञात्वा सिद्धिं विन्दन्ति योगिनः । यस्य भक्तस्य गुरौ देवे च यादृशी भक्तिर्विशिष्यते तादृशीं सिद्धिं स समधिगच्छति । मूलमन्त्रस्य माहात्म्येनैव मोक्षद्वारमपावृतं भवति, तद्विज्ञाय च ईश्वरभक्तो निरन्तरं सुखमाप्नोतीत्यत्र नास्ति संशयः । नादस्य किं स्वरूपम्, अनक्षरं च किम्, बिन्दुतत्त्वं कीदृशम्, कथं तत्प्रकाशते, कथं तस्याः सिद्धिः सम्भवति इत्येषां प्रश्नानां समाधानायास्य ग्रन्थस्य द्वितीये अध्याये विवेचनमायाति । अक्षरः परमो ब्रह्मनादः शब्दब्रह्मेत्युच्यते यस्य विज्ञानमात्रेण जीवो जन्मबन्ध-नात्प्रमुच्यते । या मूलाधारे शक्तिस्स्थिता परा बिन्दुरूपिणी तस्यामेव सूक्ष्माद्बीजादङ्कुर इवायमुत्पद्यते नादः । यया शक्तया योगिनो विश्वं पश्यन्ति तामेव पश्यन्तीति वदन्ति । या हृदयस्था घोषरूपेण पर्जन्यसन्निभं गर्जति सा मध्यदेशत्वान्मध्यमा । विखराख्येन प्राणेन प्रेरिता या सा वैखरी वर्णरूपा । अक्षरेभ्यः पदानि ततो वाक्यानि ततश्च सर्वे कार्यात्मका मन्त्राः, वेदशास्त्राणि, पुराणानि, काव्यानि,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विविधा भाषाः, सप्तस्वराः, गाथाश्च सर्वे नादात्समुत्पन्नाः । सा साक्षात्सरस्वती देवी विद्यते वैखरीरूपा यस्याः प्रसादाद् वाक्सिद्धिर्भवति मानवश्च वेदशास्त्रपुराणानां स्वयं कर्ता जायते । एतदक्षरमिति ज्ञेयम् । यत्र बिन्दुः, नादः, सोमः, सूर्यः, वायवः, सर्वाणीन्द्रियाणि च लयं यान्ति । यत्र भुवनानि, भूतानि, समस्तानि तत्त्वानि च विलीयन्ते, यज्ज्ञात्वा नान्यत्किमप्यवशिष्यते, यं लब्ध्वाऽपरं लाभमधिकं न मन्यते, महता दुःखेनापि यस्मिन् न विचाल्यते, यत्र योगसेवया निरुद्धं चित्तमुपरमते, आत्मानाऽत्मानं पश्यन्नात्मनि च तुष्यति, यत्तु बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् आत्यन्तिकं सुखम्, अक्षरादक्षरातीतं तदेवानक्षरमिति विज्ञेयम् । तच्च अनक्षरपरम्, ब्रह्म, निर्विशेषम्, निरञ्जनम्, अलक्षणमलक्षन्तमप्रतर्क्यमनुपमम्, अपारमपरिच्छेद्यमछिद्य-मतिनिर्मलम्, आधारैः सह भूतानामनाधारमनामयम्, आद्यमनिर्देश्यमप्रमेयमतीन्द्रियम्, सर्वेषां हृदये स्थितम्, सर्वज्ञम्, निश्चलम्, निर्मलम्, शान्तम्, निर्विकारम्, निराश्रयम्, निर्लेपम्, ज्योतिषां तज्ज्योतिरित्यादिभिः विशेषणपदैर्ज्ञायते । तद् भावनामात्रगोचरम्, भक्तिगम्यं भवबन्धनविमोचकं चास्ति । येन प्रकारेण सामान्यजनाः देहान्तरं व्रजन्ति विषयञ्चोपरमन्ते तथैव मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते । एवं परब्रह्माणमनुस्मरन् मानवः अनन्तशक्तिमान् भवति । अस्मिन् देहे दशद्वाराणि दशेन्द्रियाणि च दशवायुभिर्व्याप्तानि विद्यन्ते। सर्वेषां देहिनां शरीरमिदं बिन्दुलिङ्गमहालिङ्गशिवशक्तिनिकेतनरूपमस्ति । यन्मूलाधारं त्रिकोणात्मकं प्रकाशात्मकं च वर्तते तत् शिवरूपस्य स्थानं विज्ञेयम् । तत्रैव च कुण्डलिनी पराशक्तिः प्रतिष्ठिता, यतो नादः, बिन्दुः, वायुः, देहम्, मनश्चोत्पद्यन्ते । एतत्कामरूपाख्यं पीठं सर्वकामफलप्रदम्भवति । नाभिमूले दशारमणिपूरकं चक्रं स्थितम्, द्वादशारं च महाचक्रनाम्ना यज्ज्ञायते तत्र पूर्णगीर्याख्यं पीठं विभाति । एवमेव कण्ठकूपप्रदेशे विशुद्धाख्यं यच्चक्रमस्ति तत्र पीठजालधरेति नाम्नि चक्रे महेश्वरी विराजते । भ्रुवोर्मध्ये द्विदलमुत्तमं चक्रं यदस्ति तत्र ओड्याणाख्यं महापीठं प्रतिष्ठितम् । एतानि सर्वाणि स्थानानि शक्तिपीठानि । अधिदेवतानां विषये यथा सङ्केतितं तदेवं चतुरश्रो धरस्यादौ ब्रह्मा, त्रिकोणमण्डले यत्र वह्निः भवति तत्र रुद्रः, षट्कोणे यत्र वायोर्बिम्बं तिष्ठति तत्रेश्वरः, आकाशमण्डले सदाशिवः, भ्रुवोर्मध्ये मनसो नादरूपं मण्डले शम्भुश्च विज्ञेयाः । नाडीचक्रस्य स्थानन्तु मूलाधारत्रिकोणस्था सुषुम्ना, ततोऽधः ब्रह्मनाडी, इडापिङ्गले च तत्पार्श्वे स्थिते, विलम्बिनी नासिकान्तश्चोपागता । इडायां वायुः हेमरूपेण वामभागेन, पिङ्गलायां सूर्यः दक्षिणेन च याति । एवं नाडीचक्रस्य स्थितिः तिर्यगूर्ध्वमधोमुखा कुकुटाण्डमिव विद्यते । अन्या या नाडयस्सन्ति तासु गान्धारी-हस्तिजिह्वा-पूषा-आलम्बूषा-शुक्या-विश्वोदरी-सरस्वती-रानास्वया-शिखिन्यः क्रमेण नेत्र-श्रोत्र-भ्रू-उदर-जिह्वान्त-जिह्वाग्र-प्रदेशानवलम्ब्य तिष्ठन्ति । नाभेरधोभागे तिस्रो नाडयः कूहू-वारुणी-शीविन्यश्च विद्यन्ते तासु कूहू मलापसारणे, वारुणी मूत्रविसर्जने, शीविनी कीर्तिशुक्लमोचने सहायिकाः । यद् ब्रह्मणस्त्रिविधं बिन्दुरूपं वपुः स्थूलम्, सूक्ष्मम्, परञ्च भवति तेषु स्थूलं शुष्कात्मकम्, सूक्ष्मं पञ्चाग्निरूपकम्, परं सोमात्मकञ्च । पतालानामधोभागे कालाग्निः, समुद्रे बडवाग्निः, काष्ठपाषाणादिषु पार्थिवाग्निः, अन्तरिक्षे वैद्युताग्निः, नाम्भसि सूर्यरूपाग्निः एवं विभिन्नानामग्नीनां स्थितिः विद्यते । असौ सूर्यः वर्षं वर्षति, चन्द्रश्च सुधाम् । भ्रूमध्यनिलयरूपो योऽग्निः स शुद्धस्फटिकसन्निभः वर्तते तदेव सदाशिवस्य सूक्ष्मं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूपमस्ति । एवं पश्चाग्निरूपं यो भावयेत् सोऽश्वमेधफलमवाप्नोति । यथा गीतायां युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु युक्ता स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा इत्युक्तम्, तादृश्यामवस्थायां योगी रेचकपूरककुम्भकैः प्राणस्य मार्गं शोधयन् गुदामाकुश्चयन् च मूलशक्तिं प्रबोधयेत्, नाभिलिङ्गस्य मध्ये ओड्याख्यं बन्धयेत्, कण्ठं सङ्कोचयेत्, खेचरीमुद्रां बन्धयेत् च । खेचरीमुद्रायां योगी क्षुधातृषानिद्रालस्यमूर्च्छा नैवानुभवति । तत ऊर्ध्वं द्वादशान्ते व्योम्नि ओड्याणपीठे शिरश्चन्द्रमण्डलमध्यगं सदाशिवमनुध्यायेत् । एवमभ्यस्यन्तं योगिनं सिद्धयः स्वयमेवोपदिशन्ति । यो जितेन्द्रियः, शान्तः, जितश्वासः स नादं मनोलयं कृत्वा दूरादपि शृणोति, बिन्दुं मनोलयं कृत्वा सर्वं पश्यति, कालं मनोलयं कृत्वा त्रिकालज्ञो भवति । तस्मिन् ब्रह्मणि स्थितो योगी सूक्ष्मशरीरं प्रकाशयन् जरामरणभयाद्विमुच्यते । सः पृथिव्यां स्थितिः सन् पातालगामी, सलिले चित्तं धारयेत् चेदम्भसा परिभूयसे, अग्नौ चित्तं धारयेत् तदा न दहति, वायौ मनोलयात् आकाशगामी भवति, इन्द्ररूपेण स्वात्मानं कल्पयन् दिव्यभोक्ता, विष्णुरूपं चिन्तयन् अखिलजगतः पालकः, रुद्ररूपेण सर्वेषां संहारकः, ईश्वरे मनोलयं कृत्वा ईश्वरो जायते । यथा यत्कल्पते तदेवाप्नोति । एतत्सर्वं गुरुमुखाज्ज्ञेयम् अन्येन केनाप्युपायेनास्य ज्ञानं नैव भवितुमर्हति, यतोहि गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरोरधिकं किमपि लोकेषु न विद्यते । यो भक्तिमान् तमर्चति, नित्यं ध्यायति च स दिव्यज्ञानोपदेष्टा भवति । गुरुणा सह कुत्रापि द्वैतवादो न स्यात्, अपितु अद्वैतभक्त्या गुरुं भावयेत् । योगसारस्येमं मन्त्रं यो जानाति तत्त्ववित् तस्य किमपि कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु न विद्यते । पापं तं न स्पृशति, दुःखं न पीडयति, जयपराजयौ न सुखदुःखदायकौ । अस्मिन् संसारे पुनरागमनं तस्य न जायते । एतादृशो विज्ञाततत्त्वोऽपि मूक एव तिष्ठति इत्यत्र नास्ति संशयः । तावत्पर्यन्तं पण्डिताः क्लिश्यन्ति यावत् मन्त्रेण लययोगेन हठयोगेन च ब्रह्मतत्त्वं न जानन्ति । स एव योगिराट् भवति यो निमीलितोन्मीलिताभ्यां नेत्राभ्यां मनश्चक्षुषा तत्पश्यति । अपि च राशिभास्करयोर्मध्ये बिन्दुद्वयं संयोज्य ब्रह्मतारकमभ्यस्येत् । स ब्रह्मदर्शनतत्परः दृष्टादृष्टस्वरूपाणि विलोक्य तन्मध्ये तटित्कोटिनिभान्तामूर्ध्वगामिनीं मनसा लक्षयेत् बिसतन्तुना च आब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तगतां सिद्धिप्रदां स्मरेत् । कर्णयोद्वारि तर्जनीभ्यां निरुध्य चक्षुर्मध्ये नीलज्योतिरूपं विलक्षयेत् यच्चान्तर्लक्ष्यमिति विज्ञेयम् । बहिर्लक्ष्यं किमति तस्मिन् विषये एवमुच्यते स्थिरदृष्टियुक्तो योगी तप्तकाश्चनसन्निभां भूमिं संलक्षयेत्, शिरसश्चोर्ध्वे द्वादशाङ्गुलिसम्मिते निराकारं मुक्तिदं ज्योतिःपुन्जं विलक्षयेत् । एवमनेकविधाकारं बहिर्लक्ष्यं भवति । नवसूर्यसौदामिनीवह्निशिखेव श्वेतादिवर्णान् बिम्बान् विलक्ष्य ज्वलन्नभो यत्र स्थितं तन्मध्यलक्ष्यं विज्ञेयम् । यो निराकारमाकाशम्, तमोरूपम्, महाकाशम्, तत्त्वाकाशम्, रविशतनिभमाकाशम् एतद्व्योमपश्चकं पश्यति स व्योमसदृशो भवति । गुरुशिष्यतारणाद् योगसञ्ज्ञकत्वाच्च तारकयोग इति सिद्धम् । आसनमुत्तमं कथं भवेदिति जिज्ञासायामुच्यते सव्यपार्ष्णी गुदे स्थाप्य योनिमुद्राबन्धः स्यात् । सव्येन कन्दं परिपीड्य अन्यं पादं लिङ्गोपरि निक्षिपेदित्यानन्दकन्दे उक्तमस्ति ।

एवमस्मिन् हस्तलिखितेऽप्रकाशिते योगसारग्रन्थे योगशास्त्रस्यानेकानि तत्त्वानि चतुर्ष्वध्यायेषु निरूपितानि सन्ति । अत्रैव परिशिष्टभागे श्रीयोगसारः, तारकयोगः, अन्यश्च यस्य नाम्नोल्लेखो नैव प्राप्तः संयोजितः । मूलपाठेन सह यत्रापि व्याकरणदृष्ट्या प्रसङ्गदृष्ट्या चार्थावगतौ काठिन्यमनुभूतं तत्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्यगर्थावगमनार्थं कोष्ठकमध्ये अपेक्षितः शब्दः अक्षरो वा मया स्थापितः । यद्यपि स्थिरचेतसा सर्वं साधितं तथापि सर्वः सर्वं न जानातीति धिया कुत्रचिद् यदि त्रुटिः स्याच्चेत् क्षन्तव्योऽयं जनः ।

योगसारग्रन्थ(:)

॥ श्रीनटनान्तगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीदेव्यो(व्यु)वाच

मूलमन्त्रस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि शङ्कर ! ।
येन विज्ञानमात्रेण खेचरी समतां व्रजेत् ॥१॥

ईश्वरौ (र उ)वाच ।

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि गुह्यानां गुह्यमुत्तमम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन त्वया नित्यं वरानने ॥२॥

द्वादशावन्तु शुश्रूषां यः करोत्यप्रमत्तधीः ।
तस्मै भक्ताय शान्ताय दातव्यं ब्रह्मचारिणे ॥३॥

पाण्डित्यादर्थलाभाद् वा मोहाद् वा यः प्रयच्छति ।
तस्यावस्यं महाघोरं डाकिनीशापमापतेत् ॥४॥

सप्तकोटिमहामन्त्राः उपमन्त्राश्च तादृशाः ।
वर्णमात्रा(:) स्वरास्सर्वे मूलमन्त्राः समुत्थिताः ॥५॥

तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमधी(धि)ष्ठितम् ।
मूलमन्त्रं विजानाति यो विद्यां गुरुदर्शितम् ॥६॥

शिवशक्तिमयं मन्त्रं मूलाधारात्समुत्थितम् ।
तस्य मन्त्रस्य देवेशी(शि) वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥७॥

अणिमादिकमैश्वर्यमचिरादेव जायते ।
एतदुक्त्वाथ भगवान् नो चेष्टा इव तत्क्षणात् ॥८॥

आनन्दक्लिन्न सर्वाङ्गतूष्णीमासीन्महेश्वरः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देव्यौ(व्यु)वाच

कथं नादस्य मन्त्रत्वं कथमुच्चारणं भवेत् ।
किं वाक्यं किं स्वरूपं च सर्वमेतद् वद प्रभो ॥९॥

ईश्वरौ(र उ)वाच ।

मननात्त्राणनाच्चैव मद्रूपस्यावबोधनात् ।
मन्त्र इत्युच्चते देवी मदधी(धि)ष्ठानतः प्रिये ॥१०॥

मूलत्वात्सर्वमन्त्राणां मूलाधारात्समुद्भवत् ।
मूलस्वरूपलिङ्गत्वान्मूलमन्त्रमिति स्मृतः(म्) ॥११॥

सूक्ष्मत्वाद् गमकत्वाच्च लयनादभयादपि ।
लक्षणात्परमेशस्य लिङ्गमित्यभिधीयते ॥१२॥

संसृतत्त्वात्समस्तेषु वस्तुष्वपि च सर्वतः ।
सूचकत्वात्स्वरूपस्य सूत्रमित्यभिधीयते ॥१३॥

महामाया महालक्ष्मी महादेवी सरस्वती ।
आधारशक्तिरव्यक्ता यया विश्वं प्रवर्तते ॥१४॥

साक्षार्थबिन्दुरूपेण पीठरूपे प्रवर्तते ।
बिन्दुपीठं विनिर्भिद्य नादलिङ्गमुपस्थितम् ॥१५॥

प्राणेभ्यो ज्ञायते प्राज्ञे षण्मुखीकरणेन च ।
गुरूपदेशमार्गेण सहसैव प्रकाशते ॥१६॥

स्थूलं सूक्ष्मं परं चेति त्रिविधं बह्मणो वपुः ।
पञ्चब्रह्ममयं रूपं स्थूलं वैराजमुच्यते ॥१७॥

सूक्ष्मरूपं महेशस्य नादस्तेजः परात्मकम् ।
स्वयम्भूः ब्रह्म परमं सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥१८॥

अप्रमेयमनिर्देश्यमवाङ्मनसगोचरम् ।
शुद्धं सूक्ष्मं निराकारं निरवेद्यं निरञ्जनम् ॥१९॥

आत्ममन्त्रसदाभ्यासापरं तत्त्वं प्रकाशते ।
तदभिव्यक्तिचिह्नानि सिद्धिद्वाराणि मे शृणु ॥२०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दीपज्वालेन्दुखद्योतविद्युन्नक्षत्रभास्कराः ।
दृश्यन्ते सूक्ष्मरूपेण सदा युक्तस्य योगिनः ॥२१॥

अणिमादिकमैश्वर्यमचिरादेव जायते ।
नास्ति नादात्परो मन्त्रो न दै(दे)वः स्वात्मनः परम् ॥२२॥

नास्ति ध्यानात्परा पूजा नास्ति तृप्तेः परं सुखम् ।
एतद् गुह्यं मया प्रोक्तं योगिनां हृदये प्रियम् ॥२३॥

गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वदा सिद्धिमिच्छति ।
मूलमन्त्रस्य माहात्म्यं सर्वदा सिद्धिमिच्छति ॥२४॥

मूलमन्त्रस्य माहात्म्यं मोक्षद्वारमपावृतम् ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय कृतं कृत्यस्सुखी भवेत् ॥२५॥

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥२६॥

॥ इति श्रीयोगसारे प्रथमोऽध्यायः ॥

श्रीदेव्यौ(व्यु)वाच

शृणु तत्परमं गुह्यं सारात्सारतरं वचः ।
अतुप्तिर्जायतेऽद्यापि यथैवामृतशे(से)वया ॥१॥

अक्षरं किम्भवेन्नादः किमनक्षरमुच्यते ।
कीदृशं तत्स्वरूपं स्यात्केषु स्थानेषु दृश्यते ॥२॥

कीदृशं बिन्दुतत्व(त्त्वं) स्यात्कथं वा तत्प्रकाशते ।
सिद्धि(द्ध)यः कस्य जायन्ते केनोपायेन वा प्रभो ॥३॥

एतत्सर्वं महादेव श्रोतुमिच्छाम्यनुक्रमात् ।
रहस्यानां रहस्यत्वाद् विस्तरेण ब्रवीहि मे ॥४॥

इ(ई)श्वरौ(र उ)वाच ।

कथयामि वरारोहे यथावदनुपूर्वतः ।
त्वमेव परया भक्तया प्रियाप्राणसमहितः ॥५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यत्र कस्यचिदाख्यातं यच्छिधिंद्धिं मां श्व(स्व)कारणम् ।
येन विज्ञानमात्रेण जन्मबन्धात्प्रमुच्यते ॥६॥

अक्षरः परमो नादः शब्दब्रह्मेति कथ्यते ।
या मूलाधारणा शक्तिःस्सा(क्तिस्सा) परा बिन्दुरूपिणी ॥७॥

तस्यामुत्पद्यते नादो बीजात्सूक्ष्मादिवाङ्कुरः ।
तां पश्यन्ति विदुर्विश्वं यया पश्यन्ति योगिनः ॥८॥

हृदये व्यञ्जते घोषो गर्जत्पर्जन्यसन्निभः ।
तत्र स्थिता महादेवी मध्यमेत्यभिधीयते ॥९॥

प्राणेन विखराख्येन प्रेरिता वैखरी पुनः ।
शाखापल्लवरूपेण ताल्वादिस्थानघण्टनात् ॥१०॥

अकारादिक्षकारान्तान्यक्षराणि समीरयेत् ।
अक्षरेभ्यः पदानि स्युः पदेभ्यो वाक्यसम्भवः(वा) ॥११॥

सर्वे कार्यात्मका मन्त्राः वेदशास्त्रणि कृत्स्नशः ।
पुराणानि च काव्यानि भाषाश्च विविधा अपि ॥१२॥

सप्त स्वराश्च गाथाश्च सर्वे नादसमुद्भव(वाः) ।
एषा सरस्वती देवी सर्वभूतगुहाशया ॥१३॥

वायुना वह्नियुक्तेन प्रेर्यमाणैश्शनैश्शनैः ।
ध्वनिर्वर्णपदं वाक्यमित्येवं वर्तते सदा ॥१४॥

ए एनं वैखरीशक्तिः योगीस्वात्मनि वर्तते ।
वाक्सिद्धिस्सम(म्भ)वा ज्योति(स्)सरस्वत्या(ः) प्रसादतः ।
वेदशास्त्रपुराणानां स्वयं कर्ता भविष्यति ॥१५॥

श्रीदेव्यौ(व्यु)वाच ।

अक्षरस्य परं तत्त्वं मया सम्यग् विनिश्चितम् ।
अनक्षरामपि ब्रह्म ये विदन्ति च योगिनः ॥१६॥

ईश्वरौ(र उ)वाच

कथयामि परं तत्त्वं गुह्यानां गुह्यमुत्तमम् ।
समाहितेन मनसा शृणुष्वेकानि पार्वती ॥१७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यत्र बिन्दुश्च नादश्च सोमसूर्यश्च वायवः ।
इन्द्रियाणि च सर्वाणि लयं गच्छन्ति सुवृते ॥१८॥

वायो यत्र विलीयन्ते मनस्तत्र विवर्तते ।
एकं भवति यत्रैव भूतानि भुवनानि च ॥१९॥

समस्तानि च तत्त्वानी(नी) समुद्रे सिन्धवो यथा ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२०॥

यं लब्वा चापारं लाभं मन्यते नाधिकं तथा ।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२१॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगशे(से)वया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२२॥

सुखमात्यन्तिकं यत्तु बद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
एतत्क्षरात्क्षरातीतमनक्षरमितीर्यते ॥२३॥

अनक्षरपरं ब्रह्म निर्विशेषं निरञ्जनम् ।
अलक्षणमलक्षन्तमप्रतर्क्यमनुपमम् ॥२४॥

अपारमपरिच्छेद्यमछिद्यमतिनिर्मल[म्] ।
आधार(रै)स्सह भूतानामनाधारं(र)मनामयम् ॥२५॥

आद्यमानमनिर्देश्यं(य)मप्रमेयमतीन्द्रियम् ।
अस्थूलवर्णको ह्रस्वमदीर्घं वृत्तमेव च ॥२६॥

अशब्दस्पर्शरूपश्च चक्षुश्श्रोत्रश्च नामकम् ।
सर्वज्ञसर्वऽशान्तं सर्वेषां हृदये स्थितम् ॥२७॥

सर्वाधारमनाधारं सद्व्यक्तिकारणम् ।
सत्तामात्रस्वरूपेण सर्वभावेष्ववस्थितः ॥२८॥

स्वसंवेद्यं गुरुमतां सुदुर्बोधमचेतसाम् ।
निश्चलं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निराश्रयम् ॥२९॥

निर्लेपं निरुपायं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ।
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमपारे व्यवस्थितम् ॥३०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भावाभावविनिर्मुक्तः(क्तं) भावनामात्रगोचरम् ।
भक्तिगम्यं परं तत्त्वं भवबन्धविमोचकम् ॥३१॥

बिन्दुनादप्रभावेण मयि भक्त्या ह्यनन्यया ।
भावनामात्रमोङ्कारकारणं परमेश्वरी ॥३२॥

यथा देहान्तरप्राप्तिः कारणं भुवनानृणाम् ।
विषयान् ध्यायते पुंसो विषयं रमते पुनः ॥३३॥

मामनुस्मरतो चित्तं मय्येव प्रा(प्र)विलीयते ।
सर्वज्ञत्वं परेशत्वं तथा सम्पूर्णचेतसाम् ॥३४॥

अनन्तशक्तिमत्त्वं च मामनुस्मरतो भवेत् ।

॥ इति [श्री]योगसारे द्वितीयोऽध्यायः ॥

ईश्वरौ(र उ)वाच ।

अथ स्थानानि वक्ष्यामि गुह्यानि तव सुव्रते ।
समाहितेन मनसा शृणुष्वैतानि पार्वती(ति) ॥१॥

दशद्वारे पुरे देही दशनाडी महापथम् ।
दशभिर्वायुभिर्व्याप्तं दशेन्द्रियपरिच्छिदम् ॥२॥

षडाधारं च नवकं शशिक्षयमहापथम् ।
चतुष्पथसमाकीर्णं चतुराम्नायदीपितम् ॥३॥

बिन्दुलिङ्गमहालिङ्गशिवशक्तिनिकेतनम् ।
देहं शिवालयं ज्ञेयं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम् ॥४॥

गुदं मेदान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम् ।
शिवस्य शिवरूपस्य स्थानं तद्धि प्रकाशकम् ॥५॥

यत्र कुण्डलिनीः (नी) नाम पराशक्तिः प्रतिष्ठिता ।
यस्मादुत्पद्यते बिन्दुः यस्मान्नादः प्रवर्तते ॥६॥

यस्मादुत्पद्यते वायुः यस्मात्त्वं हि प्रवर्तते(से) ।
यस्मादुत्पद्यते देहं यस्मादुत्पद्यते मनः ॥७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदेतत्कामरूपाख्यं पीठं कामफलप्रदम् ।
स्वाधिष्ठानाद्धयं चक्रं लिङ्गमूले षडश्च कम् ॥८॥

नाभिमूले स्थितं चक्रं दशारमणिपूरकम् ।
द्वादशारं महाचक्रं श्रुतं एवाप्यनाहतम् ॥९॥

तदेतत्पूर्णगीर्याख्यं पीठं तव वरानने ।
कण्ठकूपे विशुद्धाख्यं यच्चक्रं षोडशाश्च कम् ॥१०॥

पीठं जालं धरानामतिष्ठत्यत्र महेश्वरी ।
आज्ञानमभ्रुवोर्मध्ये द्विदलं चक्रमुत्तमम् ॥११॥

ओड्याणाख्यं महापीठमुपरिष्टात्प्रतिष्ठितम् ।
स्थानान्नेतानि(स्थानान्येतानि) देवेशी(शि) शक्तिरूपं प्रकाश्यते ॥१२॥

शाम्भवाख्यं प्रवक्ष्यामी(मि) शृणुष्वैकाग्रमानसा ।
चतुरश्रोधरस्यादौ ब्रह्मा तत्राधिदेवताः ॥१३॥

त्रिकोणं मण्डलं वह्निः रुद्रस्तत्राधिदेवतः ।
वायोर्बिम्बस्तु षट्कोणम् ईश्वरोऽत्राधिदैवतम् ॥१४॥

आकाशमण्डलमुक्तं देवतास्य सदाशिवः ।
नादरूपं भ्रुवोर्मध्ये मनसो मण्डलं विदुः ॥१५॥

शाम्भवस्थानमित्युक्ते वर्णितं वरवर्णिनी(नि) ।
अतः परं प्रवक्षामी(मि) नाडीचक्रस्य निर्णयम् ॥१६॥

मूलाधारत्रिकोणस्था सुषम्ना द्वादशाङ्गुला ।
मूलेऽर्धछिन्नवंशाधब्रह्मनाडीति सा स्मृता ॥१७॥

इडा च पिङ्गला चैव तस्याः पार्श्वद्वयोर्गतिः ।
विलम्बिन्यामनुस्युते नाशि(सि)कान्तमुपागते ॥१८॥

इडायां हेमरूपेण वायुर्वामेन गच्छती(ति) ।
पिङ्गलायास्तु सूर्यात्मा याति दक्षिणपार्श्वतः ॥१९॥

विलम्बिनी मया नाडी व्यक्ता नाभौ प्रतिष्ठिता ।
तत्र नाडयस्समुत्पन्ना तिर्यगूर्ध्वमधोमुखाः ॥२०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नाडीचक्रमिमं प्रोक्तं कुकुटाण्डमिव स्थितम् ।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च तस्मान्नेत्रद्वयं गते ॥२१॥

पूषा चालम्बुषा चैव श्रोत्रद्वयमुपागते ।
शुक्यानाममहानाडी तस्माद् भ्रूमध्यमाश्रिता ॥२२॥

विश्वोदरी तु या नाडी सा भुक्ते(ङ्क्ते)ऽन्नं चतुर्विधम् ।
सरस्वती तु या नाडी सा जिह्वान्तं प्रसर्पते ॥२३॥

रानास्वया तु या नाडी सा पीत्वा सलिलं क्षणात् ।
क्षुदमुत्पादयेत्छोणे श्लेष्माणं सञ्चिनोति च ॥२४॥

कण्ठकूजिद्भवा नाडी शङ्खिन्यास्याप्यधोमुखी ।
अन्नसारं समाधाय मूर्ध्नी(नि)संश्चिनुते सुधाम् ॥२५॥

नाभेरधोगतः(ताः) तिस्रः नाडया(ड्यो) यास्सुरतो मुखाः ।
मलं त्यजेत(त्) कुहूनाडी मुत्रं मुञ्चती(ति) वारुणी ॥२६॥

शीविन्यथगवां कीर्तिशुक्लमोचनकारिणी ।
नाडीचक्रमिमं प्रोक्तं बिन्दुरूपमतः शृणु ॥२७॥

स्थूलं सूक्ष्मं परं चेति त्रिविधं ब्रह्मणो वपुः ।
स्थूलं शुष्कात्मको बिन्दुः सूक्ष्मः पञ्चाग्निरूपकः ॥२८॥

सोमात्मकः परः प्रोक्तः सदा साक्षी सदाशिवः ।
पाताल(ला)नामधोभागे कालाग्निर्यः प्रतिष्ठितः ॥२९॥

तन्मूलाग्निशरीरेऽस्मिन्यस्मान्नादः प्रवर्तते ।
बडवाग्निः समुद्रस्थोरऽस्थिमध्ये प्रवर्तते ॥३०॥

काष्ठपाषाणजो(यो)रऽग्निः पार्थिवो ग्रहणीं गतः ।
अन्तरिक्षगतो वह्निः वैद्युतस्यान्तरालगः ॥३१॥

नाम्भसस्सूर्यरूपाग्निः नाभिमण्डलमार्गतः ।
वर्ष वर्षति सूर्योऽसौ ग्रसन्मृतमुन्मुखः ॥३२॥

तालुमूलस्थितश्चन्द्रस्सुधां वर्षत्यधोमुखी ।
भ्रूमध्यनिलयस्सोऽग्निः शुद्धस्स्फटिकसन्निभः ॥३३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सदाशिवस्य देवस्य तत्सूक्ष्मं रूपमुच्यते ।
एतत्पञ्चाग्निरूपं यो भावयेद् भक्तिमान्धिया ॥३४॥

तेन भुक्तं च पीतं च हुतमेव न संशयः ।
पञ्चाग्निध्याइ(यि)नं शान्तं योगिनं यः प्रपूजयेत् ॥३५॥

सोऽश्वमेधफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ।

॥ इति[श्री]योगसारे तृतीयोऽध्यायः ॥

श्रीदेव्यौ(व्यु)वाच

भगवन्! त्वत्प्रसादेन तत्त्वं निश्चितमञ्जसा ।
योगस्यास्य क्रमं ब्रूही(हि) साधकानां हिताय वै ॥१॥

ईश्वरौ(र उ)वाच

सुखसंवेशिते स्वप्नः सुजीर्णे मितभोजनम् ।
शरीरशुद्धिं कृत्वादौ सुखमासनमास्थितः ॥२॥

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं रेचपूरककुम्भकैः ।
गुदमाकुञ्चयन्नैव मूलशक्तिं प्रबोधयेत् ॥३॥

नाभिलिङ्गस्य मध्ये के ओड्याणाख्यञ्च बन्धयेत् ।
ओडडीय(यो) याति केनैव शक्तिरूडयाणपीठकम् ॥४॥

कण्ठं सङ्कोचयेत्किञ्चित् बन्धोजालं धरा ह्यसौ ।
बन्धयेत्खेचरीमुद्रां दृढचित्तसमाहितः ॥५॥

कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा वी(वि)परीतगा ।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥६॥

खेचर्यां मुद्रितं येन विवरं लम्बिकोर्ध्वतः ।
न पीयु(यू)षं पतत्यग्नौ न च वायु(:) प्रधावति ॥७॥

न क्षुधा न तृषा निद्रा नैवालस्यं प्रवर्तते ।
न च मूर्छा(र्छा) भवेत्तस्य यो मुद्रां वेति खेचरी[म्] ॥८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ततः ऊर्ध्वं परे व्योम्नी(म्नि) द्वादशान्ते शिवात्मके ।
ओड्याणपीठे निर्द्वन्द्वे निराञ्जननिरञ्जने ॥९॥

शिरः पङ्कजमध्यस्थं चन्द्रमण्डलमध्यगम् ।
सदाशिवमनुध्यायेत् शृण्वन्तममृतं सदा ॥१०॥

एवमभ्यस्यतो नित्यं मद्भक्तस्य महात्मनः ।
सिद्धयश्चोपदिष्ट(दिश)न्ति स्वयमेव महेश्वरी(म्) ॥११॥

जितेन्द्रियाणां शान्तानां जितश्वासविचेतसाम् ।
नादं मनोलयं भद्रे दूरश्रवणकारणम् ॥१२॥

बिन्दौ मनोलयं कृत्वा दूरदर्शनमाप्नुयात् ।
कलात्मनी(नि) मनोर्लीनं त्रिकालज्ञानकारणम् ॥१३॥

परकायमनोयोगः परकाय(यं)प्रकाशयत् ।
अमृतं चिन्तयेन्मूर्ध्नि जरामरणनाशनम् ॥१४॥

पृथिव्यां धारयेच्चित्तं पातालगमनं भवेत् ।
सलिले धारयेच्चित्तमम्भसा परिभूयसे ॥१५॥

अग्नौ सन्धारयेच्चित्तं नाग्निना दह्यते तु सः ।
वायोर्मनलयं कुर्याद् आकाशगमनं भवेत् ॥१६॥

इन्द्ररूपेण चात्मानं भावयन् दिव्यभोगवान् ।
विष्णुरूपो महायोगी पालयेदखिलं जगत् ॥१७॥

रुद्ररूपी जगत्सर्वं संहार(हरेत्) स्वेन तेजसा ।
ईश्वरे तु मनो युञ्ज्यादीश्वरो भवति ध्र(ध्रु)वम् ॥१८॥

सदाशिवमहायोगी सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।
सदा सङ्कल्पयेद् योगं योगयुक्तो जितेन्द्रियः ॥१९॥

तदा तत्तदवाप्नोति भावायेदात्मकारणम् ।
इति गुह्यतमं प्रोक्तं विस्तरेण तव प्रिये ॥२०॥

एतद्गुरुमुखाज्ज्ञेयं नान्योपायेन केनचित् ।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ॥२१॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न गुरोरधिकः कश्चि[त्] त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
दिव्यज्ञानोपदेष्टारं देशिकं परमेश्वरम् ॥२२॥

पूजयेत्परया भक्त्या तस्य ज्ञानफलं लभेत् ।
यथा गुरुस्तदेवास्य(स्तथैवेशः) यथैवेशस्तथा गुरुः ॥२३॥

पूजनीयो महद्भक्त्या न भेदो विद्यते क्रियाः ।
न द्वैतवादं कुर्वीत गुरुणा सह कुत्रचित् ॥२४॥

अद्वैतं भावयेद्भक्त्या गुरुर्देवस्य चात्मनः ।
योगसारमिमं मन्त्रं यो जानाति महात्मनः ॥२५॥

न तस्य किञ्चित्कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
न पुण्यपापैस्तस्यस्थो न दुःखोऽन्तः पराजयम् ॥२६॥

न चास्ति पुनरावृत्तिरस्मिन् संसारमण्डले ।
सिद्धयः(य)श्चोपदिष्टं(दिश)न्ति चञ्चलत्वं न चेतसाम् ॥२७॥

तथा विज्ञाततत्त्वोऽपि मूक एव न संशयः ।

॥ इति [श्री]योगसार(रे) चतुर्थोऽध्यायः सम्पूर्णमस्तु ॥

॥ साम्बसदाशिवः प्रियताम् ॥

परिशिष्टभागः

॥ योगसारप्रारम्भः ॥

॥ श्रीयोगसार(ः) ॥

स्थूलं सूक्ष्मं परं चेति त्रिविधं ब्रह्मणो वपुः ।
पञ्चब्रह्ममयं रूपं स्थूलं वैराजमुच्यते ॥१॥

सूक्ष्मरूपं महेशस्य नादस्तेजः परात्मकम् ।
स्वयम्भूः ब्रह्म परमं सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥२॥

अप्रमेयमनिर्देश्यमवाङ्मनसगोचरम् ।
शुद्धं सूक्ष्मं निराकारं निरवद्यं निरञ्जनम् ॥३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आत्ममन्त्रसदाभ्यासात् परं तत्त्वं प्रकाशते ।
तदभिव्यक्तिचिह्नानि सिद्धिद्वाराणि मे शृणु ॥४॥

दीपज्वालेन्दुखद्योतविद्युन्नक्षत्रभास्कराः ।
दृश्यन्ते सूक्ष्मरूपेण सदा युक्तस्य योगिनः ॥५॥

स्थूलः सूक्ष्मः परश्चेति त्रिविधो बिन्दुरुच्यते ।
स्थूलशुक्लात्मको बिन्दुः सूक्ष्मपञ्चाग्निरूपकः ॥६॥

सोमात्मकः परः प्रोक्तः स तु साक्षात्सदाशिवः ।
पातालानामधोभागे कालाग्निर्य(:) प्रतिष्ठितः ॥७॥

समूलाग्निश्शरीरेऽस्मिन् यस्मान्नादः प्रवर्तते ।
बडवाग्निः समुद्रस्थोरस्थिमध्ये प्रवर्तते ॥८॥

काष्ठपाषाणजो वह्निः पार्थिवो ग्रहणीं गतः ।
अन्तरिक्षगतो वह्निः वैद्युतस्यां तरालगः ॥९॥

नाभिस्त(थः) सूर्यरूपोऽग्निः वैद्युतश्चान्तरालगः ।
विषं वर्षति सूर्योऽसौ ग्रसत्यमृतसम्मुखः ॥१०॥

तालुमूले स्थितश्चन्द्रः सुधां वर्षत्यधोमुखः ।
भ्रूमध्यनिला(लो)बिन्दुः शुद्धस्फटिकसन्निभः ॥११॥

सदाशिवस्य देवस्य तत्सूक्ष्मं रूपमुच्यते ।
एतत्पञ्चाग्निरूपं यो भावयेद् भक्तिमान् धिया ॥१२॥

तेन भुक्ति(क्तं) च पीतं च हुतमेव न संशयः ।
पञ्चाग्निं ध्याय(यि)नं शान्तं योगिनं यः प्रपूजय(ये)त् ॥१३॥

सोऽश्वमेधफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ।

॥ इति योगसारे ॥

॥ तारकयोगप्रारम्भः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ शिवयोगप्रदीपिके चतुर्थपटलिकाया मध्ये साङ्ख्यज्ञानान्तरं प्रारम्भः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अतः परं गुह्यतरं दृष्टप्रत्ययसंयुतम् ।
ममानुभवे संसिद्धिं योगं प्राणसखे शृणु ॥१॥

मन्त्रेण लययोगेन हठयोगेन सर्वदा ।
यावद्ब्रह्म न जानन्ति तावत्क्लिश्यन्ति पण्डिताः ॥२॥

नेत्रे निमिलिते नित्यं किञ्चिदुन्मीलिते तथा ।
यो मनश्चक्षुषा ब्रह्म पश्यतीति स योगिराट् ॥३॥

राशिभास्करयोर्मध्ये तारयो(स्)स्थिरतैजसोः ।
बिन्दुद्वयं च संयोज्य ब्रह्मतारकमभ्यसेत् ॥४॥

बाह्यान्तर्मध्यलक्षेषु ब्रह्मदर्शनतत्परः ।
दृष्टादृष्टस्वरूपाणि ननु तानि विलोकय ॥५॥

मूलकण्ठा द्वन्द्वलग्ना ब्रह्मनाडी शशिप्रभा ।
तस्या मध्ये तटित्कोटिनिभान्तामूर्ध्वगामिनीम् ॥६॥

मनसा लक्षयेन्मूर्तिं सदृशीं बिसतन्तुना ।
आब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तगतां सिद्धिप्रदां स्मरेत् ॥७॥

ललाटोर्ध्वेऽथवा लक्ष्ये योगी गोल्लाटमण्डले ।
विस्फुरतारकाकारं मनसा लक्षयेत्सदा ॥८॥

अथवा कर्णयोद्वारि तर्जनीभ्यां निरोधयेत् ।
श्रीहटमस्तके नादं घुंघुंकारं शृणोति च ॥९॥

चक्षुर्मध्येऽथवा नीलज्योतिरूपं विलक्षयेत् ।
अन्तर्लक्ष्यमिति ज्ञेयं बहिर्लक्ष्यमतः शृणु ॥१०॥

नासाग्रदेशाच्च चतुषडष्टौ तथा दश द्वादशसङ्ख्यचयाङ्गुलिः ।
बहिस्स्मरेन्नीलसुधु(धू)म्ररक्तश्वेताभपीताभसुतत्त्वपञ्चकम् ॥११॥

अथवा सम्मुखाऽकाशे स्थिरदृष्ट्या विलक्षयेत् ।
ज्योतिर्मयूखा दृश्यन्ते योगिभि(स्)स्थिरमासनैः ॥१२॥

दृष्ट्यग्रे वाऽप्यपाङ्गे वा तप्तकाञ्चनसन्निभाम् ।
भूमिं संलक्षये दृष्टि(स्)स्थिरा भवति योगिनः ॥१३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथवा शिरसश्चोर्ध्वे द्वादशाङ्गुलसम्मिते ।
ज्योतिःपुञ्जं निराकारं लक्षयेन्मुक्तिदं भवेत् ॥१४॥

यत्र यत्राथवा योगी तत्र तत्र विलक्षयेत् ।
आकाशमेव यस्तस्य चितं(त्तं)भवति तादृशम् ॥१५॥

इत्यनेकविधाकारं बहिर्लक्ष्यमुदीरितम् ।
शृणुष्व मध्यलक्ष्यं च कथितं पूर्वसूरिभिः ॥१६॥

श्वेतादिवर्णान् नवसूर्यचन्द्रसौदामिनी वह्निशिखेव बिम्बान् ।
ज्वलन्नभो वा स्थितमेकरूपं विलक्ष्य एतत्खलु मध्यलक्ष्यम् ॥१७॥

निराकारं पश्येद्गुणरहितमाकाशमथवा
तमोरूपं गाढं स्फुरदुरुपराकाशमथवा ।
महाकाशं कालानिलनिभमथात्यन्तरुचितम्
परं तत्त्वाकाशं रविशतनिभं सूर्यखमिति ॥१८॥

व्योमपञ्चकमेतद्धि तद्बाह्यान्तरसंस्थितम् ।
यः पश्यति नरो लक्ष्ये स व्योमसदृशो भवेत् ॥१९॥

तारणाच्च गुरुशिष्ययोर्द्वयोस्तारकोयमिति योगसज्ञि(ज्ञ)कः ।
तारकं भव महाब्धितारकं त्वं तमेव परिसंशिनं कुरु ॥२०॥

फलमेकं द्विधाचर्या यथार्थस्साङ्ख्यतारयोः ।
उपाधिरहितस्साङ्ख्यो योगस्स्वोपाधिकस्स्वयम् ॥२१॥

इति सदाशिवयोगिनाथविरचितायां(विरचिते) योगशास्त्रे
शिवयोगप्रदीपिकासारे तारकयोगविधानं नाम चतुर्थपटलिका ॥

॥ तारकयोगः समाप्तः॥

॥ श्री ॥

सव्यपार्ष्णी गुदे स्थाप्य दक्षिणं च ध्वजोपरि ।
योनिमुद्राबन्ध एवं भवेदासनमुत्तमम् ॥१॥

योनिमुद्रासने स्थित्वा प्रजप्येद्यः समाहितः ।
यं कश्चिदपि वा मन्त्रं तस्य स्युस्सर्वसिद्धयः ॥२॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सव्येन कन्दं परिपीड्य चान्यं पादं तु लिङ्गोपरि निक्षिपेच्च ।
वज्रं सदा प्राणजये च सिद्धं ग्रीवा तनुमस्त समः प्रशस्तम् ॥३॥

स्वयोनिपादमूलेन चैकेन घटयेद् दृढम् ।
अन्यचरणमूलं च मेहनोपरि विन्यसेत् ॥४॥

अवक्राङ्गः समासीनो वशीभूतेन्द्रियः प्रिये ।
निश्चलाक्षो भ्रुवोर्मध्ये पश्य निश्चलया दृशा ॥५॥

सिद्धासनमिदं ज्ञेयं मुक्तिमार्गप्रदायकम् ।

॥इत्यानन्दकन्दे॥

स्वपार्ष्णिना पीड्य गुदं ततोऽनिलं स्थानेषु षट्सु नमयेज्जितक्लमः ।
नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मादुदानगत्योरसितं नयेन्मुनिः ॥१॥

ततोऽनुसन्धाय धिया मनस्वी स्वातालुमूलं शनकैर्नयेत ।
तस्माद्भ्रुवोरन्तरमुन्नयेत निरूद्धसप्तास्वयनोऽनपेक्षः ॥२॥

नाडिभ्यां पवनं पिबन् लघुतरं गृह्णन् शनैश्चोदरम्
वारं वारमिमं क्रमेण नियतः पद्मे च वज्रे स्थितः ।
बन्धैयुक्ततनुः प्रसन्नहृदयो लक्ष्यं सदा चिन्तयन्
शैवे चित्तमरुज्जयामृतकरं प्रोक्तं महर्लक्षणम् ॥३॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम्
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं शिशश्चानवलोकयन् ॥४॥

इडा भागीरथी गङ्गा पिङ्गला यमुना च सा ।
तयोर्मध्ये गता नाडी सुषुम्नाख्या सरस्वती ॥५॥

द्विसप्ततिसहस्रेषु सुषुम्नामिव नाडिषु ।
आत्मध्यायी मिताहारी यावद् द्वादशवत्सरम् ॥६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

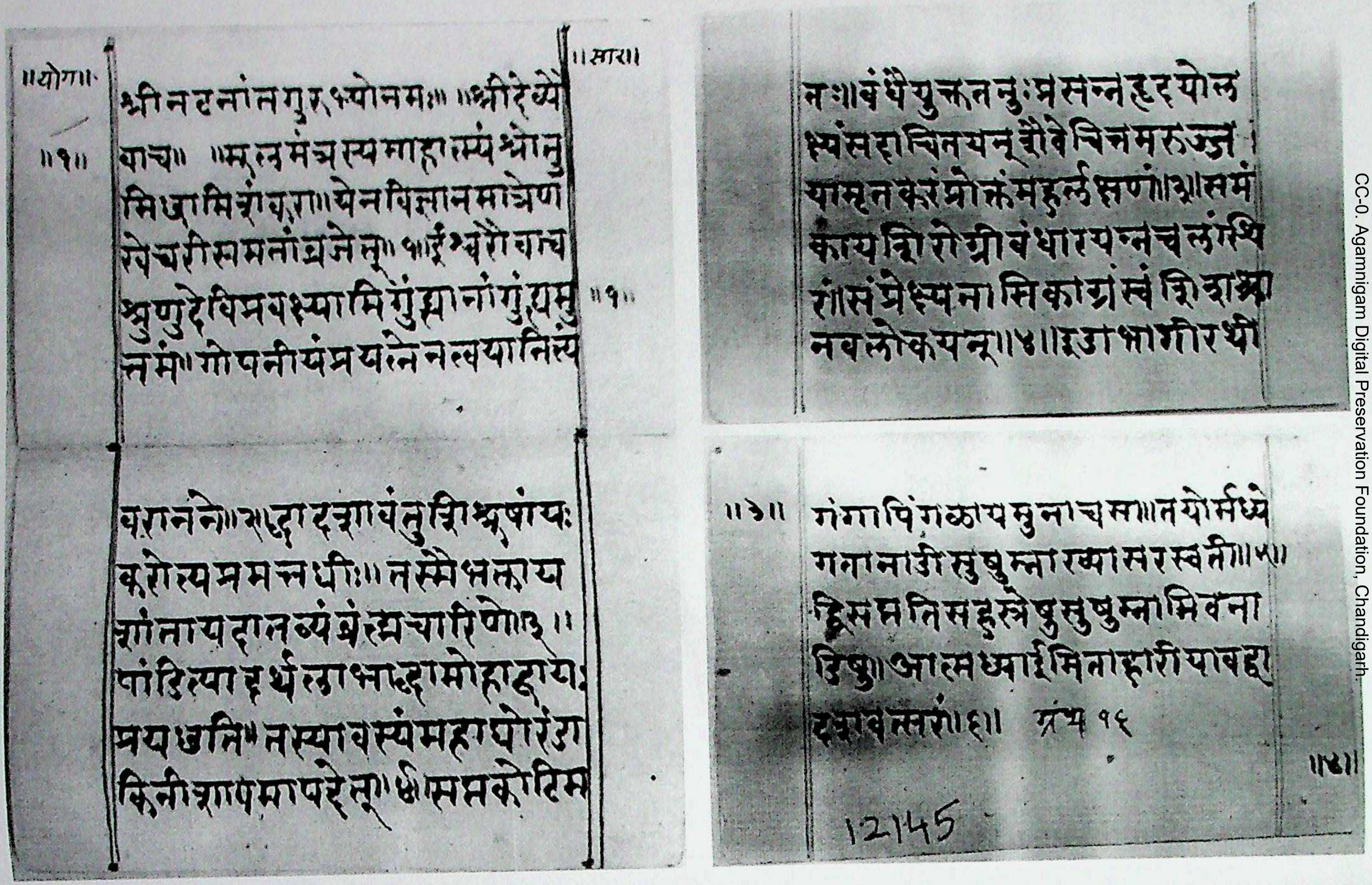

योगसारः, प्राच्यविद्यामंदिर, पाण्डुलिपि क्रमाङ्क - १२१४५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

योगेनान्ते तनुत्यजः रघवः

वी. सौम्यनारायणन्*

प्रस्तावना

पुरातनकाले मनुष्याः प्रायशः सर्वेऽपि शैशव-यौवन-वार्द्धक-अन्ताद्यवस्थासु ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-सन्न्यासादि स्वकीय-वर्णाश्रमधर्मानुगुणं जीवनं चायापयन् । तत्र केचित् विशुद्धेन चारित्रेण, निर्मलेनान्तःकरणेन, अनितरसुलभेनारिषड्वर्गोन्मूलनेन, असाधारणेन अद्यात्मविद्याप्रदानेन योगाभ्यासेन च मोक्षमार्गं प्राप्तवन्तः । को नाम योगः इत्युक्ते युज् समाधौ इति धातोरुत्पन्नोऽयं योगशब्दः, तस्य पर्यायः समाधिः इत्युच्यते । ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः''[1] अर्थात् मनसि विद्यमानरजस्तमोवृत्त्योर्निरोधः इति । योगस्यापरं नाम परमात्मध्यानमिति च । अस्मिन् योगदर्शने निदिध्यासनस्य मुख्यत्वं भवति । निदिध्यासनं नाम नितरां ध्यातुमुत चिन्तयितुमिच्छा इत्युच्यते। भगवता पतञ्जलिना, कपिलमहर्षिणा प्रोक्त-साङ्ख्यतत्त्वानि तत्पदार्थाश्चाप्युपगम्य तदितरमीश्वरप्रणिधानं तत्त्वं योगशास्त्रमिति नाम्ना कापिल्यान्नवीनशास्त्रं व्यधायि । सर्वासां वृत्तीनां प्रविलयात् अन्तरायाभावाश्च भवति । अयमेकः ईश्वरप्रणिधानस्य विशेषः । अयमेवांशः जगद्गुरुणा स्वकीयायां श्रीमद्भगवद्गीतायाम्–

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥
यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति[2] ॥

इति पूर्वमेवोद्घोषितं वर्तते । नानामार्गैः सुदुष्प्रापं कैवल्यं परमं पदं सिद्धमार्गेण अर्थात् योगमार्गेण लभ्यते । ''अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति''[3] इति कठोपनिषद्वाक्यं सूचयति ।

'स्वाध्याय' पु. ५९, वर्ष २०२२, पृ. ६१-६६. ISSN 2250-0391

* संस्कृतविभागः, द्वारका डोस गोवर्धन डोस वैष्णव कॉलेज, अरुम्बक्कम्, चेन्नई- ६०० १०६, M: 09884462729, Email : anusowmyan@gmail.com

१. योगसूत्रम् १.२, योगसुधाकरो नाम योगसूत्रवृत्तिः, श्रीसदाशिवेन्द्रसरस्वती, श्रीवाणीविलासमुद्रायन्त्रालयः, श्रीरङ्गम्, १९११, पृ. २

२. श्रीमद्भगवद्गीता - *The Bhagavad Gita*, 5.4-5, Gita Press, Gorakhpur, Fifty Second Edition, 2003, pp. 50-51.

३. कठोपनिषद् - *Dasopanishads*, 2.12, with the commentary of Sri Upanishad Brahma Yogin, Volume I, Edited by Prof. C. Kunhan Raja, The Adyar Library (Theosophical Society) 1935, p. 76

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अत एव वेदप्राणाण्याङ्गीकृतेषु षट्सु दर्शनेषु आस्तिकत्वेन परिगण्यमानं योगदर्शनं महत्त्वमावहति । योगदर्शनं कैवल्याख्यपदार्थनिरूपणपरमपि मनुष्याणां कायिक, मानसिकस्वास्थ्यर्थं मार्गमुपदिशति । अत्र मुख्यतया, ''योगेनान्ते तनुत्यजः रघवः'' इति महाकविकालिदासोक्तरघुवंशमहाकाव्ये तद्रघुवंशीयानां राज्ञां जीवने योगः कथं सम्बद्धः इति विषयः किञ्चिदालोड्यते । यतो हि रघुवंशीयाः राजानः साक्षात्सूर्यसम्बद्धाः वैवस्वतमनुपरम्पराः ।

उत्साहात्साहसाद्धैर्यात्तत्त्वज्ञानाच्च निश्चयात् ।
जनसङ्गपरित्यागात् षड्भिर्योगः प्रसिद्ध्यति[४] ॥

इति हठयोगप्रदीपिकोक्तप्रकारेण, विषयप्रवणं चित्तं निरोत्स्यामेवेत्युद्यमः, साध्यत्वासाध्यत्वे अपरिभाव्य सहसा प्रवृत्तिः साहसं, यावज्जीवं सेत्स्यत्येवेत्यखेदो धैर्यं, विषयाः मृगतृष्णाजलवदसन्तः ब्रह्मैव सत्यमिति वास्तविकं ज्ञानं तत्त्वज्ञानं योगानां वास्तविकं ज्ञानं वा, शास्त्रगुरुवाक्येषु विश्वासो निश्चयः श्रद्धेति यावत्, जनानां योगाभ्यासप्रतिकूलानां यः सङ्गस्तस्य परित्यागः इत्येतैः षड्भिः योगः प्रकर्षेण अर्थादविलम्बेन रघुवंशीयैः नृपतिभिः साधितः ॥

विवरणांशाः

महाकविः कालिदासः स्वकीये रघुवंशे महाकाव्ये, रघुवंशभूपतीनां गुणकथनप्रसङ्गे तेषां वर्णाश्रमधर्मानुगुणं जीवनं कथमासीदिति अवर्णयत् । एतेषां,

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्[५] ॥

रघूणामन्वयं वक्ष्ये इति उक्तवान् । एतत्पद्याय व्याख्यानचक्रवर्तिनः श्रीपदवाक्यप्रमाणपारावारीणमहामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरयः, ''अन्ते शरीरत्यागकाले योगेन परमात्म-ध्यानेन, ''योगः संनहनोपायध्यानसङ्गतियुक्तिषु'' इत्यमरः, तनुं त्यजन्तीति तनुत्यजः, ''कायो देहः क्लीबपुंसोः स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः'' इत्यमरः ॥ तेषां देहत्यागिनाम् ॥ एतेन मोक्षभावः विवक्षितः'' इति व्याख्याञ्चक्रुः । चारित्रवर्धनाः तथा सुमतिविजयाः नामानः व्याख्याकाराश्चान्ये योगेन इत्यस्य पदस्य ''ध्यानेन चित्तनिरोधनेन वा'' इति उल्लिलेखुः । अन्ये विजयगणिमहाशयाः ''अनशनेन समाधिना वा'' इति विमर्शयाञ्चक्रुः । तथा च, ''आद्ये वयसि नाधीतं द्वितीये नार्जितं धनम् । तृतीये न तपः तप्तं चतुर्थे

---

४. हठयोगप्रदीपिका - *The Hathayogapradipika* of Svatmarama, 1.16, with the commentary of Jyotsna of Brahmananda and English Translation, Vol. IV The Adyar Library General Series, 2000, p. 14

५. *The Raghuvamsa of Kalidasa*, 1.8, Gopal Raghunath Nandargikar, Motilal Banarasidass, Delhi, Fourth Edition, 1971, p. 5

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किं करिष्यति''[६] इत्यनेन ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यानां द्विजानामेव शैशव-यौवन-वार्द्धक-अन्ताद्यवस्थासु ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-सन्न्यासादि स्वकीय-वर्णाश्रमधर्मानुगुणं जीवनं मुख्यमिति अद्रढयन् ॥

किञ्च, रघुवंशभूपतीषु दिलीपो नाम प्रथमो राजा तावत्,

अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
नृपतिककुदं दत्वा यूने सितातपवारणम् ।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ॥[७]

इत्यत्र ''सुतविन्यस्तपत्नीकः तया वानुगतो वमन् । वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साग्निः सोपासनो व्रजेत् ॥'' इति याज्ञवल्क्यस्मृतिरनेन श्लोकस्य, सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् । पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ इति मनुस्मृतेश्च श्लोकस्य सारः वार्द्धके मुनिवृत्तीषु रघुषु दिलीपस्य योगेनान्ते तनुत्यागात् पूर्वं कथमासीदिति ज्ञायते ॥

किञ्च, तेषु रघुर्नाम विख्यातवैभवो नृपतिः, पित्रा दिलीपेन दत्तां महीं सम्यक् परिपालनादनन्तरं वार्द्धके स्वकीयाय पुत्राय अजाय ददाविति विषयः महाकविना कालिदासेनेत्थं वर्णितः ।

नृपतिः प्रकृतिरवेक्षितुं व्यवहारासनमाददे युवा ।
परिचेतुमुपांशु धारणां कुशपूतं प्रवयास्तु विष्टरम् ॥
अनयत्प्रभुशक्तिसम्पदा वशमेको नृपतीननन्तरान् ।
अपरः प्रणिधानयोग्यया मरुतः पञ्च शरीरगोचरान् ॥[८]

आभ्यां श्लोकाभ्यामवगम्यते यत्, स्थविरः रघुः, विजने कुशैः पूते आसने उपविश्य, चित्तस्यैकाग्रतामभ्यासं चकार इत्युच्यते । योगशास्त्रनिर्दिष्टां धारणां योगविशेषात्मिकाम् । धारणालक्षणमित्थं विज्ञानभिक्षुणा प्रोक्तं, ''सम्भ्राम्य छोटिकां दद्यात्कराग्रं जानुमण्डले । मात्राभिः पञ्चदशभिः प्राणायामोऽधमः स्मृतः ॥ मध्यमो द्विगुणः श्रेष्ठः त्रिगुणो धारणा तथा'' इति ॥ तथा, यमादिगुणसंयुक्ते मनसः स्थितिरात्मनि । धारणा प्रोच्यते सद्भिः योगशास्त्रविशारदैः ॥ इति वशिष्ठोक्तिं स्मारयति । तथा च, प्रणिधानयोग्यया इत्यनेन पदेन समाध्यभ्यासेन इत्यर्थः । ''देशबन्धश्चित्तस्य धारणा''[९] इति पतञ्जलेः योगसूत्रं चारित्रवर्धनाः दृष्टान्तरूपेण निर्दिष्ठितवन्तः । ''मारुतान्मरुतां स्थाने मनसैव समन्विते । धारयेत पञ्चघटिका ह्यवश्यास्तेऽन्तरानिलाः ॥ इति योगवाशिष्ठोक्तिस्स्मर्यते ॥ इतोऽपि तस्यैव प्रतिष्ठापितसूर्यवंशवैभवस्य सर्वस्वामिगुणोपेतस्य रघोः योगसमाधिम्,

---

६. वही, पृ. ६
७. वही, ३.७०, पृ. ९१
८. वही, ८.१८-१९, पृ. २२६
९. योगसूत्रम्, ३.१, योगसुधाकरो नाम योगसूत्रवृत्तिः, श्रीसदाशिवेन्द्रसरस्वती, श्रीवाणीविलासमुद्रायन्त्रालयः, श्रीरङ्गम्, १९११, पृ. ५५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न नवः प्रभुराफलोदयात् स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः ।
न च **योगविधे**र्नवेतरः **स्थिरधी**रा परमात्मदर्शनात् ।।

इति शत्रुषु चेन्द्रियेषु च प्रतिषिद्धप्रसरेषु जाग्रतौ ।
प्रसितावुदयापवर्गयोरुभयीं **सिद्धि**मुभाववापतुः ।।

अथ काश्चिदजव्यपेक्षया गमयित्वा समदर्शनः समाः ।
तमसः परमापदव्ययं पुरुषं **योगसमाधि**ना रघुः ।।[१०]

इत्यत्र योगविधेः स्थिरधीः इति पदद्वयेन रघुः योगाभ्यासं कृतवान् तथा तस्मिन् रघौ योगाधिकारित्वं वर्तते इति ''समदर्शनः'' इति पदेन ध्वन्यते । योगविधेः इत्यनेन अष्टाङ्गयोगाभ्यासः उच्यते । ''संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः'' ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः इति वा'' इति योगवासिष्ठः । ''न विजानाति शीतोष्णं न दुःखं न सुखं तथा । न मानं नापमानं च योगी युक्तः समाधिना''[११] इति प्रतिपादयति हठयोगप्रदीपिका । मानापमानयोः सुखदुःखयोश्च समदर्शी इति भावः ।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोहरान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।[१२]

''सुखदुःखे समे कृत्वा''[१३], ''समत्वं योग उच्यते''[१४], ''पण्डिताः समदर्शिनः''[१५] इत्यादीनि श्रीमद्भगवद्गीतावचनान्यपि स्मर्यन्ते । अत्र योगसमाधिना इति पदेन ''जीवात्मपरमात्मनोः योगविषयेण समाधिना ध्यानविशेषेण'' इत्यर्थः ।

अनन्तरं महाकविकालिदासः रघोः पुत्रस्य अजस्यान्तिममवर्णयत् ।

तीर्थे तोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वोः
देहत्यागादमरगणनालेख्यमासाद्य सद्यः ।
पूर्वाकाराधिकचतुरया सङ्गतः कान्तयाऽसौ
लीलागारेष्वरमत पुनर्नन्दनाभ्यन्तरेषु ।।[१६]

---

१०. वही, ८.२२-२८, पृ. २२८
११. हठयोगप्रदीपिका, पृ. १७८
१२. श्रीमद्भगवद्गीता, २.५५,५६, पृ. २८
१३. वही, २.३८, पृ. २०
१४. वही, २.४८, पृ. २३
१५. वही, ५.१८, पृ. ५८
१६. रघुवंशम्, ८.९५, पृ. २५६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इत्यस्मिन् श्लोके, ''यथा कथञ्चित्तीर्थेऽस्मिन्देहत्यागं करोति यः । तस्यात्मघातदोषो न प्राप्नुयादीप्सितान्यपि'' ।। इति स्कन्दपुराणश्लोकः जलसमाधिः स्वर्गपुण्यदायकः इति मोक्षसाधनं द्रढयति ।

-दशरथस्यान्तिमां दशामित्थं वर्णयति महाकविकालिदासः,

राजापि तद्वियोगार्तः स्मृत्वा शापं स्वकर्मजम् ।
शरीरत्यागमात्रेण शुद्धिलाभममन्यत ।।[१७]

इत्यस्मिन् श्लोके,

दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोका-दन्त्ये वयस्यहमिवेति तमुक्तवन्तम् ।
आक्रान्तपूर्वमिव मुक्तविषं भुजङ्गं प्रोवाच कोसलपतिः प्रथमापराद्धः ।।[१८] इति वर्णयति ।।

कदाचित् तापसरूपेण राममुपेत्य, रहसि भाषमाणौ आवां यः पश्येत् सः दण्ड्यः इति यमराजः इत्येवंवादिनि. तत्रागत्य रामसन्दर्शिनार्थिनः दुर्वाससः स्वागतिसूचनेन, तथा रामयमराजयोस्समयं ज्ञातः योगज्ञः लक्ष्मणः सरयूनद्यां जलसमाधिना शरीरत्यागमकरोदिति–

स गत्वा सरयूतीरं देहत्यागेन योगवित् ।
चकारावितथां भ्रातुः प्रतिज्ञां पूर्वजन्मनः ।।[१९]

इत्यनेन श्लोकेन ज्ञायते ।।

समापनम्

योगशास्त्रमेव ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रस्त्रीणामिति सर्वेषामपि पावनं तथा तेषां कर्मणां तथा शान्तये किं बहुणा तेषां विमुक्ततयेऽपि अनिवार्यमस्ति । सामान्यतया मनुष्येषु यः कोऽपि वा भवतु, सः, गुरूपदिष्टमार्गेणैव सर्वचिन्ताविवर्जितस्सन् योगशास्त्रं सदाऽभ्यसेत् । ''शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते''[२०] । इति जगद्गुरोः भगवतश्श्रीकृष्णस्य वचनात् योगिनस्तु भ्रष्टस्यापि तेषां चाधोगतिर्न सम्भवति । योगे सर्वाधिकारश्रवणात् योगोत्पन्नतत्त्वज्ञानेन सर्वेऽपि एतस्माद्घोरसंसारसागरात् मुच्यन्ते । भगवता श्रीकृष्णेन, ज्ञानेन कर्मणा भक्त्या मोक्षः प्राप्यते इत्युक्तं भवति, तदतिरिच्य किमर्थमयं योगमार्गः इति प्रश्ने, अष्टाङ्गयोगे ज्ञानकर्मभक्तयः अन्वितो भवतीत्यर्थः । परमात्मा तावत् श्रवण-मनन-

---

१७. वही, १२.१०, पृ. ३६३

१८. वही, ९.७९, पृ. २९२

१९. वही, १५.९५, पृ. ८९१

२०. श्रीमद्भगवद्गीता, ६.४१, पृ. ६७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निदिध्यासनरूपैः जीवात्मना प्राप्यते । तत्र श्रवणमननद्वयमपि नियमेति द्वितीयाङ्गस्य स्वाध्यायस्य अपरं विधानं भवति । अत एवोच्यते–

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं योगशास्त्रं परं मतम् ॥[21]

अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रं प्राप्तेषु वा तेषु न तैश्च किञ्चित् ।
चिकित्सितज्योतिषमन्त्रवादाः पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति ॥

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥

-----

२१. शिवसंहिता, १.१७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मनोविज्ञानस्य विषये योगशास्त्रस्य प्रसङ्गः

एस. नरसिम्हन्*

उपोद्घातः

प्रकृतिनियमानुगुणं सम्भवितेषु प्रपञ्चस्य सृष्टि-स्थिति-लयादिषु व्यापारेषु आद्यभूते सृष्टिव्यापारे मनुष्यसृष्टिः इतरेषामपेक्षया विशिष्टतमा इति चेन्नात्र अतिशयोक्तिः । कारणम्–

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।[1]
जन्तूनां नरजन्मदुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता ।[2]

इति प्रमाणोक्तदिशा मनुष्योपरि विशेषवदेकं स्रष्टुं भूमौ नास्त्येव प्रसङ्गः ब्रह्मणे सृष्टिकर्त्रेऽपि इत्यत एव । इतरप्राणिभ्यः अपेक्षया मनुष्ये एव सर्वकार्यसाधिका चिन्तनाशक्तिः विराजते, या च बुद्ध्या संवर्धिता बहूपकरोति जीवाय लौकिकव्यवहारार्थं, तथा तदुपरिविद्यमानस्य पारमार्थिकजीवनयापनार्थञ्च । मनसः अन्तर्भूतस्य बुद्धिबलेनैव एकः मनुष्यः कर्तुम्, अकर्तुम् अथवा अन्यथाकर्तुं वा प्रभवति ।

लोके मनुष्याः तथा अन्यप्राणिनश्च प्रकृतिनियमानुगुणं जायन्ते, वर्धन्ते, सन्ततिवर्धनं कुर्वन्ति, अन्ते कालगत्या मरणमपि प्राप्नुवन्ति च । परं मनुष्यस्य कथा तावत् भिन्ना ।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।[3]

इति गीतोपदेशानुगुणं बुद्ध्या एव सः जीवः कर्तव्याकर्तव्यादीन् सम्यक् ज्ञात्वा, अकर्तव्यं वर्जयित्वा, कर्तव्यं च समाचर्य, अग्रे मोक्षप्राप्तिपर्यन्तं गन्तुमपि शक्नोतीत्यतः । अतः

'स्वाध्याय' पु. ५९, वर्ष २०२२, पृ. ६७-७६. ISSN 2250-0391

* संस्कृत विभागः, द्वारका डोस गोवर्धन डोस वैष्णव कॉलेज, अरुम्बक्कम्, चेन्नई- १०६, M: 08778798755, Email : srinarasimhan05@gmail.com

१. श्रीमद्भागवतम्, व्यासप्रणीतम्, सी. एल. गोस्वामी एम.ए. शास्त्रीवर्यस्य आङ्गलानुवादसहितम् - द्वितीयो भागः, गोरखपुर गीताप्रेस मुद्रणालयेन २००१ तमे वर्षे मुद्रितम्, तृतीयं मुद्रणम्, ११.२०.१७, पृ. ६०७.

२. विवेकचूडामणिः – आदिशङ्कराचार्येण विरचिता, स्वामि रामकृष्णमठस्थ स्वामितुरीयानन्दस्य आङ्गलव्याख्योपेता – चैन्ने, मैलापूरविभागस्थरामकृष्णमठमुद्राणलयेन १९९८ तमे वर्षे मुद्रितः तृतीयं मुद्रणम्, श्लोकसङ्ख्या ०२, पृ. १

३. श्रीमद्भगवद्गीता, आङ्गलानुवादयुक्तं, - द्वितीयो भागः, गीताप्रेस गोरखपुर मुद्रणालयेन २००८ तमे वर्षे मुद्रितम्, त्रिंशत्तमं मुद्रणम्, २.५०, पृ. ४३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जीवस्य अन्तर्भूतबुद्धेः विकासः तस्याः सदुपयोगः, तथा तेन मनसः सम्यक् निर्वहणम् इति सर्वमपि तस्य जीवस्य धार्मिकमयजीवनयात्रायाम् अतीव मुख्यं स्थानं वहति ।

इन्द्रियेषु मनसः विशिष्टं स्थानम्

बाह्यान्तरिककार्याचरणार्थं प्रकृत्या मनुष्याय दत्तानि साधनानि एव इन्द्रियाणि इति प्रोच्यन्ते यानि वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थेति कर्मेन्द्रियाणि पञ्च, तथा चक्षुः श्रोत्रं घ्राणः वाक् तथा त्वगिति ज्ञानेन्द्रियाणि च पञ्च भवन्ति । परन्तु स्वरूपं प्राप्तवद्भ्यः एतेभ्यः सर्वेभ्यः अपि बलवत्तावत् मन एव । अत एव भगवता श्रीकृष्णेनापि –

इन्द्रियाणि पराण्याहुः इन्द्रियेभ्यः परं मनः ।[४]

गीतायां मनसः एव कर्मेन्द्रियज्ञानेन्द्रियाणां निर्वहणत्वम्, तथा तेषामाध्यक्षं च निर्दिष्टम् । एवमेव भगवता आदिशङ्करेणापि विवेकचूडामण्याम् –

मनः प्रसूते विषयानशेषान् स्थूलात्मना सूक्ष्मतया च भोक्तुः ।
शरीर-वर्णाश्रम-जातिभेदान् गुणक्रियाहेतुफलानि नित्यम् । ।[५]

इत्युक्तदिशा स्वरूपवतां कर्मेन्द्रियज्ञानेन्द्रियाणां निर्वहणं, तथा लोकसम्बन्धिनां शरीर-जाति-धर्म-गुण-क्रियादीनां सर्वेषामपि अवगमनं अस्वरूपवता मनसा एव क्रियते, इतीदमेव आश्चर्यदायि किल ! प्रकृतमुदाहरणं स्वीकुर्मश्चेत् यथा सङ्गणकयन्त्रान्तर्भूतानाम् उपकरणानां कार्याणि सर्वाण्यपि software द्वारा निर्वह्यन्ते तद्वत् । इदानीं मया एतदाचरणीयमिति मनुष्यः मनसि यद्विचिन्तयति तदेव कर्मेन्द्रियैः तथा ज्ञानेन्द्रियैश्च कार्यत्वेन आचर्यते । कदाचित् अनिच्छन्नपि कानिचित् कार्याणि मनुष्येण आचरणीयं भवति, मनसोऽन्तर्गतस्मृतिबलात् अथवा वासनाबलात् इतीदमेव आधुनिककाल-मनोवैज्ञानिकैः कारागृहादिप्रदेशेषु निवसतान् जनान् उपयुज्य शोधकार्याणि कर्तुं मार्गदायी भवति ।

तत्त्वान्वेषिणां समुदायलाभाय योगदानम्

पूर्वं निर्दिष्टवचनानुगुणं आहार-वास-सुख-दुःख-सन्ततीनां निमित्तमेव जीवनं यापयत्सु अनेकेषु इन्द्रियरामेषु मध्येऽपि, दुःखभाजिनां, पुनः पुनः बन्धने एव जीवात्मानं स्थापयताम् इन्द्रियसुखानामुपरि विद्यमानानां धर्मार्थकाममोक्षपुरुषार्थादीनां विषये, आत्मनः जीवने जनितसुखदुःखादीनाम् अनुभवजनितबाधाभिः पीडिताः, अथवा सुखप्राबल्येन जनितवैराग्ययुक्ताः, एतेषामपि अग्रे किं भवितुमर्हतीति चिन्तयितुं आरब्धवन्तः केचन विरलाः पुरुषाः । सत्यान्वेषण-तत्वान्वेषणतत्पराः एते

४. तत्रैव, पृ. ५८
५. विवेकचूडामणिः, पूर्वोक्तम्, श्लोकसङ्ख्या १७७, पृ. ७९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विवेकवैराग्ययोः सम्पादनेन एतन्निमित्तं स्वस्य उपरि नियमादीन् स्वयं परिकल्प्य, स्वयं वा पूर्ववर्तिनां ज्ञानिनां मार्गमनुसृत्य वा ज्ञानसम्पादनार्थं तपोमयं धार्मिकमयञ्च जीवनं यापयन्ति स्म ।

एवंविधस्य सर्वलाभप्रदस्य, संसारसागरात् जीवमुद्धर्तुं शक्तस्य, ज्ञानमार्गविषयभूततपोमय-जीवनस्य चिरकालाचरणेन स्वेनावगतस्य, अथवा आविष्कृतस्य, सर्वान्तर्भूतस्य आत्मज्ञानस्य निरूपणार्थं, वर्तमानस्य तथा भाविसमुदायस्य उन्नत्यै च अन्विष्टं सर्वमपि योगिनः तथा ज्ञानिनश्च ग्रन्थरूपेणापि विरच्य परमुपकृतवन्तः सन्ति । परं जीवसमूहे एतादृशाः तत्त्वज्ञाः योगिनः ऋषयः अथवा सिद्धाश्च अतीव विरला एव इति भगवतैव प्रोक्तं गीतायाम्–

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥[६]

इति । तादृशेषु अतिविरलेष्वेव एकः महापुरुष ऋषिः पतञ्जलिः यस्य योगदानं समाजाय पातञ्जलयोगसूत्राणां प्रदानमाध्यमेन इदानीमपि अनेकेभ्यः बहूपकरोति । एवमेव घेरण्डसंहिता, योगवासिष्ठं, श्रीमद्भगवद्गीता, विवेकचूडामणिः, विदुरनीतिः इत्यादीनां ग्रन्थानां सेवा समाजाय बहूपकरोति । योगदर्शनस्य प्रसङ्गः एवमस्ति चेत्, समुदाये मनोव्याधिभिः पीडितेभ्यः रुग्णेभ्यः उपरि देशे विदेशे च क्रियमाणानि आधुनिक-मनोवैज्ञानिकानां नानाप्रकाराणि शोधकार्याणि, तथा तैराविष्कृताः सिद्धान्ताः, तथा औषधिविशेषाश्च वर्तमानजीवसमुदायाय बहूपयोगाय भवन्ति ।

पूर्वं एम.बी.बी.एस. पठित्वा वैद्यरूपेण मलेयाप्रान्ते कार्यं कृत्वा, समुदायस्य उपरि, व्यक्तेरुपरि तथा आत्मनः उपरि विचारं वारं वारं कृत्वा, अन्ते आत्मविचारेण समुदायस्य सर्वसमस्यानिवारणार्थं आधुनिकचिकित्साप्रकारः न पर्याप्तः । अन्तिमलक्ष्यार्थं समुदायं नेतुं मया योगस्य अवलम्बनं कार्यमिति धिया, विदेशवासं सोद्योगं त्यक्त्वा हृषीकेशं समागत्य, तत्र सन्यासजीवनमवलम्ब्य, कुटीरं निर्माय, सामान्यजीवनं यापयित्वा, नानाविधतपःप्रकारान् आचर्य, कालान्तरे Divine Life Society संस्थायाः समारम्भेन, योगविज्ञानस्य लाभः समुदायाय सम्यक् भवेदिति धिया, बहुधा विचारं कृत्वा, योगसम्मेलनादीन्, वर्गांश्च सञ्चाल्य, तस्य फलरूपेण हठयोग-राजयोग-भक्तियोग-कर्मयोग-ज्ञानयोगादीनां विषये, तथा सामान्यमनुष्यजीवनसम्बन्धिनां तस्य आहार-व्यवहारादीनां विषयेऽपि स्वेन कृतान् विचारान्, स्वाभिप्रायानुगुणं सरलभाषया शैल्या च पुस्तकानि विरचय्य, नानाविधाभ्यासादीन् दत्वा शिष्यगणमेकं निर्माय, तेषां द्वारा देशे तथा विदेशे च योगविज्ञानस्य प्राबल्यं कृतं स्वामिशिवानन्दसरस्वती-महाभागैः । तेषां जीवनवैशिष्ट्यमेतदेव हि निरूपयति यत् रोगविमुक्तिरेव जीवनस्य अन्तिमं लक्ष्यं नास्ति, सर्वाधारभूतं ज्ञानं सम्पाद्य जीवः सर्वोपरि आनन्ददायकं जीवनं यापयितुमर्हति इति । क्रान्तिकारिणाम्

---

६. श्रीमद्भगवद्गीता, पूर्वोक्तम्, ७.३, पृ. ९०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एतेषां महाभागानां तपसः कारणेनैव योगविज्ञानस्य प्रचारः, तस्य लाभश्च इदानीमनुभूयते सर्वैः भारतीयैः तथा विदेशीयैश्च समीचीनतया ।

कालान्तरे योगाभ्यासानां तथा सिद्धान्तानां महत्त्वं अवगतवन्तः पाश्चात्याः तथा अस्माकं वैज्ञानिकाश्च समुदायलाभं मनसि विचिन्त्य, इदानीं कथं चिकित्साप्रकारेषु विविधानां योगसम्बन्धिनां शारीरिक-मानसिकाभ्यासानां योगदानं भवतु इति धिया अनेकेषु विद्यालयेषु, चिकित्सालयेषु, शोधशालासु च हठ-राज-कर्म-भक्ति-योगादीनामपि भागः अनेकैरङ्गीकृत एव इत्ययं विषयः आनन्ददायी ।

मनसः यथार्थस्थितिः

प्राणिष्वपि केचन शिक्षिताश्चेत् मनुष्य इव किञ्चित् विचिन्त्य, हर्ष-शोकादि भावाबद्धाः, विशिष्टकार्याणि कर्तुं प्रभवन्ति । परं तावानेवाल्पीयान् तेषां मनोव्यापारः । सिंह-व्याघ्र-गजादिषु प्राणिवर्गेष्वपि अवगमनविषये एकः प्राणिः अन्यस्मात् केनचित् व्यापारेण, चिन्तनाशक्त्या च भिद्यत इति सर्वैः ज्ञातमेव । एवमेव बुद्धिशक्त्या कथमेकः मनुष्यः अन्यस्मात् भिद्यत इति अनेके जनाः बहुधा विचारं कुर्वन्तस्सन्ति देशे विदेशे च । इदानीन्तनकाले नवीनवैज्ञानिकैः Evolution therory - परिणामप्रगतिविषये Chimpanzees or Orangutans उपरि कृतमाणैः शोधकार्यैः प्रपञ्चो निरूप्यत एव । परं प्राणिनामुपरि कृतानां आविष्काराणां सीमा परिमिता एव ।

नेदं मनः चक्षुरादिवत् रूपं प्राप्य व्यापारे प्रवर्तते । परं प्रकृतिवशात् आजन्मनः वा, पूर्वजन्मनः वासनाप्राबल्याद्वा कार्यजनितराग-द्वेषादिभिरेव मनसः व्यापारः सञ्जायते जीवस्य । अत एव उच्यते न्यायशास्त्रेऽपि–

सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः ।[७]

इति । अत्र आदिपदेन दुःखस्य तथा लाभ-नष्टादीनां राग-द्वेषादीनामपि ग्रहणमावश्यकं भवति । भगवता शङ्कराचार्येणापि मनसः वास्तविकस्वरूपं तथा व्यवहारश्च स्पष्टतया प्रबोधसुधाकरे निरूप्यते यत्–

हसति कदाचिद्रौति भ्रान्तं सद्दशदिशो भ्रमति ।
हृष्टं कदापि कुष्टं शिष्टं दुष्टं च निन्दति स्तौति ॥
किमपि द्वेष्टि सरोषं ह्यात्मानं श्लाघते कदाचिदपि ।
चित्तं पिशाचमभवद्राक्षस्या तृष्णया व्याप्तम् ॥[८]

---

७. तर्कसङ्ग्रहः – अन्नम्भट्टेन विरचितः – दीपिका व्याख्योपेतः, भागः - २, स्वामि विरूपाक्षानन्दस्य आङ्गलानुवादसहितः – श्री रामकृष्णामठ – मैलापूर चेन्नै मुद्रणालयेन द्वितीयवारम् १९९४ तमे मुद्रितः, सूत्रसङ्ख्या ९, पृ. ५२.

८. प्रबोधसुधाकरः – आदिशङ्कराचार्येणन विरचितः, संविद् महोदयस्य आङ्गलानुवादसहितः – मनोनिन्दाप्रकरणम् – वी., विजयलक्ष्मी महाभागया समता मुद्रणालये २००२ तमे वर्षे मुद्रितः, तृतीयं मुद्रणम्, श्लोकसङ्ख्या ५१-५२, पृ. १४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अतः इत्थं भूतस्य बाह्यविषयाकृष्टस्य, रागद्वेषादिभिः द्वन्द्वैः बद्धस्य मनसः विषये ज्ञानं, तथा तस्य सद्बुद्धिमुपयुज्य आत्मवशीकरणमेव जीवस्य प्रथमं लक्ष्यम् । एवं यः बुद्धिबलेन मनोवशीकरणकौशलं प्राप्तवान् स एव संयमी, धीरः, योगी अथवा प्रज्ञावानिति उल्लिख्यते शास्त्रेषु । ''वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता'' ।[९] इति तादृशेन महापुरुषेण प्राप्तं ज्ञानमेव प्रज्ञा अथवा प्रज्ञानमिति कथ्यते शास्त्रेषु ।

मनोविज्ञानस्य प्राबल्यता

भारते यथा राजयोगस्य प्राबल्यं पतञ्जलिमहर्षेः योगदर्शनेन समभवत् तथा आष्ट्रेलियाप्रदेशे १८५६ तमे वर्षे जनितः Sigmund Freud इति नामकः महाभागः शरीरबाधापेक्षया जनाः अनेकप्रकारैः मनोव्याधिभिरपि बाध्यन्ते इति विज्ञाय, कालान्तरे प्रसिद्धमनोवैज्ञानिकः भूत्वा, मनोव्याधिनां निवारणार्थं बहुधा प्रयतमानः, स्वस्य शोधकार्येण मनसः अन्तर्गतविषयाणां यथार्थावगमनं तथा तेषां परामर्शः आवश्यकः इति धिया Psycho analysis प्रक्रियायाः आविष्करणेन Subconscious mind इत्याख्यस्य अवचेतननामकस्य मनसः स्तरस्य गाढमध्ययनं, तथा रुग्णेभ्यः सह भाषणं निरन्तरं कृत्वा, Hypnotism इत्याख्यमनोवश्य-प्रक्रियामुपयुज्य मनसि अन्तरङ्गे विद्यमानसमस्यानां निवारणं कृत्वा, तत्सर्वं शोधकार्यरूपेण परिवर्त्य, सर्वावगमनार्थं सिद्धान्तान् कल्पयित्वा मानवजीवनाय बहूपकरोति स्म । एतस्य आविष्काराणामनन्तरं विदेशेषु अनेकैः मनोवैज्ञानिकैः अनेकत्र मनसः विषये अध्ययनं, मनोचिकित्साप्रकाराणामुपयोगाः, आविकाराश्च समजायन्त ।

मनोनिग्रहस्य आवश्यकता

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः ॥[१०]

इति प्रमाणोक्तदिशा बन्धः मोक्षः इति सर्वमपि मनसः व्यापारमाश्रित्यैव तिष्ठति अस्माकं भारतीयचिन्तनानुगुणम् । परमेतदर्थं यदावश्यकं भवति मनसः नियन्त्रणं, तनु नातिसुलभम् । युद्धं करोमीति चिरकालं प्रतीक्षमाणः महान् धीरः पराक्रमशाली अर्जुनः एव कुरुक्षेत्रे बान्धवान् आचार्यान् दृष्ट्वा झटिति मनःपरिवर्तनं प्राप्य, शोकादिभावापन्नः, युद्धं कर्तुं नोत्सहते । तदा भगवान् श्रीकृष्णः योगाचार्यस्थानं स्वीकृत्य तमर्जुनं बहुधा उपदिशति कर्तव्याकर्तव्यानामवगमनविषये । तदा वदति एषः - हे कृष्ण ! नाहं शक्यः मम मनसः नियन्त्रणे इति प्रसङ्गे–

---

९. श्रीमद्भगवद्गीता, पूर्वोक्तम्, २.६१, पृ. ४५

१०. ब्रह्मबिन्दूपनिषत्, नारायणाचार्य काव्यतीर्थैः सङ्कलितम्, पुनेनगरस्थ निर्णयसागरमुद्रणालयेन १८९० तमे मुद्रितम्, प्रथमं मुद्रणम्, श्लोकसङ्ख्या ०२, पृ. १५६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवत् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।[११]

इति । मनसि शोकापन्नः अयं अवगमनशक्त्या स्वयमङ्गीकरोति स्वस्य मनसः वर्तमानदशाम् । भगवतः पुरतः स्थित्वापि मनःक्लेशमनुभूतस्य दशा एव इदानीमनेकैः लोकेऽपि भिन्नभिन्नावस्थासु अनुभूयते भिन्नभिन्नप्रकारेण । अनेकानां समस्यानां दूरीकरणोपायः यत्र कष्टमनुभूयते मनसि, तस्मिन्नेव विद्यते इति इदमेव आश्चर्यदायि । संसारजीवनमेतत् सुखमयं अथवा दुःखमयमेव भवतीति इदं सर्वज्ञातमेव । तथापि तादृशानामनुभवानां पारं कर्तुं क्रियमाणस्य प्रयत्नस्यैव अज्ञानात् पुनः पुनः कष्टदशायामापतति जीवः । एकत्र रजसः प्रभावेण अनुचितानामेव आचरणं, अन्यत्र तमसः प्रभावेण उचितानां कर्मणामेव अनाचरणमिति हि मानवसमुदायः बाधामनुभवति ।

परं रजोविषयक अथवा तमोविषयककामक्रोधादीन् सन्त्यज्य बुद्ध्या परिश्रमं कृत्वा बहिरागन्तुं यतमानाय, सत्त्वगुणापन्नायैव अज्ञानात् बहिरागमनरूपकं ज्ञानं सिद्ध्यति । तथा स एव हि ऊर्ध्वगतिं प्राप्नोति लोके । कारणं प्रकृतिः तथा प्रकृत्यन्तर्भूतः जीवश्च उभावपि सत्वं, रजः तथा तमः इति सर्वमपि एतेषां त्रयाणां गुणानामाधारेणैव सर्वान् व्यापारान् आचरत इत्यतः । गुणानां प्रभावः जीवस्य एकैकस्मिन् व्यापारे अस्त्येव । रजसा अथवा तमसा अतीव प्रभावितः जीवः सुखासक्तः अथवा दुःखासक्तः भूत्वा इन्द्रियरामः सन्, लौल्यात् जीवनस्य मूल्यमजानन् अकार्ये एव मग्नः ऊर्ध्वगतिं न कदापि प्राप्नोति इति गीतायाम् उपदिश्यते भगवता एवम्–

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः ।।[१२]

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।।[१३]

इति । अतः मनसि विद्यमानानां काम-क्रोध-मोह-लोभ-मद-मात्सर्यादीनां दोषाणाम् अथवा क्लेशानामवगमनार्थं, तन्निवारणार्थं च बहुकालं नानाविधतपःप्रकारैः कठोरं श्रममनुभूय, आत्मविचारं कृत्वा यज्ज्ञानं प्राप्तं तत् सर्वं शास्त्रत्वेन लोकार्पणं कृत्वा रक्षितवन्तः । तेषां मार्गदर्शनमेव सहस्राणां वर्षाणामनन्तरमपि समाजाय बहूपकरोति योगशास्त्रे इदानीमपि तत्त्वरीत्या, अभ्यासरीत्या च ।

---

११. श्रीमद्भगवद्गीता, पूर्वोक्तम्, ६.३८, पृ. ८५
१२. तत्रैव, १४.१८, पृ. १६०
१३. तत्रैव, ३.३७, पृ. ५७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अस्ति कश्चित् स्वयं नित्यमहंप्रत्ययलम्बनः ।
अवस्थात्रयसाक्षी सन्पञ्चकोशविलक्षणः ॥[१४]

इत्युक्तप्रमाणानुसारं जीवस्य आत्मत्वमेव सत्यं स्वरूपम् । परं देहादिभ्रमकारणजनितबन्धेन अहं सुखी, अहं दुःखी इत्यादिमनोव्यापारपर्यन्तमेव जीवस्य चिन्तनाविषये सीमा कल्प्यते मायया । तस्य कारणं तावदज्ञानमेव । एवं बुद्धिशक्त्या विवेकवैराग्यादीनां सम्पादनेन निष्ठया मनसः व्यापारं प्रथमं सम्यगवगत्य, तस्य गतिं परिशील्य, शास्त्रोक्तदिशा तस्य वशीकरणार्थं मार्गम् अथवा सोपानं यत् शास्त्रं प्रदर्शयति तदेव योगदर्शनमिति प्रोच्यते ।

अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमय-आनन्दमयकोशाः पञ्च भवन्ति जीवस्य अन्तर्भूतत्वेन । जीवस्य दैनन्दिनव्यापारार्थं मनः प्राणशक्त्याः सहाय्येन इन्द्रियाणां निर्वहणं करोति । मनसः एव चित्तं, बुद्धिः, अहङ्कार इति व्यापारानुगुणं भिन्नभिन्नस्तराः भवन्ति । ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः''[१५] ''वीतरागविषयं वा चित्तम्''[१६] इति पातञ्जलमतानुगुणं कामक्रोधादिभिरावृतस्य अस्य चित्तस्य वृत्तीनां निरोधः एव योगः इत्युच्यते । तत्रैव हि योगदर्शने प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृतिरूपाः एताः पञ्च एव जीवं बध्नन्ति इति समस्यायाः कारणमपि सुष्ठु प्रतिपादितमिति एतदेव वैशिष्ट्यं राजयोगस्य । मनः यस्यां स्थितौ भूत्वा व्यापारमाचरति तदनुगुणं तस्य चित्तम्, बुद्धिः अहङ्कार इत्यादयः नामानः दीयन्ते योगशास्त्रज्ञैः तथा तत्त्वज्ञैश्च । पाश्चात्यः मनोवैज्ञानिकः Sigmond Freud महोदयस्तावत् मनसः १. चेतनं Conscious state, २. अचेतनं Super conscious state, ३. अवचेतनं Unconscious state इति मनसः स्थितित्रयमुल्लिख्य अचेतनावस्थायां कथं जीवस्य समस्याबीजमस्तीति स्वस्य विचारान् प्रतिपादयति । परमस्माकं योगिनां मतानुगुणं मनसः तुरीयावस्था अर्थात् Super conscious state इति चतुर्थस्तरः अपि भवति ।

शास्त्रप्रणीतानि मनोवशीकरणसोपानानि

आधुनिककाले जनाः शारीरिक अथवा मानसरोगानां निवृत्त्यै योगाभ्यासः बहूपकरोति इति कथञ्चित् ज्ञात्वा, योगाभ्यासं व्यायामरूपेण बहुकालं कुर्वन्ति । परन्तु तादृशेषु अनेकैः स्वेन आचरितस्य योगाभ्यासस्य फलं यथाकाले प्राप्यते वा इति चेत्, संशय एव भवति । कारणं शरीरम् उपयुज्य कृतं चेत् पर्याप्तमिति सीमितबुद्ध्या एव अभ्यासमाचरन्ति इत्यतः । सर्वेषामाधारभूतेषु आहार-व्यवहारादिषु मनसः नियन्त्रणेन उचितं परिवर्तनम् आनेतुमशक्तास्सन्तीति कारणेन कृतस्य योगाभ्यासस्य पूर्णं फलं प्राप्तुं न शक्नुवन्ति ।

---

१४. विवेकचूडामणिः, पूर्वोक्तम्, श्लोकसङ्ख्या १२५, पृ. ५५

१५. योगदर्शनम् - पातञ्जलयोगसूत्रम् - महर्षिणा पतञ्जलिना रचितम् - समाधिपादः, सूत्रसङ्ख्या २. Four Chapters on Freedom इति बिहार योगविद्यालयस्य प्रतिष्ठापकस्य स्वामिसत्यानन्दसरस्वत्याः आङ्ग्लानुवादेन सहितम् - मुङ्गेर नगरस्थ योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुद्रणालयेन् २००६ वर्षे मुद्रितम् - सप्तम् मुद्रणम् ।

१६. तत्रैव, सूत्रसङ्ख्या ३७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अतः शरीरावयवानां संरक्षणार्थं ।

हठस्य प्रथमाङ्गत्वादासनं पूर्वमुच्यते ।
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम् ॥[१७]

इति हठप्रदीपिकावचनानुगुणम् आरम्भे हठयोगाभ्यासान् कुर्यात् व्यक्तिः । तदनन्तरं मनसः निर्वहणार्थं, तदन्तः विद्यमानान् बल-दौर्बल्यादीन् सम्यगवगन्तुं प्रत्याहार-धारणादि-राजयोगाभ्यासादीन् उचितमाचार्यमुपाश्रित्य सम्यगभ्यस्य तदुपदेशद्वारा यथासमयं कृत्वा, मनसःबलं वर्धयित्वा शारीरिक-मानसिकस्तरे विद्यमानान् क्लेशान् दूरीकुर्यात् मनुष्यः । एतदर्थं सः मनुष्यः बहिरङ्गयोगसाधनस्य तथा अन्तरङ्गयोगसाधनस्य इति उभयोः अपि साधनामार्गयोः स्वरूपं सम्यक् ज्ञात्वा यथाक्रमम् अभ्यासं कर्तुं क्रमशः यतेत । विशेषतया अन्तरङ्गसाधनस्य अनुष्ठानसमये अतीव श्रद्धा निष्ठा च दातव्या तेन । अनेन शरीरस्य तथा मनसः इति उभयोरिन्द्रिययोः विषयेऽपि सम्यक् ज्ञानं. तेषां सम्यक् निर्वहणं च कर्तुं शक्यते ।

योगविज्ञानं तथा मनोविज्ञानश्च

लोके स्वजीवने सम्भावितदुर्घटनापरिपीडितः सामान्यः मानसिकदौर्बल्येन दुःखमसहमानः तस्य दुःखस्य अथवा सम्भावितदुर्घटनायाः वारं वारं स्मरणेन वा मनोव्याधिना पीडितस्सन्, परिजनैः चिकित्सार्थमानीयते, अथवा स्वयं वा समागच्छति चिकित्सकस्य समीपे । तदा सुशिक्षितः मनोवैज्ञानिकः तस्य कष्टस्य पृष्ठभूमिं सम्यगवगत्य तन्निवारणार्थं चिकित्सां तेन सह सम्यक् भाषणं कृत्वा, विश्वासं कल्पयति वा, आवश्यकं चेत् मनोवश्यादिप्रकारैः समस्यानिवारणं करोति । पुनस्तादृशमेव कष्टं पश्यति चेत् स मनुष्यः कथं वा तत् सहेत इति वक्तुं न शक्यते । अतः जातस्य रोगस्य दूरीकरणमिति एतावदेव कर्तुं शक्यते मनोवैज्ञानिकैः ।

परन्तु योगशास्त्रं सर्वोपरि गत्वा यमनियमादीनां दशानां अन्तःकरणसम्वर्धनशक्तियुताम् अभ्यासानाम् आचरणद्वारा, रुग्णाय आरम्भे चिकित्सां दत्त्वा, चिकित्सया सह तं सर्वकार्य, सर्वावस्थायाः निर्वहणार्थं, सर्वानुभवसहनार्थं च स्वतः बलवन्तं कृत्वा परिवर्त्य, अज्ञाननाशं ज्ञानप्राप्तिं च सम्पादयितुं मार्गं प्रदर्श्य, अन्ते मोक्षपर्यन्तं नयतीति इदमेव वैशिष्ट्यं योगदर्शनस्य ।

सुशिक्षितानां मनोवैज्ञानिकानां शोधकार्याणि अथवा तेषां चिकित्साः रुग्णेभ्यः इत्येव जनानां चिन्तनमस्ति । परन्तु योगाभ्यासस्य आचरणं तथा प्रचारश्च सर्वत्र प्रबलं भवति, तथा सरलतया सर्वैरपि कर्तुं शक्यतेऽपि । अतः तात्कालिकचिकित्सार्थं मनोवैज्ञानिकोक्तम् अवलम्ब्य, सम्पूर्णजीवनस्य सम्यक्

१७. हठप्रदीपिका – आचार्यस्वात्मारामेण विरचिता, स्वामिमुक्तबोधानन्दस्य आङ्गलव्याख्योपेता, मुङ्गेर् नगरस्य योगा पब्लिकेशन् ट्रस्ट मुद्रणालयेन २००८ तमे वर्षे मुद्रिता । एकादशम् मुद्रणम् । प्रथमो भागः – श्लोकसङ्ख्या १७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्वहणार्थं योगदर्शनस्य, तथा अभ्यासानामाचरणं कुर्यात् जीवः। मनोविज्ञानस्य एवं योगविज्ञानस्य मध्ये विद्यमानाः भेदाः अधः प्रदत्तास्सन्ति अवगमनाय।

मनोविज्ञानम्	**योगविज्ञानम्**
१. मानसिकरोगनिवारणाय तथा संशोधनकार्यार्थमेव अधिकम् उपयुज्यते मनोवैज्ञानिकैः, विशिष्य-शोधशालासु।	१. सामान्यजनेभ्यः अपि आबाल्यात् मार्गदर्शनं कर्तुं यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यानादयः लाभदायिनः योगाभ्यासाः सन्ति।
२. मनोविज्ञानं मन एव अन्तिमम् इति धियैव व्यवहरति। अतः मनसः व्यापारपर्यन्तमेव सीमितरूपेण गवेषणं प्रचलति	२. शरीर-प्राण-मनोव्यापारानतिरिच्यापि विशेषं यद्वस्तु आत्मा विराजते तस्य ज्ञानावबोधपर्यन्तं जीवमुपकृत्य योगविज्ञानं तं उपनयति।
३. रोगनिवृत्त्यनन्तरम् अभीप्सितं लाभं प्राप्य औषधं, चिकित्सां वा व्यक्तिः न पुनः अवलम्बते।	३. शारीरिक-मानसिकरोगानां मूलं, तन्निदानं, तन्निवारणम् - इति सर्वं क्रमशः कृत्वा, अन्तिमक्षणपर्यन्तं धार्मिकं जीवनं यापयितुं मनुष्याय मार्गदर्शनं करोति इति आदितः अन्तिमपर्यन्तं योगदर्शनं मनुष्यं उपनयति सत्पथे।
४. आधुनिककाले एव मनोविज्ञानस्य प्राबल्यं दृश्यते। सिद्धान्ताधारितमिति कारणेन विरलान्येव सरल-पुस्तकानि प्राप्यन्ते मनोनिर्वहणार्थम्। तेषां सिद्धान्तावगमने सर्वे समर्थाः इति वक्तुं न शक्यते।	४. योगदर्शनम् अतिप्राचीनतमम्। अनेकान् ग्रन्थान् समुदायलाभाय योगिनः ऋषयश्च विरचय्य लोकार्पणं कृतवन्तः। सिद्धान्तावगमनं विनापि, अभ्यासान् कृत्वा योगस्य फलमनुभोक्तुं शक्यते मनुष्येण। शक्ताः सिद्धान्तानामवगमनेन लाभं प्राप्नुवन्ति।
५. आधारनिरूपणार्थं मनोवैज्ञानिकैः समुदायस्य तथा व्यक्तेरुपरि अनेके आविष्काराः क्रियमाणाः, तथा निरूप्यमानाश्च भवन्ति।	५. व्यक्तेः गुणाधारितव्यवहारानुगुणम् उचितानामभ्यासानां योगदानेनैव योगविज्ञानं शारीरिक-मानसिकसमस्याः निवारयितुमर्हति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

६. मनोविज्ञानस्य सिद्धान्तावगमनं सामान्याय कठिनं भवेत् ।

७. मनोवैज्ञानिकः केवलं रोगस्य निवारणपर्यन्तमेव सहकुर्यात् ।

८. मनसः निर्वहणार्थमेव व्यायामाः अथवा अभ्यासाः कल्पितास्सन्ति मनोवैज्ञानिकैः ।

६. सर्वजनसाधारणमपि भवति योगदर्शनस्य उपदेशाः, अभ्यासाः तथा मार्गदर्शनञ्च ।

७. योगी अथवा योगाचार्यः आश्रितस्य व्यक्तेः मार्गदर्शनाय तं सन्मार्गे आन्तम् उपनेतुमर्हति स्वस्याचरणेन तथा मार्ग-दर्शनेन च ।

८. शरीरस्य प्राणस्य मनस बुद्धेः इति सर्वेषां सुरक्षायै अभ्यासाः, तथा कर्म-भक्ति-राजयोगादयः इति विविधानि सोपानानि स्तरानुगुणं सम्यक् निर्दिष्टानि सन्ति योगशास्त्रे योगिभिः ।

उपसंहारः

एवं मनोविज्ञानस्य विषये योगशास्त्रस्य प्रसङ्गः समुदायलाभाय कुत्र कथं भवति अथवा भवितुमर्हतीति यथामति यत्किञ्चित् प्रतिपादितमस्मिन् लेखे सामान्यस्यावगमनार्थम् ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

योगदर्शनानुसारं यमस्वरूपम्

बी. केशवप्रपन्नः पाण्डेयः*

प्राचीनभारतीयदार्शनिकप्रमुखाः पदवाक्यप्रमाण-पारावारपारीणाः व्यासपतञ्जलिभगवद्रामानुजशङ्करमध्वप्रभृतयोऽनेके पूज्यतमा आचार्याः पारमार्थिककल्याणा-वाप्तिविरतान् भगवद्विमुखान् स्वपारमार्थ्यहितमप्यजानतः सदा लौकिकक्षुद्रकामादिदोषसंलग्नान् वराकाञ्जीवानुद्धर्तुकामास्ततः स्वीयनिर्हेतुककृपया ब्रह्मतत्त्वं विचारयितुं प्राथम्येन स्वयमेव औपनिषदस्याद्भुतपरमात्मतत्त्वस्यात्मसाक्षिकानुभवविरूपेण स्थितास्तत्र योगशास्त्रादिप्रतिपादिततत्त्वान्सम्यग् सरलया सरण्या निरूप्य सर्वशास्त्राणां तेष्वेव प्रयोजनीयत्वमुपलम्भयन्तः योगवेदान्तादिदर्शनैः निर्हेतुक्यया च करुणया प्राणिजातानामात्यन्तिकदुःखनिवृत्तिपूर्वकमोक्षसाधनस्वरूपाणि सविस्तरं निरूपयन्तोऽन्ततो तैर्मोक्षश्च पुमर्थत्वेनोररीकृतवन्तस्तादृशा महानुभावाः तादृशानि वस्तुतत्त्वगहनमननसमृद्धान्येतानि दर्शनान्येव सम्प्रदायपरम्परयोत्तरकाले वैदिकानां परमजीवातुभूताः प्रमुखवैदिकमतप्रख्याता विराजन्ते ।

तत्र- 'दृश्यते ज्ञायतेऽनेन' इति व्युत्पत्त्या दर्शनशब्देन सम्यक् ज्ञानसाधनं दर्शन- शास्त्रमुपलभ्यते तथाहि आत्मतत्त्वस्य दर्शनसाधनरूपेण श्रवणमननिदिध्यासनानि आम्नातानि बृहदारण्यकोपनिषदि 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य'[१] इति । उक्तञ्च कठोपनिषदि- 'दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः'[२] एवं विचारसहकृतं बौद्धिकात्मतत्त्वसाक्षात्कारपर्यवसानमेव दर्शनशास्त्रमिति बृहदारण्यकश्रुतेः कठश्रुतेश्च सिध्यति । अतश्च श्रुतेः प्रामाण्यमुररीकृत्य तर्कनिष्ठतत्त्वविचारे प्रवृत्तानि यथा आस्तिकदर्शनानि तथा वेदप्रामाण्यमनुररीकारिबौद्धादिनास्तिकदर्शनान्यपि भारतीयदर्शने दर्शनशब्दाभिधेयानि दृश्यन्ते । सर्वेषामेव एतेषां दर्शनानां बोधिनिष्ठविचारात्मकतत्त्वानुसन्धानपर्यवसानत्वमेव लक्ष्यम् ।

तादृशानामेव प्राचीनकाले आध्यात्मिकतत्त्वविवेचकैः महर्षिभिः स्वयमनुभूतस्यैव (तत्त्वस्य) याथार्थ्यस्य दर्शनेषु उद्घोषणं कृतम् । तैः तपसा स्वाध्यायबलेन च आध्यात्मिकतत्त्वानां चिन्तनं विधाय (प्रकृतेः) संसाररहस्योद्घाटनं कृतम् । जीवितस्य लक्ष्यं किम्? तत् साधयितुमुपायाः के? इत्येवमादीनां

'स्वाध्याय' – पु. ५९, वर्ष २०२२, पृ. ७७-८२. ISSN 2250-0391

* संस्कृतविभागः, द्वारका डॉस गोवर्धन डॉस वैष्णव कॉलेज, अरुम्बक्कम, चेन्नई-१०६, M: 08124970316, Email: keshavaprapanna@gmail.com

१. श्रीमद्विश्वक्सेनाचार्यप्रणीतगूढार्थदीपिकाव्याख्यया समन्विता बृहदारण्यकोपनिषद्, सम्पा. डॉ. सुदामा सिंह, श्रीमहालक्ष्मीनारायण यज्ञसमिति, वाराणसी, द्वितीयावृत्तिः, वि.सं. २०५४, २.४.५, पृ. ९७

२. कठोपनिषद्, प्रकाशः नगीताप्रेस, गोरखपुर, तृतीयावृत्तिः, २००८, १.३, पृ. २३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रश्नानां समाधानरूपेण दर्शनानि आविरभूवन् । लौकिकप्रत्यक्षद्वारा (बाह्येन्द्रियैः) सत्यस्य साक्षात्कारो न भवतीति तपस्विनः योगिनः स्वयोगबलेन बाह्येन्द्रियाणामन्तःकरणस्य च जयेन (निरोधेन) तत्वं ज्ञातुं प्रभवन्ति स्म । यमनियमादिभिः अन्तःकरणस्य शुद्धौ सत्यामेव चिद्दर्पणे आत्मनः बिम्बः प्रतिफलति । अतः योगसाधनद्वारा अन्तः करणशुद्धिरावश्यकीति महर्षीणां मतम् । किञ्च आत्मदर्शनस्य श्रवण-मनन-निदिध्यासनानि त्रीण्येतानि साधनानि साधारणहेतव उच्यन्ते । तदुक्तम्-

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः ।
मत्वा च सततं ध्येयम् एते दर्शनहेतवः ॥[३] इति ।

योगलक्षणम्-

'युज समाधौ' इति धातोर्योगः समाधिरित्युक्तः, स च योगः चित्तस्य रजस्तमोवृत्तीनां निरोध इति कथितः, अर्थात् चित्तस्यान्तःकरणस्य वक्ष्यमाणा या वृत्तयस्तासां वृत्तीनां प्रमाणविपर्ययादीनां यो निरोधो निवर्तनं स योग इत्यर्थः । ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः''[४] इत्युक्तं योगसूत्रसमाधिपादस्य द्वितीयसूत्रेण । निरोधो निवर्तनम् इत्युक्ते योग इत्यर्थः । तादृशो योगः द्विविधः सम्प्रज्ञातः असम्प्रज्ञातश्च । तावुभावपि चित्तस्य धर्मौ भवतः । तत्र यो ध्येयातिरिक्तवृत्तिनिरोधः स च विषयान्तरसञ्चाराख्यप्रतिबन्धकनिवृत्तिरूपतया विषयान्तरवासनानुभवद्वारा धर्मविशेषद्वारा च ध्येयसाक्षात्कारस्य हेतुर्भवति । चित्तं हि स्वत एव सर्वार्थग्रहणक्षमं विभुं च भवति । तमसाच्छादनादेव अर्थादज्ञानादेव हि न सर्वदा सर्वं ग्रहीतुं समर्थं भवति । अतस्तमोवर्धकानां विषयान्तरदुर्वासनापापादिकर्मणां स्वयमेव ध्येयं वस्तु साक्षात्क्रियते चित्तेनेति फलितार्थो भवति । तादृशोपर्युक्तचित्तस्य क्षिप्तं, मूढं, विक्षिप्तं, एकाग्रम्, निरुद्धम् इति पञ्चावस्थाः प्रोक्ताः आचार्यैः । तत्रैकैकस्या अपि अवस्थाया लक्षणान्यपि लक्षयति नागोजीभट्टाचार्यः तत्र क्षिप्तमित्युक्ते रजोगुणस्य उद्रेकादत्यन्तम् अस्थिरत्वम् अपि च शब्दानुरागित्वञ्च प्रोक्तम्, यथा दैत्यानां दानवानामसुराणाञ्च विषये दरीदृश्यते दृष्टान्तत्वेन । मूढं हि नाम तमःसमुद्रेकाद् निद्रालस्यादियुक्तत्वं, कृत्याकृत्यविवेकशून्यत्वं, कामक्रोधयुतत्वं, अधर्मकर्मादिष्वनुरागित्वञ्च विहितं यथा राक्षसपिशाचादिषु दृश्यते । ततो विक्षिप्तं नाम सत्त्वोद्रेकाद्दुःखसाधनपरिहारेण सुखसाधनेष्वेव सदा प्रवृत्तिमत्त्वं यथा देवादिषु दृष्टिगोचरम् । चित्तं हि रजसा प्रवृत्तिशीलं, तमसा परोपकारनिरतं, सत्त्वेन सुखमयं भवति । आसु तिसृषु विद्यमानोऽपि यत्किञ्चिच्चित्तवृत्तिनिरोधो न योगपक्षे तत्प्रतिद्वन्द्विविक्षेपोपसर्जनत्वात् । तत्र एकाग्रत्वञ्च ध्येयातिरिक्तवृत्तिनिरोधः । तत्र हि सति कूटस्थनित्यचित्स्वरूपस्य हृदयदेशे

---

३. श्रीसदानन्दप्रणीतवेदान्तसारमनोरञ्जनीटीका, सम्पा. डॉ. कृष्णकान्त त्रिपाठी, प्रका. भारतीय प्रकाशन चौक, कानपुर, प्रथमावृत्तिः, १८५०

४. महर्षिपतञ्जलिप्रणीतयोगसूत्रम्, सम्पा. पं. ढुण्ढिराजशास्त्री, प्रका. चौखम्भा संस्कृतसंस्थान, वाराणसी, तृतीयावृत्तिः, २००१, १.२, पृ.०३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्तःकरणावच्छेदनाभिव्यक्तस्य साक्षात्कारो भवति । साक्षात्कारे च अविद्योच्छेदात् तन्मूलक्लेशक्षयो भवति । अस्यामवस्थायां सम्प्रज्ञातयोगो निरुक्तः । अन्त्यश्च असम्प्रज्ञातत्वेन पूर्वोक्तस्यैव एकाग्रस्य पराकाष्ठा भवति यत्र चित्तस्य ध्यानमात्रप्रियता भवति, सुखदुःखमोहात्मकत्वरूपाशुद्धिरहितत्वपूर्वकं सर्वत उपरतित्वमेवास्य मुख्यं लक्षणं भवति । तत्रैव 'विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः'[५] इत्यनेन सर्ववृत्तिनिरोधो मोक्ष इत्यभिप्रेतः । अत्र रजस्तमोमयवृत्तेः सर्वथा निरोधः भवति । अस्य च अखिलवृत्तिसंस्कारदाहद्वारा प्रारब्धस्यापि अतिक्रमेण मोक्षहेतुत्वमित्युक्तम् । इत्येवं योगाङ्गभूतौ सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातौ सलक्षणं विवृताविह । इदानीं यमस्वरूपं यथा -

यमस्वरूपम् - तत्रेदानीं प्रकृते प्रतिपाद्यविषयस्य यमस्य स्वरूपाणि, लक्षणानि तदभ्यासेन कानि फलानीति च क्रमेण विवेच्यन्त इह । ''योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेकख्यातेः''[६] तत्रानेन सूत्रेण वक्ष्यमाणानां योगाद्यष्टावङ्गानामनुष्ठानेन ज्ञानपूर्वकानवरताभ्यासेन च क्लेशकर्मरूपाया अशुद्धाया क्रमेण पापक्षये जायमाने सत्यलौकिकज्ञानस्योत्तरोत्तरं वृद्धिराविवेकख्यातेर्भवतीत्यर्थोऽत्र कृतः । अर्थात् साङ्गयोगानुष्ठानात्क्लेशकर्माद्यशुद्धिनाशः तद्द्वारालौकिकज्ञानलाभश्चेहोक्तः । पूर्वोक्तेन सूत्रेण योगानुष्ठानादशुद्धिक्षयमभिधाय कानि तान्यष्टावङ्गानि योगस्येत्युच्यत अग्रिमसूत्रेण । ''यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टाङ्गानि''[७] इत्येतानि यमनियमादीन्यष्टावङ्गानि क्रमेण उपर्युक्तेन सूत्रेण प्रोक्तानि ।

तेष्वाद्यस्य यमस्य लक्षणमुच्यते प्रकृतसूत्रेण यथा - ''अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः''[८] तत्र सूत्रस्थाहिंसादिभ्यः शास्त्रविरुद्धपापकर्मभ्यो योगिन आत्मनः यमयन्ति निवर्तयन्ति इति यमस्य सामान्यं लक्षणमुक्तम् । तत्र अहिंसा नाम त्रिभिर्मनोवाक्कायकरणैः सर्वदा सर्वविधभूतानामपीडनम् अहिंसनमिति, परं शौचाचमनादावपरिहार्यहिंसायां न दोष इति केचित्, सत्यं सर्वदानृताभिभाषणमुक्तम् अर्थात् वाङ्मनसयोर्यथार्थत्वम् । बलाद्रहसि वा कस्यचित्सत्त्वापहरणं स्तेयमित्युक्तं तदभावोऽस्तेयं कथ्यते अर्थात् परस्वानादानम् । ब्रह्मचर्यं नाम उपस्थनिग्रहः इत्युक्तम् । तत्राष्टविधमैथुननिवृत्तिर्मुख्यत्वेनोक्ता ब्रह्मचर्ये । यथा -

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ॥[९] इत्यष्टविधम् ।

---

५. तत्रैव, १.१८, पृ.२३
६. तत्रैव, २.२८, पृ.९०
७. तत्रैव, २.२९, पृ.९१
८. तत्रैव, २.३०, पृ.९१
९. तत्रैव, पृ.९२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चरमोऽपरिग्रहस्तु देहयात्रातिरिक्तभोगसाधनानामस्वीकारः । एवमेते पञ्च यमाः योगस्य हिंसाऽनृतादिविरोधिनिरासकत्वेनाङ्गत्वं भजन्ते ।

साम्प्रतम् अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहानामेतेषां यमाङ्गानां जातिदेशकालादिष्वनवच्छिन्नतया नियततयोपासनेन अर्थात् तेषां नियमितपरिपालनेन किं वा कश्चन योगी सम्पादयितुं शक्नुयादिति वर्णयतीदानीम् । तादृशनियमपरिपालनमेवात्र महाव्रतमित्यनेन पदेनोच्यते अधोनिर्दिष्टेन सूत्रेण - यथा - ''एते जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्''[१०] इति । तत्र प्रकृतसूत्रेण महाव्रतत्वेन वक्ष्यमाणानि चत्वारि तदङ्गानि यथा - अत्र जातिरित्युक्ते गोत्वब्राह्मणादिर्वा । देशस्तीर्थस्थलादिः । कालः नियतैकादशीचतुर्दश्यादिकालः । समय इत्युक्ते युद्धादिः । तत्र सदा गोब्राह्मणं न हनिष्यामीत्यहिंसा जात्या परिच्छिन्ना, कमपि तीर्थे वा चतुर्दश्यादिषु वा न हनिष्यामीति देशकालाभ्यामवच्छिन्ना । देवब्राह्मणाद्यर्थभोजनादिसमयेषु न हनिष्यामीति समयावच्छिन्ना परमेतद्विपरीततया प्राणिमात्रं किञ्चित्कचित्कदाचिदपि कस्यापि कृतेऽहं न हनिष्यामीति जात्यादिभिः चतुर्भिः अनवच्छिन्ना या भवत्यहिंसा सा पुष्कलेति प्रशंसिता शास्त्रेषु । एवं सत्यादीन्यपि शिष्टानि यमाङ्गानि उपर्युक्तैः जात्यादिभिरनच्छिन्नानि भवेयुरिति ऊहनीयमत्र । इत्थं सर्वजात्यादिसाधारणास्ते अहिंसादयो यमाः भूमिषु विदिताः सार्वभौमा महाव्रता इत्युच्यन्त इत्यर्थः ।

इतःपरं यमाङ्गानामभ्यासोत्कर्षात् याः सिद्धयो भवन्ति ताः प्रतिपाद्यन्त इह क्रमेण । तत्र प्रथमं यमस्याद्यङ्गभूताया अहिंसायाः वैशिष्ट्यं यथा - ''अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः''[११] सूत्रेणानेन विवेच्यते यद् कस्यचिद् मुनेः अहिंसायां स्थैर्ये सति तादृशस्याहिंसकस्य योगिधौरेयकस्य सन्निधौ विद्यमानानां सहजविरोधिनां, मार्जारमूषकगोव्याघ्रादीनामपि परस्परवैरत्यागो भवतीत्यर्थः, अर्थात् तस्याहिंसां भावयन्तः स्वभावविरुद्धा अपि प्राणिनः पारस्परिकवैरं परित्यज्य तत्सन्निधावेव प्रेम्णा एकत्र वसन्तीत्यभिप्रेतः । सैव सिद्धिश्चात्र प्रोक्ता । एतदेवाभिप्रेत्य प्रोक्तं वसिष्ठसंहितायां यथा -

मातरीव परं यान्ति विषमाणि मृदूनि च ।
विश्वासमिह भूतानि सर्वाणि शमशालिनि ॥[१२] इति ॥

इदानीं सत्याभ्यासतः किं भवतीत्युच्यते । ततः प्राक् तल्लक्षणं किमित्युच्यते -

यथार्थकथनं यच्च सर्वलोकसुखप्रदम् ।
तत्सत्यमिति विज्ञेयमसत्यं तद्विपर्ययम् ॥[१३] इति

---

१०. तत्रैव, २.३१, पृ. ९३
११. तत्रैव, २.३५, पृ. ९८
१२. तत्रैव, पृ. ९८
१३. पद्मपुराणक्रियाखण्डः, सम्पा. आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, प्रका. चौखम्भा सुरभारती, वाराणसी, प्रथमावृत्तिः, २०१५, १७.७.८५, पृ.१२२५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

''सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्''[१४] इत्यनेन सूत्रेण कस्यचित्सत्ये प्रतिष्ठायां सत्यां किं वा तेन सम्पादयितुं शक्यत इति वक्ति । तत्र क्रिया इत्युक्ते धर्माधर्मरूपा, तस्याः फलं स्वर्गादिकं. तयोः क्रियाफलयोराश्रयः सत्यप्रतिष्ठितो दाता भवति तस्य भाव एव क्रियाफलाश्रयत्वं नाम तत्त्वमित्यभिप्रायः । अर्थात् अकृत्वापि यागक्रियाः कश्चिदलसो तत्सत्यप्रतिष्ठितवचनानुग्रहेण स्वर्गादिफलदानसामर्थ्यमप्यायाति । किं वा पुनः स्वस्य विषये वक्तव्यम् । तादृशं लोकोत्तरवैभवमुक्तं सत्यवाक्परिपालनपरस्य योगिनः । एवमत्र सत्यनिष्ठावतो वचनस्य कियद्वैलक्षण्यमिति प्रकृतसूत्रेण प्रत्यपादि योगसूत्रकारैः । सहैव तत्प्रशंसायां कानिचन श्रुतीतिहासपुराणान्तर्गतान्यपि सुपद्यान्यत्र द्रष्टव्यानि । यथा ''सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः । येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामाः यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्'' ॥[१५] इत्यनेन मुण्डकोपनिषद्वाक्येन सत्यस्य समग्रमप्यौत्कृष्ट्यमर्थगौरवञ्च दरीदृश्यते । तथैवेतिहासपुराणाभ्यां प्रसिद्धाविमौ श्लोकौ-

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः ।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥[१६]
सत्येन लोकं जयति सत्यन्तु परमं तपः ।
यथाभूतप्रसादन्तु सत्यमाहुर्मनीषिणः ॥[१७]

अग्रिमेण सूत्रेणास्तेयमभ्यसतो योगिनो वैलक्षण्यमुच्यते यथा ''अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्''[१८] यदि कश्चिदस्तेयं नित्यमभ्यसति अर्थात् अचौर्ये दार्ढ्यमाचरति तर्हि तत्प्रकर्षान्निरभिलाषस्यापि तस्य सर्वविधानि दिव्यानि रत्नानि सर्वदिग्भ्यस्तत्पुरत उपस्थितानि भवन्तीत्यर्थः । तद्विरुद्धमाचरतां तस्कराणां विषये कठोरं दण्डविधानमपि दृश्यते मनुस्मृतौ यथा-

सन्धिं छित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ।
तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णशूले निवेशयेत् ॥[१९] इति ॥

---

१४. महर्षिपतञ्जलिप्रणीतयोगसूत्रम्, पूर्वोक्तम्, २.३६, पृ. ९८

१५. मुण्डकोपनिषद्, प्रका. गीताप्रेस, गोरखपुर, २३वी आवृत्तिः २०१९, ३.१.६

१६. श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्, प्रकाशक एवं मुद्रक - गीताप्रेस, गोरखपुर, ८वी आवृत्तिः २०००. २.१०९.१३, पृ. २२४

१७. ब्रह्मवैवर्तपुराणम्, प्रकाशक एवं मुद्रक - गीताप्रेस, गोरखपुर, ८वी आवृत्ति, २०१७, १.४८, पृ. १५६

१८. महर्षिपतञ्जलिप्रणीतयोगसूत्रम्, पूर्वोक्तम् २.३७, पृ. ९९

१९. मनस्मृतिः, सम्पा. टी आर स्वामी, प्रका. रञ्जनपब्लिकेशन्स, प्रथमावृत्तिः, नई दिल्ली, २०१९, ९.२७६.७७ पृ. ३२२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इदानीं ब्रह्मचर्यनिष्ठायां सत्यां कीदृशं वा औत्कृष्ट्यमित्याहं आनन्तरिकेन सूत्रेण विवृणोति योगसूत्रकारः यथा- ''ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः''[२०] तत्र ब्रह्मचर्यं नाम वीर्यनिरोध इत्युच्यत इह । यः किल नियमेन ब्रह्मचर्यमभ्यसति तस्य तत्प्रकर्षाच्छरीरेन्द्रियमनस्सु निरतिशयवीर्यलाभः सामर्थ्यविशेषश्च समुपजायते येन स्वयं स ज्ञानक्रियाशक्तिमान्भूत्वा परेषामपि तत्सामर्थ्यमादधाति । अर्थात् तच्छिष्येषु तत्कृतोपदेशः सद्यः फलतीति भावः ।

अथ यमस्य चरमाङ्गभूतमपरिग्रहमभ्यसतो योगिनो वैलक्षण्यं तेन काः सिद्धय इतीदानीं प्रतिपाद्यते ''अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः''[२१] इत्यनेन सूत्रेण । अत्र कथमित्यस्य भावः कथंता तादृश्याः कथंतायाः सम्यग् बोधः अर्थात् साक्षात्कारः कथंतासम्बोधः, जन्मनः कथंता तस्याः सम्बोधः जन्मकथंतासम्बोध इति विग्रहोऽत्र । अत्र सूत्रस्यास्य भावोऽयं यदपरिग्रहशीलस्य तत्स्थैर्ये सति पूर्ववर्तमानभाविजन्मनां कथंतायाः सम्यग्बोधो जिज्ञासापूर्वको भवति, उदाहरणार्थं - पूर्वजन्मनि कोऽहं, कीदृशोऽहमासं किं कार्यमकरवमिति जिज्ञासायां सर्वमनेनापरिग्रहमभ्यसता योगिना सम्यग्ज्ञायत इत्यर्थः । इत्थं योगलक्षणम्, यमस्वरूपम्, तल्लक्षणानि तदभ्यसने काः सिद्धयो भवन्तीत्यत्र क्रमेण निरूपिताः ।

उपसंहारः-

प्राचीनकाले आध्यात्मिकतत्त्वविवेचकैः महर्षिभिः स्वयमनुभूतस्यैव (तत्त्वस्य) यथार्थ्यस्य दर्शनेषु उद्घोषणं कृतम् । तैः तपसा स्वाध्यायबलेन च आध्यात्मिक-तत्त्वानां चिन्तनं विधाय (प्रकृतेः) संसाररहस्योद्घाटनं कृतम् । जीवितस्य लक्ष्यं किम्? तत् साधयितुमुपायाः के? इत्येवमादीनां प्रश्नानां समाधानरूपेण दर्शनानि आविरभूवन् । लौकिकप्रत्यक्षद्वारा (बाह्येन्द्रियैः) सत्यस्य साक्षात्कारो न भवतीति तपस्विनः योगिनः स्वयोगबलेन बाह्येन्द्रियाणामन्तःकरणस्य च जयेन (निरोधेन) तत्त्वं ज्ञातुं प्रभवन्ति स्म । यमनियमादिभिः अन्तःकरणस्य शुद्धौ सत्यामेव चिद्दर्पणे आत्मनः बिम्बः प्रतिफलति । अतः योगसाधनद्वारा अन्तःकरणशुद्धिरावश्यकीति महर्षीणां मतम् ।

-----

२०. महर्षिपतञ्जलिप्रणीतयोगसूत्रम्, पूर्वोक्तम् २.३७, पृ. ९९

२१. तत्रैव, २.३७, पृ. ९९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

योगदर्शनानुसारेण प्राणायामस्वरूपप्रतिपादनम्

वी. बालाजी*

उपोद्घातः

प्रपञ्चेऽस्मिन् अनादिकालादेव आध्यात्मिक – आधिभौतिक – आधिदैविकैः त्रिभिः दुःखैः असकृत् प्रपीडितः सन् सर्वेऽपि मानवाः मायाजनितदुःखसागरात् आत्मानमुद्धर्तुम् आत्यन्तिकसुखार्थं विलोकयति कश्चिन्मार्गविशेषम् । स च मार्गः दर्शनादेव जायते । अथ किं नाम दर्शनमिति जिज्ञासायां – दृश्यते परमपुरुषार्थात्मकमार्ग अनेनेति व्युत्पत्त्या दर्शनपदार्थः सिध्यति ।

यद्यपि दर्शनस्य लक्षणानि विविधसम्प्रदायेषु विविधप्रकारेण विहितानि, किन्तु सर्वेषां लक्षणवाक्यानां एकस्मिन् लक्ष्ये अभिप्रायो वर्तते । इदमपि स्पष्टमेवास्ति यत् 'दर्शन' शब्दस्य प्रयोगः शास्त्रेण सह भवति । अत एव ''दृश्यते यथार्थरूपतया ज्ञायते अलौकिकतत्त्वं येन तत् दर्शनशास्त्रम्'' इति व्युत्पत्त्या अपि सिद्ध्यति यत् अलौकिकतत्त्वानां सम्यग्ज्ञानं येन जायते तत् ज्ञानरूपं साधनमेव दर्शनं भवति ।

भारतवर्षे तु विविधाः दार्शनिकसम्प्रदायाः दृश्यन्ते । एकस्यैव सम्प्रदायस्य अनेके विचारकाः वर्तन्ते । तेषां विविधाः दार्शनिकचिन्तनग्रन्था अपि उपलभ्यन्ते । तेषु महर्षिप्रवरपतञ्जलिप्रणीतयोगदर्शनमधिकृत्य किञ्चित् प्रतिपाद्यते–

योगदर्शनपरिचयः

योगदर्शनं दर्शनेषु अन्यतमं स्थानमावहति । अस्य योगशास्त्रस्य रचयिता महर्षिः पतञ्जलिः । अयं पतञ्जलिः जीवः ईश्वरश्चेति तत्त्वद्वयं स्वीकरोति । अत एव अस्य दर्शनस्य ''सेश्वरसांख्ययदर्शनम्'' इति नामान्तरं वर्तते । अस्यैव शास्त्रस्यापरं नाम ''सांख्यप्रवचनम्'' इति । एतद्दर्शनं पतञ्जलिना प्रणीतत्वात् ''पातञ्जलदर्शनम्'' इत्यपि व्यवहारयोग्यं भवति । यद्यपि पतञ्जलेः पूर्वाचार्याः हिरण्यगर्भयाज्ञवल्क्यादयः योगशास्त्रस्य प्रवक्तारः आसन्, तथापि जनसाधारणानां कृते पतञ्जलिरेव योगशास्त्रं सूत्ररूपेण ग्रन्थीकृत्य सम्यक् सरलरीत्या व्याजहार इति हेतोः अस्य योगदर्शनस्य ''पातञ्जलदर्शनम्'' इति नाम सयुक्तिकं तिष्ठति ।

दर्शनेऽस्मिन् पादचतुष्टयं वर्तते । तत्र प्रत्येकस्यापि पादस्य नामानि क्रमेणाह – समाधिपादः, साधनपादः, विभूतिपादः, कैवल्यपादश्च इति । तेषु साधनपादे, विभूतिपादे च योगाङ्गानां स्वरूपप्रतिपादनं

'स्वाध्याय' पु. ५९, वर्ष २०२२, पृ. ८३- ८६. ISSN 2250-0391

* द्वारका दास गोवर्धन दास वैष्णव कॉलेज, अरुम्बक्कम्, चेन्नई- १०६, M: 09791699411, Email : balbalram1990@gmail.com

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशादीकृतमस्ति । तयोः मध्ये साधनपादे प्राणायामस्य विषयः विस्तरेण प्रतिपादितो वर्तते । तल्लक्षणन्तु –

प्राणायामस्वरूपप्रतिपादनम्

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोः गतिविच्छेदः प्राणायामः[१] इति सूत्रितं पतञ्जलिना । तस्मिन् – आसनस्थैर्ये सति प्राणायामः प्रतिष्ठितो भवति । स च श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदस्वरूपः । तत्र श्वासो नाम बाह्यस्य वायोरन्तरायनम् । प्रश्वासो हि नाम पुनः कोष्ठस्य बहिर्निस्सारणम् । तयोरुभयोरपि संचरणाभावः प्रणायामः इति तल्लक्षणम् । एवं तस्यैव प्राणायामस्य विशेषणतया विप्रकारत्वं, तल्लक्षणञ्च प्रतिपादितम् उत्तरेण सूत्रेण – स तु बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिः देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः[२] इति । वृत्तिशब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते । यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्यभावः स बाह्यः । यत्र श्वासपूर्वको गत्यभावः स आभ्यन्तरः । यत्रोभयाभावः सकृत्प्रयत्नाद्भवति सः स्तम्भवृत्तिः । तदेवं दृढयति – यत्रोभयोः श्वासप्रश्वासयोः सकृदेव विधारकात्प्रयत्नादभावो भवति, न पुनः पूर्ववदापूरणप्रयत्नौघविधारकप्रयत्नः, नापि रेचकप्रयत्नौघविधारकप्रयत्नोऽपेक्ष्यते इति । किन्तु यथा तप्त उपले निहितं जलं परिशुष्यत्सर्वतः सङ्कोचमापद्यत एवमयमपि मारुतो वहनशीलो बलवद्विधारकप्रयत्ननिरुद्धक्रियः शरीर एव सूक्ष्मीभूतोऽवतिष्ठते न तु पूरयति येन पूरकः, न तु रेचयति येन रेचक इति । एवं स एव प्राणायामः बाह्यवृत्तिराभ्यन्तरवृत्तिस्तम्भवृत्तिरिति त्रिधा रेचकपूरककुम्भकभेदात् विभक्तः । प्राणिनां दक्षिणा नाडी पिङ्गला नाम सूर्यदैवत्या पितृयोनिः । वामा इडाख्या चन्द्रदैवत्या देवयोनिः । तयोर्मध्ये सुषुम्ना ब्रह्मदैवत्या, तत्र वामनासापुटेनान्तर्वायोस्त्यागो रेचकः । दक्षिणेन बाह्यपूरणं पूरकः । पूरितस्य निगृह्याविमोकः कुम्भकः । याज्ञवल्क्येन पूरककुम्भकरेचक इति क्रमः उक्तः । स त्रिविधः देशकालसंख्याभिः परिदृष्टः अर्थात् निर्णीतो भवति । तदभ्यासवशाद्दीर्घसूक्ष्मसंज्ञको भवतीत्यर्थः । तत्र रेचकस्य देशो नासिकाद्बहिः प्रादेशः द्वादशाङ्गुलहस्तादिपरिमितः शक्त्यनुसारात् । स च इषीकातूलादिक्रियया निश्चेयः । पूरकस्य च आपादतलमस्तकमाभ्यन्तरो देशः स च पिपीलिकास्पर्शसदृशस्पर्शेन निश्चेयः । कुम्भकस्य च पूरकदेश एव विषयः । पूरकान्तरं तच्छ्रवणात् । स तूलक्रियया उक्तस्पर्शस्य वानुपलब्ध्या निश्चेयः । कालावधृतो यथा – एतावत्कालो रेचकः, एतावत्क्षणव्यापी पूरकः, एतावत्कालव्यापी कुम्भक इत्यङ्गीकृतकालैरवधृतः । द्वादशरूपमापन्नसंख्यायाः एकैव संख्या त्रिष्वपि मार्कण्डेयोक्ता । मात्रा निमेषोन्मेषपरिच्छिन्नो कालः । स्वजानुमण्डलं त्रिःपरामृश्य छोटिकावच्छिन्नकालो मात्रेत्यन्ये । उन्मेषक्रियावच्छिन्नः काल इत च । वसिष्ठेन पूरके षोडश मात्राः, कुम्भके चतुःषष्टिमात्राः रेचके द्वाविंशन्मात्रा उक्ताः । योगियाज्ञवल्क्येन त्रिष्वपि द्वादशमात्राः कनीयान्, त्रिष्वपि चतुर्विंशतिमात्रो मध्यमः, त्रिष्वपि षट्त्रिंशन्मात्राकालपरिच्छिन्न उत्तम इत्युक्तं भवति । दीर्घसूक्ष्म इति देशाद्यन्यतमनियमेन प्रत्यहमभ्यस्यमानः क्रमणकालवृत्या दीर्घकालव्याप्तित्वाद्दीर्घः,

---

१. पतञ्जलि योगसूत्रं २.४९ महर्षिप्रवरपतञ्जलिप्रणीतं योगसूत्रं – षट्टीकोपेतम्, ढुण्ढिराजशास्त्रिणा पाठान्तरटिप्पण्या संशोधितम् च, चौखम्बा संस्कृत संस्थानम्, वाराणसी, २०१८, पृ. १०६

२. तत्रैव, २.५०, पृ. - १०७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वायुसंचारस्यातिसूक्ष्मतया सूक्ष्मश्च भवतीति बोध्यम् । स च जपध्यानं विना क्रियमाणोऽगर्भ इत्युच्यते । तत्सहितश्च सगर्भ इति । तत्रेश्वरगीतायां सव्याहृतिका, सप्रणवा, गायत्री सशिरस्का त्रिजप्या इत्युक्तम्, त्रिषु एकैकवारमित्यर्थः ।

एवं त्रयाणां प्राणायामानां स्वरूपं विशदीकृत्य चतुर्थमभिधातुमाह – बाह्याभ्यन्तरविषयापेक्षी चतुर्थः[3] इति । सूत्रेण अनेन रेचकादिभ्यः त्रिभ्यः प्रकारान्तरमुच्यते । तथा हि – यथाशक्ति वायुं विरेच्यानन्तरं क्रियमाणो बहिष्कुम्भकः । यथाशक्ति वायुमापूर्यानन्तरं क्रियमाण आन्तरकुम्भकः । रेचकपूरकौ अनादृत्य केवलकुम्भकमभ्यस्यमानः पूर्वत्रयापेक्षया चतुर्थो भवति । निद्रातन्द्रादिदोषयुक्तानां रेचकादित्रयम्, तद्रहितानां चतुर्थ इति विवेकः । तदुक्तं वासिष्ठसंहितायाम् –

प्रस्वेदं जनयेद्यस्तु प्राणायामो हि सोऽधमः ।
मध्यमः कम्पनात्प्रोक्त उत्थाने चोत्तमो भवेत् ॥

पूर्वं पूर्वं प्रकुर्वन्ति यावदुत्तमसम्भवः ।
निश्वसोच्छ्वासको देहे स्वाभाविकगुणावुभौ ॥

तथापि नश्यतस्तेन प्राणायामोत्तमेन हि ।
तयोर्नाशे समर्थः स्यात्कर्तुं केवलकुम्भकम् ॥

रेचकं पूरकं त्यक्त्वा सुखं यद्वायुधारणम् ।
प्राणायामोऽयमित्युक्तः स वै केवलकुम्भकः ॥

सहितं केवलं वापि कुम्भकं नित्यमभ्यसेत् ।
यावत्केवलसिद्धिः स्यात्तावत्सहितमभ्यसेत् ॥

केवले कुम्भके सिद्धे रेचकपूरकवर्जिते ।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥[4]

इति । अतः बाह्याभ्यन्तरविषयकौ पूर्वोक्तरेचकपूरकौ तयोराक्षेपी अतिक्रामी तौ त्यक्त्वा स्वयमेव केवलो वर्तते इति यावत्, एवम्भूतो यः प्राणायामः स चतुर्थ इति सूत्रार्थः । एवं चतुर्विधस्य प्राणायामस्य योगाङ्गत्वे तद्द्वारभूतं फलञ्चोच्यते उत्तरेण सूत्रेण – ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्[5] इति । अस्यार्थस्तु – पूर्वोक्तप्रकारेण चतुर्विधस्यापि प्राणायामस्य सम्यगनुष्ठानेन प्रकाशाख्यस्य सत्वस्योपरि आवरणरूपेण एतावता यस्य निद्रालस्यादि-हेतुभूतस्य तमो गुणस्य उपस्थितिरासीत् तस्य क्षयः सञ्जायते इत्यर्थः । एवं फलान्तरमप्युच्यते

---

३. तत्रैव, २.५१, पृ. १०९
४. तत्रैव, पृ. ११०
५. तत्रैव, २.५२ पृ. १११

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूत्रान्तरेण – धारणासु च योग्यता मनसः[६] इति । तदर्थस्तु – प्राणायामस्थैर्यादेव मनसो वक्ष्यमानधारणासु क्षमता सञ्जायते । प्राणाधीनतया मनोव्यापारस्य प्राणस्थैर्येणैव मनःस्थैर्यादित्यर्थः । अत एव वासिष्ठादौ मनःक्षोभेण प्राणक्षोभवत्, प्राणक्षोभेणापि मनःक्षोभ उक्त इत्यर्थः ।

उपसंहारः

युजूसमाधौ इति धातोर्निष्पन्नस्य योगशब्दस्य समाधि इत्यप्यर्थः समुदितं पतञ्जलिना इति निश्प्रचम् । समाधिरेव परमप्राप्तिः, तत्प्राप्त्यै अनेके उपायाः शास्त्रे सन्निगदिताः वर्तन्ते । तत्र समाधिः अङ्गी, तत्प्राप्तिं प्रति ये समुद्दिष्टास्सन्ति ते सर्वेऽपि अङ्गाः इति । समाधिसिद्धिस्तु संयोगाभावहेतुभूतविवेकख्यात्या इति विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः[७], तस्य सप्तधाप्रान्तभूमिः प्रज्ञा[८] इत्याभ्यां सूत्राभ्यां विस्तृतं साधनपादे, तथाभूतस्य विवेकख्याते आविर्भावः योगाङ्गानुष्ठानादेव इति उत्तरेण सूत्रेण निर्दिष्टं – योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेकख्यातेः[९] इति । कानि तानि योगाङ्गानि इत्यपेक्षायामाह – यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणी-ध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि[१०] इति सूत्रितम् । तेष्वपि योगाङ्गेषु कानिचित्समाधेः साक्षादुपकारकत्वेनान्तरङ्गानि, कानिचित्प्रतिपक्षभूतहिंसादिवितर्कोन्मूलनद्वारेण समाधिमुपकुर्वन्ति – यथा यमनियमादीनि, तत्रासनादीनामुत्तरोत्तर-मुपकारकत्वं यथा सत्यासनस्थैर्ये प्राणायामस्थैर्यम् इति तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः[११] इति सूत्रे व्याख्याततत्वात्, अतः उक्तेष्वष्टस्वङ्गेषु साक्षात्-प्रतिपक्ष-उपकारकत्वरूपभेदाः अनुष्ठानविषये सन्ति इति ज्ञायते । तेषु अयं प्राणायामः योगप्राप्तिं प्रति अत्युत्तमाङ्गत्वेन प्रतिपादितत्वात् तत्कथमनुष्ठेयमिति शोधपत्रेऽस्मिन् यथामति प्रतिपादितं वर्तते । प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते इतिवत्, यद्येकेन जीवेन पतञ्जल्युक्तप्रकारेण प्राणायामस्यानुष्ठानं समनुष्ठीयते चेत्, तर्हि तेन नूनं समाधिरूपप्रयोजनं सम्प्राप्यते इत्यत्र नास्ति संशीतिलेशः ।

-----

६. तत्रैव, २.५३, पृ. १११

७. तत्रैव, २.२६, पृ. ८७

८. तत्रैव, २.२७, पृ. ८८

९. तत्रैव, २.२८, पृ. ९०

१०. तत्रैव, २.२९, पृ. ९१

११. तत्रैव, २.४१, पृ. १०६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पातञ्जलयोगशास्त्रप्रक्रिया - पतञ्जलि के योगसूत्रों का विहगावलोकन

शर्मिला बागची*

पतञ्जलि के योगसूत्र योगदर्शन का आधारस्तम्भ हैं । समस्त भारतीय योग-दर्शन पतञ्जलि के १९५ योगसूत्रों पर ही आधारित है क्योकि यह ग्रन्थ योग के सभी सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक सूत्रों का संकलन ग्रन्थ है । पतञ्जलि इन सूत्रों के संकलनकर्ता है प्रणेता नहीं जिन्होने ई.पू. प्राचीन परम्परा से प्रचलित गुरु-शिष्य परम्परा से प्राप्त योग-ज्ञान के सूत्रों को व्यवस्थित कर इस ग्रन्थ में अनुबद्ध किया । ग्रन्थ के प्रथम सूत्र - **अथ योगानुशासनम्** - से सिद्ध होता है कि पतञ्जलि से पहले भी योगशिक्षा विद्यमान थी जिसका अनुशासन (अथवा अनुशंसन) अर्थात् प्रतिपादन/पुनर्वचन वे करने जा रहे है । महाभारत के अनुसार हिरण्यगर्भ योगशास्त्र के आदिवक्ता है[१] । प्रचलित योगपरम्परा पतञ्जलि के योगसूत्रों को ही योगशास्त्र का आरम्भ मानती है । बारहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक यह ग्रन्थ विस्मृतप्राय सा हो गया था । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में स्वामी विवेकानन्द के अथक प्रयासों से[२] यह ग्रन्थ बींसवी शताब्दी में मानो पुनर्जीवित हो उठा ।

योगशास्त्र के प्रणेता पतञ्जलि

योगसूत्र अथवा योगशास्त्र की उपलब्ध सभी पाण्डुलिपियों की पुष्पिकाओं में यह ग्रन्थ पतञ्जलि को सृष्टा के रूप में स्वीकार करता है किन्तु इसके ग्रन्थकार पतञ्जलि नाम के अभिज्ञान में विद्धानों में मतभेद है । महाभाष्यकार पतञ्जलि एवं योगशास्त्रकार पतञ्जलि के एक ही व्यक्ति होने में विद्धान एकमत नहीं है । महाभाष्य का समय ई.पू. दूसरी शताब्दी मानने में विद्धानों में मतभेद है जबकि योगशास्त्र का समय भी सर्वसम्मति से इसी समय के आसपास (मैक्समूलर- २०० ई.पू., वेबर-

---

'स्वाध्याय' - पु. ५९, वर्ष २०२२, पृ. ८७-१०४. ISSN 2250-0391

* प्राच्यविद्यामन्दिर, म.स. विश्वविद्यालय, वडोदरा - ३९०००१, M: 09426947941,
Email: bagchisharmila3@gmail.com

१. सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते ।
हिरण्यगर्भो योगस्य वेत्ता नान्यः पुरातनः ॥ महाभारत, शान्तिपर्व, ३४१/६५
योगशास्त्रं मत्प्रोक्तं ज्ञेयं योगमभीप्सता । याज्ञ ३/४.११०., पातञ्जलयोगसूत्रम्, भोजदेवकृत राजमार्तण्डवृत्तिसमेतम्. पृ. ३

२. दृष्टव्य - पातञ्जलयोगसूत्राणि- Sanskrit Text with English translation & Comm. by Swami Vivekanand. http.//www.hinduonline.co

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१४०-१६० ई.पू., भण्डारकर- १४४-१४६ ई.पू.) होते हुए भी दोनो ग्रन्थों के विषय सर्वथा भिन्न होने के साथ-साथ भाषा, व्याकरण एवं शब्दावली का भेद भी ध्यातव्य है । भोज (११वीं शताब्दी) से पूर्व किसी विद्धान ने दोनो विद्धानों को एक ही व्यक्ति नहीं माना है ।

ग्रन्थ का रचनाकाल प्रथम शताब्दी से लेकर चतुर्थ शताब्दी तक माना जाता है । अभी तक एक निश्चित समय का निर्धारण नहीं हो पाया है किन्तु यह निश्चितरूप से पाँचवी शताब्दी से पहले की रचना है - यह विश्वासपूर्वक कह सकते है ।

ग्रन्थ का स्वरूप

पातञ्जलयोगशास्त्र में १९५ सूत्रों को ४ अध्याय जिन्हे **पाद** कहा गया है - में विभक्त किया गया हैं-

प्रथम पाद - समाधिपाद ५१ सूत्र

द्वितीय पाद - साधनपाद ५५ सूत्र

तृतीय पाद - विभूतिपाद ५५ सूत्र

चतुर्थ पाद - कैवल्यपाद ३४ सूत्र

चतुर्थ पाद के सूत्रो की संख्या में भोज द्विधा रखते है । वे इस पाद में ३३ सूत्र ही स्वीकार करते है क्योंकि इस पाद का सोलहवॉ सूत्र- **न चैकचित्ततन्त्रम्** को भोज भाष्य का एक अंग मानते है जबकि अधिकांशतः इसे एक सूत्र के रूप में स्वीकार करते हैं[३] ।

योगशास्त्र की टीकाएँ

योगशास्त्र की प्राचीनतम टीकाओं में उल्लेखनीय है - वाचस्पति मिश्र (९००-९८० ई.) कृत व्यासभाष्य पर **तत्त्ववैशारदी** प्राचीनतम टीकाओं में सर्वथा प्रामाणिक मानी जाती है । भोजराज कृत **राजमार्तण्ड** (११वीं शताब्दी) बहुत प्रचलित है । विज्ञानभिक्षु कृत (१६वीं शताब्दी) **योगभाष्यवार्तिक** अथवा **योगवार्तिक** (व्यासकृत योगसूत्रों की व्याख्या) जिसमें सांख्य और वेदान्त में समन्वय करने का उनका विशेष प्रयास है । रामानन्द सरस्वती (१६वीं शताब्दी) कृत **योगमणिप्रभा** उल्लेखनीय है । इनके अतिरिक्त भावागणेशकृत **प्रदीपिका**, नागेशकृत दो वृत्तियाँ, नारायणतीर्थकृत **योगचन्द्रिका** एवं **अर्थबोधिनी**, अनन्तदेव कृत **चन्द्रिका**, सदाशिवेन्द्रकृत **योगसुधाकर**, बलदेवमिश्रकृत **योगप्रदीपिका** उल्लेखनीय है[४] ।

---

३. **पातञ्जलयोगसूत्रम्** - भोजदेवकृत राजमार्तण्डवृत्तिसमेतम्, भाषा-टीका सहित. सं.- रामशंकर भट्टाचार्य, हिन्दी व्याख्या - अमलधारी सिंह, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, वाराणसी, लुधियाना, २०१८, ISBN 978-81-217-0312-3, भूमिका, पृ. xx

४. **वही.**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रस्तुत आलेख मे रामशंकर भट्टाचार्य द्वारा संपादित **पातञ्जलयोगशास्त्र** पर भोजकृत राजमार्तण्डटीका का आधार लिया गया है जिसका हिन्दी अनुवाद - अमलधारी सिंह ने किया है ।

ग्रन्थ पातञ्जलयोगशास्त्रप्रक्रिया

अद्यतन अप्रकाशित हस्तलिखितग्रन्थ **पातञ्जलयोगशास्त्रप्रक्रिया** का कर्ता अज्ञात है । यह ग्रन्थ १७५७ शक (१८३५ ई.) में लिपिबद्ध हुआ जिसका लिपिकार कादम्ब रामकृष्ण है । इन्होने अपने नाम व लेखनकाल का उल्लेख ग्रन्थ की पुष्पिका में न करके ग्रन्थ के मुखपृष्ठ पर किया है । प्राच्य-विद्यामन्दिर (ओरियेण्टल इंस्टीट्यूट) बड़ौदा के पाठागार में यह १९२१ ई. (१००वर्ष पूर्व) सम्मिलित हुई । इसका विवरण निम्न प्रकार से है-

ग्रन्थ क्रमांक - ११२१४	शीर्षक - **पातञ्जलयोगशास्त्रप्रक्रिया (सम्पूर्ण)**
लेखन काल - पौष १७५७ शक	पृष्ठ - १४ ग्रन्थ संख्या - ३३२ श्लोक
(१८३५ ईसवीं)	कागजीय पाण्डुलिपि
लेखक - कादम्ब रामकृष्ण	आकार - २२ x ९.५ से.मी.

विषय-वस्तु

ग्रन्थ के अन्त में रचयिता ने कहा है - **पातञ्जले योगशास्त्रे सुबोधार्थं सामान्यतो योगप्रक्रिया लिखिता** अर्थात् पातञ्जलयोगशास्त्र के सुबोधार्थ यह प्रक्रिया लिखी गयी है । शीर्षक के साथ जुड़े प्रक्रिया शब्द से स्पष्ट है कि इस संक्षिप्त ग्रन्थ में कुछ ही मुख्य मुख्य योगसूत्रों की चर्चा की गयी है । यहाँ प्रथम पाद **समाधिपाद** से लेकर तृतीयपाद **विभूतिपाद** तक के कुछ सूत्रों की व्याख्या की गयी है किन्तु चतुर्थपाद **कैवल्यपाद** के **धर्ममेघ समाधि** के उल्लेख के अतिरिक्त अन्य सभी सूत्रों को पूर्णतया छोड़ दिया गया है । संभवतः यह योगी के पूर्णतः आत्मानुभव पर निर्भर करता है तथा मोक्षार्थी ही इसे स्वयं अनुभव कर सकता है । अतएव इनकी गहनता के कारण इन्हे यहाँ व्याख्यायित नहीं किया गया है ।

पाठ्य एक व्याख्यान स्वरूप प्रतीत होता है जो संभवतः कोई गुरु अपने शिष्यों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है क्योकि योगशास्त्र के मूल सूत्रों का कहीं स्पष्ट उल्लेख मिलता है तो कहीं मात्र व्याख्या मिलती है । प्रथम **समाधिपाद** के मात्र १४ सूत्रों की मात्र व्याख्या मिलती है जबकि द्वितीय **साधनपाद** के १७ उल्लेखों में से ६ की व्याख्या ११ का स्पष्ट उद्धरण दिया गया है । तृतीय **विभूतिपाद** के ३६ उल्लेखों में से ३१ सूत्र यथारूप तथा ५ की मात्र व्याख्या प्राप्त होती है ।

अपनी व्याख्या में रचनाकार किसी भी अन्य व्याख्याकार विद्वान के विचारों से प्रभावित नहीं प्रतीत होता है न ही उनका उल्लेख करता है । विशेषकर भोज की व्याख्या का कोई भी प्रभाव यहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहीं दिखाई देता । भाषा अत्यन्त सरल सुबोधगम्य है । लिपिकार द्वारा विशेष दृष्टव्य स्थलों को यहाँ लेख में बोल्ड (मूलप्रति में हिंगोलक द्वारा चिन्हांकित) करके दिखाया गया है । **योगशास्त्र** के मूलसूत्रों को यहाँ पाद और सूत्र संख्या के साथ पाद-टिप्पणी में दर्शाया गया है ।

जिन योगसूत्रों की इस ग्रन्थ में व्याख्या की गयी है वे योगशास्त्र के मुख्य बिन्दु है जिन्हे हर योगार्थी को समझना आवश्यक है । अर्थतः यह योगशास्त्र का विहगावलोकन ही है ।

पातञ्जलयोगशास्त्रप्रक्रिया

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ **योगशास्त्रप्रक्रिया** । 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'[५] ।

'प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतय'[६] इति निरोद्धव्याश्चित्तवृत्तयः पञ्च । आसां निरोधो योगः । स **द्विविधः** । संप्रज्ञानोऽसंप्रज्ञानश्च । तत्र ध्येयातिरिक्तवृत्तिनिरोधः संप्रज्ञातः । ध्येयवस्तुगताशेषसाक्षात्कारहेतुः सर्ववृत्तिनिरोधस्त्वसंप्रज्ञातः । संस्कारमात्रशेषं चित्तं तिष्ठति ।

'**संप्रज्ञातः** चतुर्विधः'[७] । वितर्कानुगतो विचारानुगतः आनन्दानुगतोऽस्मितानुगतो इति । संप्रज्ञातस्य क्रमिकं भूमिकाचतुष्टयं वितर्कविचारान्दास्मित । शब्दैरभिधीयते ।

तच्च भूमिकाचतुष्टयं क्रमादेकस्मिन्नेवालम्बने कर्तव्यम् । तद्यथा । यद्विराट् शरीरं चतुर्भुजादिकं वा स्वशरीरं वा घटाधिकं वाधिकृत्य प्रथमं भावना प्रवर्तते । तदालम्बनमुच्यते । तत्रालम्बने प्रथमं स्थूलाकारधारणाध्यानसमाधिर्भियःस्थूलागताशेषविशेषाणां अश्रुतामतानां साक्षात्कारः सवितर्क इत्युच्यते । स्थूलशब्देन भूतेन्द्रियाणि गृह्यते । इति वितर्कः ।

तत्रैवालम्बने स्थूलाकारसाक्षात्कारानन्तरं पञ्चतन्मात्राहंकारमहत्तत्व प्रकृतिरूपसूक्ष्माकारधारणादि त्रयेण यः पूर्ववदशेषविशेषतः क्रमेण तत्तत्साक्षात्कारः **सविचार इत्युच्यते** विचारशब्देन कारणान्युच्यन्ते । ननु सूक्ष्माकारस्यादृष्टजातीयस्य कथं भावना । उच्यते । श्रुतमतप्रकारैरेव भावनाकर्तव्या । ततो योगजधर्मेण श्रुतान्मताशेषसाक्षात्कारः । एवमन्यत्रापि सर्वत्र ज्ञेयमिति विचारः । तत्रैवालम्बने

---

५. **पातञ्जलयोगसूत्रम्** - भोजदेवकृत राजमार्तण्डवृत्तिसमेतम्. भाषा-टीका सहित. सं. - रामशंकर भट्टाचार्य, हिन्दी व्याख्या - अमलधारी सिंह, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, वाराणसी, लुधियाना, २०१८, ISBN 978-81-217-0312-3, प्रथम पाद/१. पृ. ५

६. वही, ६/१, पृ. १३

७. वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुमात् संप्रज्ञातः ॥ १७/१ ॥ पृ. २४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूक्ष्माकार साक्षात्कारानन्तरं तामपि दृष्टिं व्यक्त्वा चतुर्विंशति तत्त्वानुगते सुखरूपपुरूषार्थधारणादित्रयेण यः पूर्ववदशेषविशेषतः सुखाकारः साक्षात्कारः स आनन्दु(दो)च्यते । ननु प्रकृतेस्त्रिगुणात्मकत्वेन सुखदुःखमोहावधि सर्वत्र स्तः ।

तत्किमिति सुखरूपैव भावना उच्यते । सुखरागेणैवात्मदर्शनप्रतिबन्धात्तदेव योगिना तथा साक्षात्कर्तव्यम् । यथा सुखेऽपि दोषदृष्ट्या वैराग्यं भवति सुखस्य दुःखानुबन्धित्वादित्यानन्दः । एवं भमिकाक्रमेण स्थूलसूक्ष्मानन्दानां स्वरूपाणि दोषबहुलानि साक्षात्कृत्य तेभ्यो विरज्य तस्मिन्नेवालम्बने यः कूटस्थ विभुश्चिन्मात्रत्वादिरूपैस्तेभ्यो विवेकत आत्माकारः साक्षात्कारः सोऽस्मितेत्युच्यते । देहादिभिन्नोऽस्मीत्येतावन्मात्राकारत्वात् । आत्मज्ञानान्तरं च ज्ञातव्यं नास्तीत्यतोऽस्मिताचरमभूमिका भवति । **तेनासंप्रज्ञातयोगो** जायतो (ते) ।

अस्मितायाश्च द्वौ विषयौ जीवात्मापरमात्मा च । तत्र चतुर्विंशतितत्त्वविवेकतो जीवात्म भावना पञ्चविंशतितत्त्वविवेकतः परमात्म भावना च । ताभिर्भावनाभिर्योगी त्रिविधो भवति । भौतिकः सांख्य अन्त्याश्रमी च । तत्र भूतभावनावान्भौतिकः । जीवात्मभावनावान्सांख्यः । परमात्मभावनावानंत्याश्रमीति । ननु कथमचेतनेषु अस्मिता सम्भव इति चेन्न । कारणरूपेण जीवेश्वरयोः सर्वत्रानुगमात् । मुक्तात्मनां च विभुत्वेन सर्वत्रानुगमादिति । एते वितर्कादयश्चत्वारोऽपि साक्षात्काराः समापति(त्ति)रिति परिभाषिताः ।

तत्र वितर्कविचारौ प्रत्येकं द्विविधौ । सवितर्कनिर्वितर्कौ वितर्कभेदौ । विचारभेदौ सविचारनिर्विचारौ । भूतेन्द्रियरूपस्थूलसाक्षात्कारो वितर्कः । स चेछ(च्छ)ब्दार्थज्ञानानां विकल्पेन मिश्रितो भवति । तदा सवितर्क इत्युच्यते । स एव विकल्पः । यथा हरिरिति शब्दो हरिरिति ज्ञानमित्येषां त्रयाणां परस्परभेदेप्यभेदभ्रमः 'शब्दार्थज्ञानविकल्परहितः'[८] स एव निर्वितर्कः । **इदमेव परप्रत्यक्षम्** । अविद्यालेशसम्पर्काभावात् इत्युक्तौ वितर्कभेदौ ।

विचारभेदावुच्येते । तन्मात्रादि प्रकृतिपर्यन्तं सूक्ष्मसाक्षात्कारो विचार इत्युक्तः । स यदा स्वविकाराणां देशकालादीनां चानुभवेन मिश्रितो भवति तदा स विचारः । तछू(च्छू)न्यवस्तु निर्विचारः । **सर्वे** चैते संप्रज्ञानभेदाः । सालम्बनयोग इति स 'बीजयोग'[९] इति चोच्यते । ध्येयरूपालं वनयोगात् । वृत्तिबीजसंस्कारोत्पत्तेश्च ।

संप्रज्ञातयोगिनश्चतुर्भूमिकाः । सवितर्कसमापत्तिमान्**प्रथमः** । स प्रथमकल्पिक इत्युच्यते ।

---

८. तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥ ४२/१ ॥ पृ. ६४

९. ता एव सबीजः समाधिः ॥ ४६/१ ॥ पृ. ६९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्वितर्कसमापत्तिमान् **द्वितीयः** । स मधुभूमिकः । 'ऋतम्भरप्रज्ञ'[१०] इत्युच्यते । इयं द्वितीय भूमिका मधुमतीनाम । मधुवत्तृप्तिहेतुना ऋतम्भरप्रज्ञयोगात् । ततश्च क्रमेण निर्विचारसमापत्तिनिछ(श्च)या प्रकृतिपर्यन्तजस्**तृतीयः** । अस्यामेव भूमिकायामानन्दानुगतस्य प्रवेशः । ततश्चास्मितानुगतयोगनिष्पत्ति-पर्यन्तश्**चतुर्थः** । अस्याश्च भूमिकाया **धर्ममेघाख्यसमाधि**ना समाप्तिर्भवति ।

धर्ममेघसमाधिश्च[११] तदोच्यते ।

यदा योगसिद्धिकामनात्यागेन निरन्तरोत्पन्नात्सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिप्रवाहात् स वासनाविद्या निवृत्त्या कृतार्थतायां ख्यातौ दुःखात्मिकायां परं वैराग्यं जायते । ततश्चासंप्रज्ञातयोगो जायते । सर्वज्ञतादिजनकं धर्मं मेहतीति **धर्ममेघ** इति । अस्यामवस्थायां जीवनमुक्त इत्युच्यते । इत्युक्तः संप्रज्ञातयोगः ।

अथासंप्रज्ञातः । स द्विविधः । उपायप्रत्ययो भवप्रत्ययश्च । उपायनुष्ठानादीहैव जन्मनि यो संप्रज्ञातो जायते स उपायप्रत्ययः । उपायश्च 'श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञाः'[१२] । श्रद्धायोगे प्रीतिः । वीर्यं चित्तस्य धारणा । स्मृतिर्ध्यानं **समाधिः** । प्रज्ञा संप्रज्ञानयोगजन्यसाक्षात्कारः, एते क्रमेण परवैराग्यद्वारा असंप्रज्ञातं जनयन्ति । तेषां उपायानामतिशीघ्रतीव्रतरानुष्ठानादासन्नतरोऽसंप्रज्ञातयोगो भवति तत्फलं मोक्षश्च ।

'ईश्वरप्रणिधानस्तु'[१३] उपायानुष्ठानमान्द्ये(?)ऽपि आसन्नतरौ असंप्रज्ञातयोग मोक्षौ भवत ईश्वरप्रसादात् । अतः ईश्वरप्रणिधानं मुख्योपायः । व्याधयादयश्च विक्षेपायोगान्तराया ईश्वरप्रणिधानान्न भवन्तीति । ईश्वरप्रणिधानमत्र परमेश्वरवाचकप्रणवजपः ।

अथ भवप्रत्ययः । प्राग्भवीयसाधनानुष्ठानादौत्पत्तिकः । तत्र विदेहानाम स्थूलदेहनिरपेक्षेण लिङ्गदेहेनाखिलव्यवहारक्षमा हिरण्यगर्भादयः । ये तु प्रकृत्युपासनया प्रकृतिशबलपरमेश्वरोपासनया वा ब्रह्माण्डं भित्वा महत्तत्त्वपर्यन्तावरणानतीत्य प्रकृत्यावरणं गतस्ते प्रकृतिलया ईश्वरकोटय **उच्यन्ते** । संप्रज्ञातयोगस्य तु भवप्रत्ययविशेषो नास्ति । धारणाध्यानसमाधयो हि संप्रज्ञातयोगस्यान्तरङ्गं कारणं तेषां निष्पत्तौ तस्मिन्नेव जन्मन्यवश्यम्भवात् । तद्व्यतिरेकेणा**भावाच्च** ।

---

१०. ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ॥ ४८/१ ॥ पृ. ७०

११. प्रसङ्ख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ॥ २८(२९)/४ ॥ पृ. २८०
भोज कहते है- प्रसङ्ख्यानं यावतां तत्त्वानां यथाक्रमं व्यवस्थितानां परस्परविलक्षणस्वरूपविभावनं, तस्मिन्, सत्यप्यकुसीदस्य फलमलिप्सोः, प्रत्ययान्तराराणामनुदये सर्वप्रकारविवेकख्यातेः परिशेषाद् धर्ममेघः समाधिर्भवति । (चतुर्थपाद- कैवल्य का यही एकमात्र सूत्र इस पाठ्य में यहाँ प्राप्त होता है ।)

१२. श्रद्धावीर्य्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ २०/१ ॥ पृ. ३४

१३. ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ २३/१ ॥ पृ. ३७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

असंप्रज्ञातयोगस्य धारणाध्यानसमाधयो(ऽ)पि बहिरङ्गं तेन भवप्रत्ययरूपो भेदस्तस्यैवेति ज्ञेयः । **स च** द्विविधोऽप्यसंप्रज्ञातो ध्येयभावान्निरालम्बयोग उच्यते । स चाभ्यासक्रमान्नवं नवं संस्कारं जनयति[१४] । येन संस्कारतारतम्येन दिनपक्षादिपर्यन्ता निरोधकालवृद्धिर्भवति । यथा यथा च संस्कारातिशयस्तथा तथा तत्त्वज्ञानपर्यन्ताखिलवृत्तिसंस्कारता नवं भवति । एवं क्रमेण चरमासंप्रज्ञाते सर्वसंस्कार दाहो भवति । ततश्च प्रारब्धमपि कर्म न स्वविपाकसमाप्तौ समर्था भोगसंस्कार्यसहकार्यभावात् । **जन्मायुर्भोगरूपे** कर्माशयविपाके प्राम्भवीय भोगसंस्कारः सहकारीति **सिद्धान्तः** । ततश्चरिताधिकारं चित्ते प्रारब्धकर्मणानिरोधसंस्कारैश्च सह नश्यति । स्वकारणे लीयत इत्यर्थः । इयमेव चित्तस्य महानिद्रा । पुरुषस्य कैवल्यं दुःखात्मिकाखिलदृश्यवियोगः । चित्तद्वारैव पुरुषस्य दृश्यरूपद्वितीयसम्बन्धात् ।

द्विविधाचात्र मोक्षप्रक्रिया । तत्त्वज्ञानं योगश्च । उभयमपि व्यापारमोहात्स्वातन्त्र्येण मोक्षकारणम् । तत्र तत्त्वज्ञानं नाम सत्त्वपुरुषयोरन्यताख्यातिर्विवेकसाक्षात्कारः संप्रज्ञातफलभूतः । विवेकसाक्षात्कारे जाते प्रारब्धकर्मपर्यन्तं तिष्ठति तत्समाप्तौ सत्यां पूर्ववासनाभिः सह चित्तं **नश्यति** । **अस्मिन्** पक्षे संप्रज्ञातयोग एव **समाप्तिः** । असंप्रज्ञातयोगस्तु नापेक्ष्यते । असंप्रज्ञातपक्षे तु प्रारब्धकर्मणामप्यपरिसमाप्तौ सर्ववासनाक्षयादेव सद्यो मोक्ष इत्युक्तमेव । **इत्युक्तो संप्रज्ञातयोगः** । योगस्वरूपमुक्तम् ।

इदानीं योगसाधनान्युच्यन्ते (पातञ्जलयोगसूत्रे द्वितीयः पादः) ।

तानि चाधिकारिभेदाद्भिद्यन्ते । त्रेधा चाधिकारिणः । मन्दमध्योत्तमाः । आरुरुक्षुं युंजानयोगरुढा उत्तमाः । **यथा** जडभरतादयः । **मध्यमा**धिकारिणो युंजानवानप्रस्थादयः । मंदास्तु योगारुरुक्षवो गृहस्थादयः ।

तत्रोत्तमाधिकारिणो योगसाधनान्युच्यन्ते । तेषां निष्पत्तावभ्यासवैराग्ये मुख्यं कारणम् । न तु युंजानवत्क्रियायोगः । न च योगारुढवद्यमादीनि पञ्चवद्बिरङ्गान्यावश्यकानि । तत्राभ्यासो नाम चित्तस्य स्थितौ **यत्नः**[१५] । स्थितिश्च समाधेः निश्चलैकाग्रता दारारूपा । स्थितिनिमित्तं यत्नश्च ध्येयादन्यत्र गच्छतः चित्तस्य पुनः पुनराकर्षणम् ।

वैराग्यं[१६] च विषयेष्वलं बुद्धिः । **तच्चद्विविधं परमपरं** च । अर्जनरक्षणाद्यनन्तदोषदर्शननिमित्तं ऐहिकामुष्मिकेषु वैतृष्णयमपरं वैराग्यम् । इदमपि चतुर्विधम् । साधनस्य दोषदर्शनाभ्यासो **यतमान**संज्ञानाम प्रथमभूमिका । ततो जितान्येतानीन्द्रियाणि एतानि जेतव्यानीति व्यतिरेकावधारणावस्थाद्वितीया(य)भूमिका **व्यतिरेक**संज्ञानाम । ततश्च बाह्येन्द्रियविषयेषु रूपरागादिक्षये सति एकस्मिन्नेव मनसि मानावमानविषयक

---

१४. तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥ ५०/१ ॥ पृ. ७३

१५. तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १३/१ ॥ पृ. २१

१६. दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥ १५/१ ॥ पृ. २२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रागद्वेषनिरसनं **एकेन्द्रियसंज्ञानाम** तृतीयभूमिका । चतुर्थभूमिका **वशीकारसंज्ञानाम** सा यस्यां विषयाणां मानावमानादेः प्राप्तावपि क्षोभो न भवति । तत्र वशीकार संज्ञानाम चतुर्थभूमिका । उत्तमाधिकारिणा कर्तव्या । अधरभूमिकात्रयस्य युंजानावस्थायां सिद्धत्वात् ।

अथ परं वैराग्यम् ।।

आत्मानात्मविवेकसाक्षात्कारादनात्मत्वदृष्ट्याज्ञानफलस्य चाविद्यानिवृत्तेः सिध्याज्ञानपर्यन्तेषु सर्वदृश्येषु पूर्वोत्पन्नदोषदर्शने नैव दोषान्तरदर्शननिरपेक्षेणालं बुद्धिर्नाम परं वैराग्यम् । एतदनन्तरमेव असंप्रज्ञातयोगमोक्षयोः सम्भवादस्य परत्वम् । वैराग्येण विषयवृत्तः कुण्ठी क्रियते । ध्येयगोचराभ्यासेन च ध्येयाकारवृत्तिप्रवाह एकाग्रतालक्षणो दृढीक्रियत(ते) इत्युभयाधीनश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।

इदानीमभ्यासस्यान्तरङ्गसाधनं परिकर्मोच्यते[१७] ।

परिकर्मेति चित्तस्थितिहेतुश्चित्तसंस्कारः तत्र चित्तप्रसाद एकं परिकर्म । **तस्योपायौ द्वौ** । मैत्र्यादि चतुष्टयं प्राणायामश्च । प्राणायामो वक्ष्यते ।

मैत्र्यादि चतुष्टयं तु सुखितेषु मैत्री दुःखितेषु करुणा पुण्यशीलेषु मुदिता प्रीतिरित्यर्थः[१८] । पापशीलेषूपेक्षा । एतदभ्यासे रागद्वेषादिरूपचित्तमलनिवृत्तिः ।

एतदनन्तरं विषयवती[१९] प्रवृत्तिः । तत्र विशेषः । नासाग्रे चित्तयाल्पेनैव कालेन दिव्यगन्धसंवित् सा गन्धवती एवं जिह्वाग्रे रससंवित्तालुनिरूप संविज्जिह्वाया मध्ये स्पर्श संविज्जिह्वामूले शब्दसंवित् । एतेन चन्द्रादित्यग्रहमणिप्रदीपरश्म्यादिषु वृत्तिरुत्पन्ना विषयवत्येव ज्ञेया । इयं विषयवतीप्रवृत्तिर्योगश्रद्धातिशय द्वारा समाधिं प्रज्ञां जनयति तृतीयं **परिकर्म** ।

विशोकाज्योतिष्मती प्रवृत्तिः[२०] । **सा द्वेधा स्मृतिषूक्ता** । ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि मत्किंचित्कुरुते नरः तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया । नाहं **कर्ता सर्वमेतद् ब्रह्मैव** कुरुते तथा । एतद् ब्रह्मार्पणं प्रोक्तमृषिभिस्त्वदर्शिभिरित्यादिना । कर्मफलार्पणं च कर्मफलानां परमेश्वरो भोक्तेति चिंतनम्[२१] । तस्य च क्रियायोगस्य द्विविधो योगः **फलं क्लेशतनूकरणं**[२२] च ।

---

१७. चित्तसंस्कारापादकपरिकर्मकथनमुपायान्तरमाह । वही. भोजव्याख्या, पृ. ५२

१८. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनाश्चित्तप्रसादनम् ॥ ३३/१ ॥ पृ. ५२

१९. विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना स्थितिनिबन्धिनी ॥३५/१ ॥ पृ. ५६

२०. विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६/१ ॥ पृ. ५८

२१. तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणधानानि क्रियायोगः ॥ १/२ ॥ पृ. ७७

२२. समाधि भावनार्थः क्लेशतनुकरणार्थश्च ॥ २/२ ॥ पृ. ७८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्र क्लेशाः पञ्च । 'अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः[२३] एते दुःखनिदानत्वात्क्लेशाः उच्यन्ते । अनित्याशुचिदुःखानात्मसु 'नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या[२४] । आत्मानात्मनोर्धर्मतः स्वभावतश्चात्यन्तम-भेदभ्रमोऽस्मिता । रागद्वेषौ प्रसिद्धौ । अभिनिवेशस्त्वपरिहार्य मरणादि भयम् । एषामुत्तरोत्तरेषु पूर्वपूर्वं कारणम् । अतोऽविद्या सर्वक्लेशानां मूलत्वात्क्षेत्रम् । अविद्यासद्भावे एवान्ये क्लेश भवन्ति । अविद्यानाशे च नश्यन्ति । एते क्लेषा व्याध्यादिवच्चित्तविक्षेपकत्वाद्योगविरोधिनः । क्लेशानां तनुत्वं विवेकख्यातिप्रतिबन्धक्षमता ।

तच्च क्रियायोगस्य फलम् । क्रियायोगेन हि चित्तशुद्धिः क्रियते । ततश्चाधर्माख्यकरणता न वादाविद्यादीनामपि तनुता भवति । किं च-यदा क्रियायोगेन क्लेशानामविद्यादीनां तनुता भवति तदा अन्तरान्तरा क्लेशैरप्रतिबद्धे विवेकख्यातिप्रवाहः साक्षात्कारपर्यवसायी भवति । साक्षात्कारे जाते अविद्यादिक्लेशाः प्रसङ्ख्यानाख्येन विवेकसाक्षात्कारिणो दग्धबीजभावावस्थाः प्ररोहसमर्था न भवति । इयमेव जीवन्मुक्तावस्था । ततश्च प्रारब्धसमाप्तौ चित्ते प्रलीयमाने दग्धबीजभावा अपि ते अनागतावस्था सूक्ष्मक्लेशा अत्यन्तं प्रलीयन्ते । तस्मिन्निवृत्तौ पुनर्जन्मकारणाभावात्पुरुषः पुनरिदं दुःखं न भुङ्क्ते इति परमुक्तिविदेहकैवलाख्या भवतीति मध्यमाधिकारिणो योगसाधनमुक्तम् । अथ मन्दाधिकारिणो योगसाधनमुक्तम् ।

अथ मन्दाधिकारिणो गृहस्थादेर्योगसाधनान्युच्यन्ते ।

तानि च - 'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधय इत्यष्टौ योगाङ्गानि च[२५] ।

तत्र 'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यपरिग्रहायमाः[२६] । सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानां अनभिद्रोहोऽहिंसा । अन्ये यमनियमाहिंसा सिध्यर्थमेवोच्यन्ते इति ज्ञेयम् । सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे । किं च सर्वभूतानुपघातकं यद्यथार्थं तत्सत्यम् । स्तेयमशास्त्रपूर्वकं परतो द्रव्यस्वीकरणं तद्वर्जनमस्तेयम् । ब्रह्मचर्यं सर्वथोपस्थसंयमः । विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसंगहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रहः ।

'एते च यमा जातिदेशकालसंकेतानवच्छिन्नाः सार्वभौम(मा) महाव्रतमित्युच्यते[२७] । शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः । **शौचं बाह्याभ्यन्तरं** च । संतोषः सनिहितसाधनादधिकस्यानुपादानम् । तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि मध्यमाधिकारि योगसाधननिरूपणे क्रियायोगत्वेन व्याख्यातानि । ईश्वरप्रणिधानमत्रेश्वरपूजामात्रोपलक्षणं **तद्भक्तिरित्युच्यते** ।

---

२३. अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥ ३/२ ॥ पृ. ७९

२४. वही. ५/२, पृ. ८४ २५. वही. २९/२, पृ. ११७ २६. वही. ३०/२, पृ. ११८

२७. वही. ३१/२, पृ. ११९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अहिंसादि सिद्धिलक्षणान्युच्यन्ते ।

'अहिंसाप्रतिष्ठायाम्'[२८] अमोघास्य वाग्भवति । तद्यथा । त्वं धार्मिको भूया इत्युक्ते स धार्मिको भवति । स्वर्गं प्राप्नुहीति स्वर्गं प्राप्नोति । अस्तेयप्रतिष्ठायां जन्मकथं भावसम्बन्धोऽस्य भवति । कोऽहमासन् को भविष्यामिति शोचात्स्वाङ्ग जुगुप्सापरैरसंसर्गः ।

किं च -

'सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्रयैन्द्रियजयात्मदर्शनयोगत्वानि'[२९] भवन्ति । सत्त्वशुद्ध्यादीनि क्रमादेव शौचस्थैर्याद्भवन्ति । संतोषादनुत्तम सुखलाभः । 'तपसः कार्योनीन्द्रयशुद्धिर्दूराध्वश्रवणमननादीति'[३०] । 'स्वाध्यायादिष्टदेवताप्रयोगः'[३१] । देवताऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति कार्ये चास्य **वर्तन्ते** ।

'समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्'[३२] । ईश्वरार्पित सर्वभावस्य समाधिसिद्धिर्यथा सर्वमीप्सितमवितथं जानामि ।

'स्थिरसुखमासनम्'[३३] । प्रयत्नो परमात्सिध्यासनं येनाङ्गकम्पो भवति अनन्ते नागे चासमापन्नं चित्तमासनं निष्पादयति । **आसनभेदाः पद्मासनादयः** ।

किं च -

यावन्त्यो जीवजातयस्तावन्त्यासनानि । आसनजयाच्छितोष्णादिद्वंद्वानभिघातः[३४] ।

'आसनसिद्धे श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः'[३५] । 'स तु बाह्याभ्यन्तरस्तम्भ-वृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः'[३६] । यत्र प्रश्वासपूर्वो गत्यभावः स बाह्यः । यत्र श्वासपूर्वकोऽगत्यभावः। आभ्यन्तरः । तृतीयस्तम्भवृत्तिः तत्रोभयाभावः सकृतप्रयत्नाद्भवति । त्रयोऽप्येतै देशे न परिदृष्टा इयानस्य विषयो देश इति ।

स च देश ईषीक तूलादिकम्पानुमेयः । कालेन परिदृष्टा यथा । एतावत्क्षणं रेचकः कर्तव्यः एतावत्क्षणं पूरकः एतावत्क्षणं कुम्भक इत्येवङ्गीकृतकालैरवधृतः ।

---

२८. वही. ३५/२, पृ. १३१
२९. वही. ४१/२, पृ. १३१
३०. कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥ ४३/२, पृ. १३३
३१. वही. ४४/२, पृ. १३४
३२. वही. ४५/२, पृ. १३५
३३. वही. ४६/२, पृ. १३६
३४. ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥ ४८/२, पृ. १३८
३५. वही. ४९/२, पृ. १३८
३६. वही. ५०/२, पृ. १३९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संख्याभिः परिदृष्टो यथा । मात्राणां द्वादशसंख्याभिरवधृत इति । अयं च दीर्घसूक्ष्मसंज्ञको भवति । एवमभ्यासक्रमेण यदा देशकालसंख्याभिरपरिछिन्नो रेचकपूरकौ विनैव माससंवत्सरादि स्थायी बहुदेशव्यापी कुम्भको भवति । स केवल कुम्भकश्चतुर्थः प्राणायामः तस्मिन् सति आकाशगमनादि सिद्धयो भवति ।

स प्राणयामो द्विविधः । अगर्भः सगर्भश्च । प्रणवादिजपध्यानसहितः सगर्भः । तद्रहितोऽगर्भः । तयोः सगर्भः श्रेष्ठः ।

प्रत्याहार इन्द्रियाणां वशीकरणम्[३७] । यमादीनि प्रत्याहाराङ्गतानि देहप्राणेन्द्रियाणां निग्रहरूपाणि । तत इमानि बहिरङ्गानि ।

अथान्तरङ्गचित्तस्य धारणादित्रयमुच्यते । 'देशसम्बन्धश्चित्तस्य धारणा[३८] । यत्र देशे ध्येयं चिन्तनीयं तत्र चित्तस्य स्थिरीकरणं धारणेत्यर्थः । देशो हृत्पुण्डरीकनाभिमूर्धमस्तकादिः । तत्र देशे ध्येयाकारवृत्तिप्रवाहो वृत्यन्तराव्यवहितोध्यानम् । तदेव ध्यानं यदा ध्येयावेशवशात्ध्यान ध्येयध्यातृभावदृष्टिशून्यं सिध्येयमात्राकारं भवति तदा **समाधिरुच्यते** ।

ध्यानसमाध्योरयमन्योपि विशेषः । अत्यन्तोत्कृष्टविषयैरिन्द्रियसन्निकर्षे ध्यानस्य भङ्गो भवति । न तु समाधेरिति । एतद्धारणादि त्रयमेकस्मिन्नवलम्बने वर्तमानं संयम इत्युच्यते । तस्य च संयमस्य स्थूलादि क्रमेण विविक्त परमात्मपर्यन्तभूमिषु विनियोगः कार्यः[३९] ।

पूर्व पूर्व भूमिकाजयं विनोत्तरभूमिकारोहोजायस्तेन पूर्वभूमिकासु कालक्षेपो न कर्तव्यः । तेन प्रकृष्टाधिकारिणां परमात्मभावनैव प्रथमं कर्तव्यानत्वन्यत्रकालक्षेपः कार्यः । अन्यैरपि केवलमुमुक्षुभिः सत्त्वपुरुषान्यतामात्रे संयमः कर्तव्यः तत्र द्विभूतिकामैस्तु तत्तत्संयमाः कार्याः । विभूतयश्च संयमः सिद्धिसूचिकाः ।

तत्र - 'परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानं सर्वपदार्थेषु धर्मलक्षणावस्थाख्यं परिणामत्रयम्[४०] । **धर्मपरिणामो यथा** पृथिव्या घटादि धर्मपरिणामः । तस्य च वर्तमानातीतत्वादिकं **लक्षणपरिणामः । तस्य च** नवपुराणत्वादिकम**वस्थापरिणामः** । यत्र क्वचिद्वस्तुन्यस्य धर्मिणोऽयं धर्मपरिणामः । **तस्य चायं लक्षणपरिणामः** इत्येवं लक्षणसम्पन्नदत्तत्साक्षात्कारो जायते तदा ततोऽन्येषामपि अतीतानागतज्ञानं

---

३७. स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५४/२ ॥ पृ. १४४

३८. वही. १/३, पृ. १४८

३९. तस्य भूमिषु विनियोगः - १६/३, पृ. १५३

४०. वही. १६/३, पृ. १६६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रणिधानलेशादेव **भवतीत्यर्थः** । अन्यविषयकः संयमात्पदार्थान्तरं साक्षात्कारो योगजधर्मबलाद्भवति तपोजन्यसिद्धिवत् ।

'शब्दार्थप्रत्ययमानामितरेतरध्यासात् संकरस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूततनुज्ञानम्'[४१] । गौरित्यादि शब्दो गौरित्यादिरर्थो गौरित्यादिप्रत्ययः तेषां संकेतरूपाध्यासात् संकरो विवेकाग्रहणं भवति । वस्तुतस्तु तेषां भेद एव । तस्मिन्भेदे संयमात्साक्षात्कृते सर्वभूतानां कृतानि ज्ञायन्ते । अयं काकादिरिममर्थ अनेन शब्देन कथयतीति । संयमानां साक्षात्कारपर्यन्तत्वात् । सर्वत्र कारणत्वं साक्षात्कारद्वारा बोध्यम् ।

संस्कार संयमात्पूर्वपरजातिज्ञानम्[४२] । **संस्कारा द्विविधाः** । स्मृतिक्लेशहेतवो वासनारूपाहेतवो धर्माधर्मरूपाः । ते प्राक्तनजन्मसम्भवाः चित्तधर्माः ते साक्षात्क्रियमाणा देशकालनिमित्तानुभवपूर्वकं ज्ञायन्ते । अतस्तत्तज्जन्मज्ञानं प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानं स्वकीयचित्तवृत्तेः साक्षात्कारे अन्यचित्तस्यापि संकल्पमात्रेण सामान्यतो रक्तविरक्ता ज्ञानं भवति ।

'कायरूपसंयमत्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुः प्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्ध्यानम्'[४३] । **स्वशरीरस्य** रूपे अशेषविशेषतः साक्षात्कृते सति तदुत्तरं संकल्पमात्रेण स्वकीयरूपस्य परचक्षुः सन्निकर्षयोग्यतां प्रतिबध्नाति । ततश्चक्षुरिन्द्रियावयवा सन्निकर्षे अन्तर्ध्यानमुत्पद्यते दिवान्धेनैव केनापि न दृश्यते । एवं स्वशरीरस्य शब्दस्पर्शरसगन्धसंयमात् तत्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भः । सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्मतत्संयमादपरान्तज्ञानमुपरिष्टेभ्यो वा ।

आयुर्विपाकहेतु कर्मद्विविधम् । सोपक्रमं निरुपक्रमं च । **सोपक्रमं** तीव्रवेगफलदातृ । यथा कलिकालप्रजासु वाल्य(बाल्य)यौवनवार्धक्याद्यवस्थानां झटित्येकवारम्भकम् । निरुपक्रमं च मंदवेगेन फलदातृ । यथा सत्ययुगादि प्रजासु विलम्बेन वा(बा)ल्यद्यवस्थारम्भः । तत्र सोपक्रमसाक्षात्काराच्छीघ्रमरणस्य ज्ञानम् । निरुपक्रमसाक्षात्काराद्विलम्बितमरणस्य ज्ञानं अरिष्टेभ्यो वा[४४] ।

त्रिविधमरिष्टम् । आध्यात्मिकाधिभौतिकमाधिदैविकम् । पिहितकर्णान्तर्घोषं न शृणोति नेक्षेवष्टब्धे ज्योतिर्न पश्यति । आधिभौतिकं यमभटान्पश्यति । पितृतीतानागतान्वा । **आधिदैविकं** स्वर्गसिद्धान्वा पश्यति । विपरीतं वा संवर्ततोऽपि जानात्युपस्थितमरणमिति ।

---

४१. वही. १७/३, पृ. १६८

४२. संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानाम् ॥ १८/३, पृ. १७१

४३. वही. २१/३, पृ. १७५

४४. सोपक्रमं निरुपमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥ २२/३ ॥ पृ. १७५

४५. वही. २३/३, पृ. १७९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'मैत्र्यादिषु बलानि'[४५] । मैत्रीकरुणमुदिता सुसंयमान्मैत्र्यादि बलानि लभते । मैत्र्यादि बलान्यवन्ध्या वीर्याणि जायन्ते । पापशीलेषूपेक्षा न तु भावना ततस्तस्यां नास्ति समाधिः । अनुक्तत्वाच्च । 'बलेषु हस्तिबलादीनि'[४६] । यस्य बलसंयमः तद्बलो भवति । प्रवृत्त्या लोकन्यायात्सक्ष्मव्यवहित विप्रकृष्टज्ञानम् । ज्योतिष्मतीबुद्धिपुरुषान्यतरसाक्षात्काररूपिणी प्रवृत्तिर्या पूर्वमुक्ता तस्या अयमालोकः तत्कालः सत्त्वप्रकाशः तत्प्रतिसंधानपूर्वकं चक्षुर्निक्षेपमात्रेण घटदर्शनवत्सूक्ष्मादि साक्षात्कारो भवति ।

'भुवनज्ञानं सूर्यसंयमात्'[४७] । ब्रह्मणो लोकद्वारं सूर्यान्तश्छिद्रम् । तस्मिन्संयमेन साक्षात्कृते चतुर्दशभुवनसंस्थानज्ञानम् । 'चन्द्रे संयमात्ताराव्यूहज्ञानम्'[४८] । ताराव्यूहज्ञाने ध्रुवे संयमं कृत्वा ताराणां गतिं विजानीयात् । ऊर्ध्वविमानेषु आदित्यादिरथेषु कृतः साक्षात्कारो येन स तानि विमानानि रथान् जानीयात् ।

'नाभिचक्रे कायव्यूहं ज्ञानम्'[४९] । शरीरमध्यवर्तिनाभिकन्दरूपं नाडीचक्रं कदलीमूलवदादावुत्पन्नम् । यतः शाखापल्लवादिवच्छिरः पादादिकेमवयवजातमूर्ध्वमधश्चाविर्भवति । तस्मिन्नाभिचक्रे संयमात्साक्षात्कृते कायस्थं पादव्यूहं वा पित्तत्वगसृगादिकं साक्षात्क्रियत (ते) इत्यर्थः । 'कण्ठकूपेक्षुत्पिपासानिवृत्तिः'[५०] । जिह्वाधः स्थि(तं) तंतोर्मूलादारभ्योरः पर्यन्तं छिद्रं कण्ठकूपस्तस्मिन्साक्षात्कृते क्षुत्पिपासानिवृत्ति सिद्धिर्भवति । 'कूर्मनाड्यां स्थैर्यं'[५१] कुण्डलितसर्पवदवस्थितं कूर्माकारं हृदयपुण्डरीकाख्यं नाडीचक्रं तत्र कृतसंयमो योगी स्थिरां चित्तवृत्तिं लभते । 'मूर्धज्योतिषिसिद्धदर्शनम्'[५२] । शिरः कपालमध्ये तच्छिद्रं तस्यान्तः प्रकाशं ज्योतिरस्ति तत्र संयमात्सिद्धानां द्यावापृथिव्यौरन्तश्चारिणां दर्शनम् । 'प्रतिभाद्वारा सर्वं'[५३] प्रातिभं नाम तारकाख्यं विवेकजं ज्ञानं सूर्यतुल्यमग्रे वक्ष्यते । तेनैव योगी अतीतानागतादि सिद्धिपर्यन्तं सर्वं जानाति विनापि पूर्वोक्तैः संयमैः । एता संयमस्य क्षुद्रसिद्धय उक्ताः ।

इदानीं संयमस्य सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिरूपां मुख्यां सिद्धिं वक्तुं तत्संयमहेतु भूतायाश्चित्तसंविदः कारणमुच्यते ।

'हृदये चित्तसंवित्'[५४] । यदिदं शरीरि(?)दहरं सगर्तं पुण्डरीकाकारं ब्रह्मणो वेश्मतत्रान्तःकरणं विज्ञानवृत्तिकं ब्रह्मणः सिंहासनकल्पं तिष्ठति । अतस्तस्मिन्हृदयाख्ये ब्रह्मणो वेश्मनि संयमाच्चित्तसाक्षात्कारो भवति । तदुच्यते ।

'सत्त्वपुरुषयोरत्यन्ता संकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगपरार्थात्स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम्'[५५] ।

---

४६. वही. २४/३, पृ. १७९
४७. वही. २६/३, पृ. १८१
४८. वही. २७/३, पृ. १८२
४९. वही. २९/३, पृ. १८३
५०. वही. २७/३, पृ. १८२
५१. वही. ३१/३, पृ. १८४
५२. वही. ३२/३, पृ. १८६
५३. वही. ३३/३, पृ. १८७
५४. वही. ३४/३, पृ. १८८
५५. वही. ३५/३, पृ. १८८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बुद्धिपुरुषयोरत्यन्तविधर्मिणोः प्रत्ययाद्व्यविवेको भोगशब्दार्थः । तयोः प्रत्ययोः परार्थाद्विविवेकेन स्वार्थे प्रत्यये संयमात्साक्षात्कृते सति स्वमेवपूर्णत्वाद्यशेषविशेषैः पुरुषस्य साक्षात्कारो भवति । **अयमर्थः** । परार्थप्रत्ययबुद्धेः शब्दाद्याकारवृत्तिः स्वार्थः **प्रत्ययः** । पुरुषबुद्धिवृत्ति प्रतिबिम्बावछिन्नश्चैतन्यांश सुखाद्यात्मक शब्दाद्यनुभवनामा । **अतो** बुद्धिप्रत्ययपुरुषप्रत्ययौ मिन्नौ तयोश्चैवमविवेकग्रहो भवति । यतो बुद्ध्यापुरुषे प्रतिबिम्बमर्पितम् । ततो जपास्फटिकयोरिव धर्मसंकरापत्तेरविवेको भवति । **एवं** अविवेकापन्न उभयात्मको भोगप्रत्ययः सत्त्वस्यांशः परार्थत्वात् परप्रयोजनत्वाद् अदृश्यः । **यस्तु** तस्मात्परार्थादन्यः स्वार्थः परस्य बुद्ध्यादेरदृश्यः । **चैतन्यमात्रात्मकः** पौरुषांशो भोगाख्यः प्रत्ययः तयोरुभयोर्भोगाख्ययोः प्रत्ययोर्विवेके समं साक्षात्कृते सति अपरिछिन्न पुरुषसाक्षात्कारो भवति । **यथा** स्वसंयमसाक्षात्कृते सति प्रतिबिम्बघटाकारबु-द्धिवृत्तिदर्शनमेव पुरुषस्य घटदर्शनम् । तथा स्वप्रतिबिम्बित स्वाकारबुद्धिवृत्तिदर्शनमेव पुरुषज्ञानम् । एतेन पुरुषस्य ज्ञातृज्ञेयत्वमविरुद्धम् । **आत्मवृत्यवछिन्नस्य** ज्ञातृत्वं केवलस्य ज्ञेयत्वमिति । एवं स्वार्थप्रत्यय संयमेन पुरुषसाक्षात्कारे जाते सति तल्लिङ्गरूपाणि विवेकजज्ञानस्य च पूर्वलक्षणानि प्रतिभाद्याः सिद्धयो भवन्ति । ताश्च पुरुषैकाग्रता परिपंथित्वे । नासंप्रज्ञातयोगस्य विघ्नभूताः कथ्यन्ते ।

'**प्रातिभ**श्रावणवेदनादर्शा स्वादवार्ता जायन्ते'[५६] । ततः पुरुषसाक्षात्कारान्मनः प्रभृतीनामिन्द्रियाणां शक्तिविशेषाः प्रतिभादयोः जायन्ते । **यतो** व्यवहितादि ज्ञानं भवति । **उपदेशादि** निरपेक्षं सूक्ष्मादीनां मानसं यथार्थज्ञानम् । प्रतिभासामर्थ्य प्रातिभा एवं श्रावणादि । तथाविधं श्रवणसामर्थ्यं श्रावणम् । **त्वक्**सामर्थ्यं वेदनम् । **चक्षुः** सामर्थ्यमादर्शः । रसनासामर्थ्यमास्वादः । **घ्राण**सामर्थ्यं वार्ता । **एतास्तु कामना विनापि** जायन्ते । तासूपेक्षया पुरुषदर्शनाभ्यास एव कार्यः । **तदुच्यते-**

'ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः'[५७] । ते प्रतिभादयः समाधिनिष्पत्तावसंप्रज्ञातरूपायामुपसर्गा अन्तरायाः । व्युत्थाने संप्रज्ञातयोगरूपे सिद्धयः उच्यन्ते । एवं ज्ञानादिरूपाः सिद्धय उक्ताः । क्रियारूपास्तूच्यन्ते ।

'**बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः**'[५८] चञ्चलत्वादेकत्रानवस्थिस्य चित्तस्य शरीरे कर्मवशाद्याप्रतिष्ठाज्ञानहेतुः सम्बन्धविशेषः **सम्बन्ध इत्यर्थः** । **तस्य कर्मणः** शैथिल्यं दृढबन्धना क्षमता सा समाधि सामान्यबलाद्भवति । अनया नाड्या एवं प्रकारेण चित्तं शरीरे प्रविशति निर्गच्छति चेत्यादि विशेषैश्चित्तगतिसाक्षात्कारः प्रचारसंवेदनं तदपि समाधि सामान्यादेव भवति । एवं च कर्मनिमित्तकस्य चित्तनिर्गमप्रतिबन्धक संयोगविशेषस्य क्षयाच्चित्तप्रचारसंवेदनाच्च योगी परशरीरे निक्षिपति । निक्षिप्तं चित्तं चेन्द्रियाण्युत्पतन्ति ।

---

५६. वही. ३६/३, पृ. १९०　५७. वही. ३७/३, पृ. १९२　५८. वही. ३८/३, पृ. १९३

५९. वही. ३९/३, पृ. १९५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च[५९] । **समस्त करणवृत्तिविशेषः प्राणः** स पञ्चविधः । प्राणापानव्यानोदानसमानभेदात् । **तत्र** प्राणो मुखनासिकागतिराहृदयवृत्तिः । **अपानः** आपादतलवृत्तिः । **उदान** आशिरोवृत्तिः । व्यापी **व्यानः** । अथोदानवायौ संयमादन्य संयमद्वोदानजयाकंटकादीनामुपरि संचरणेऽपि विकारहेतुः संयोगविशेषो न भवति ।

'समान जयाज्वलनम्[६०] । **समानजये सति** सतीवत्स्वशरीरं देहजेनाग्निना दहति ।

'श्रोत्राकाशयोः सम्बन्ध संयमाद्दिव्यं श्रोत्रम्[६१] । सर्वश्रोत्राणामाकाश आश्रयः । **शब्दानां** च तत्र श्रोत्राकाशयोर्यः सम्बन्ध आश्रयाश्रयिलक्षणः **तत्र** संयमेकृते दिव्यं श्रोत्रं भवति । **उपलक्षणमेतत्** । **एवं** त्वग्वातयोश्चक्षुस्तेजसो रसनोदकयोघ्राणपृथिव्योः सम्बन्धसंयमाद्दिव्यं त्वगादिः ।

'कायाकाशयोः सम्बन्ध संयमाल्लघुतूलसमापत (त्ते) श्चाकाशगमनम्[६२] । **यत्र** शरीरं तत्राकाश० याप्तिरूपः **सम्बन्धः** । तत्रकृत संयमः तथा च लघुषु तूलादिषु कृतसंयमेन तत्साक्षात्कारे जातं लघुर्भवति ततो जले पादाभ्यां विहरति । तत ऊर्णनाभितन्तुमात्रे विहृत्य रश्मिषु विहरति । ततश्चाकाशगतिरस्य स्वेच्छया **भवति** । 'बहिरकल्पितावृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः[६३] । **शरीराद्वहिर्मनसो** वृत्तिलाभो विदेहानाम धारणाख्यावृत्तिः । सा यदि शरीरास्थितस्य मनसो बहिर्वृत्तिमात्रेण भवति । **सा** कल्पितेत्युच्यते । **या तु** शरीरनिरपेक्षा बहिर्भूतस्यैव मनसो बहिर्वृत्तिः सा च कल्पिता तत्र कल्पितानन्तरमकल्पिता भवति । यया परशरीराण्यप्याविशन्ति योगिनः । **ततो** महाविदेहधारणातः प्रकाशात्मनो बुद्धिसत्त्वस्य यदावरणं रजोस्तमोमूलकं क्लेशकर्मविपाकत्रयं तस्य क्षयो भवति ।

इदानीं गृहीतग्रहणग्राह्येषु ये संयमास्तेषां सिद्धय उच्यन्ते ।

'स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्वसंयमाद्भूतजयः[६४] । **स्थूलं च स्वरूपं सूक्ष्मे** चान्वयश्चार्थवत्त्व च तेषु संयमात्साक्षात्कारपर्यन्तां तद्रूपाणां वशवर्तित्वं भवति । तत्र पार्थिवाद्याविशेषां आकारादिभिर्धर्मैः सह स्थूलशब्देनोच्यन्ते । तत्स्थूलं नाम भूतानां प्रथमं रूपम् । **ते च** विशेषाः षड्जगान्धारादयः शीतोष्णादयः नीलपीतादयः मधुराम्लादयः सुरभिदुर्गन्धादयः आकारादयश्च धर्माः पृथिव्यादीनां शास्त्रे **पठिताः** । आकारो गौरवं रौक्ष्यं वरणं स्थैर्यमेव च । वृत्तिर्भेदः क्षमाकाध्र्म्यं (?) काठिन्यं सर्वभोग्यता । **एते भूमेर्धर्माः** ।

तत्राकारोवयवसंस्थानम् । वृत्तिः सर्वभूताधारता । भेदो विदारणम् । क्षमा सहिष्णुता । धारण सामर्थ्यमिति यावत् । शेषं सुगमम् । स्नेहः सौक्ष्म्यं प्रभाशौक्ल्यं मार्दवं च यत् । शैत्यं रक्षापवित्रत्वं साधनं चौदकागुणः । रक्षावरणादिना रक्षकत्वम् । ऊर्ध्वभाक्याचकं दग्धपावकं लघुभास्वरम् । **प्रध्वंसोजस्वितातेजः**

---

६०. समानजयात्प्रज्वलनम्- ३७/३, पृ. १९२ ६१. वही. ४१/३, पृ. १९७

६२. वही. ४२/३, पृ. १९८ ६३. वही. ४३/३, पृ. १९९ ६४. वही. ४४/३, पृ. २०२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूर्वाभ्यां भिन्नलक्षणम् । **स्पष्टम्** । तिर्यग्यानं पवित्रत्वमाक्षेपो नोदनं बलम् । जलमच्छायतारौक्ष्यं वायोर्धर्माः पृथग्विधाः । **आक्षेपः पातनम्** । **सर्वतो** गतिरव्यूहोऽविष्टम्भश्चेति ते त्रयः । आकाशधर्माव्याख्याताः पूर्वपूर्वविलक्षणाः । **सर्वतो गतिर्विभुत्वम्** । **अव्यूहः** सर्वपदार्थानां विरलीकरणं अवष्टम्भोवकाशः । **स्थूलमुक्तम्** ।

स्वरूपमुच्यते । तच्च स्वसामान्यं पृथिवीत्वादि । यस्योक्ता विशेषाः पतत्स्वरूपं नाम भूतानां द्वितीयं रूपं सूक्ष्मं तन्मात्राख्यं भूतकारणं भूतस्य चरमोवयवः परमाणुः सोऽपि घटादिवदेव सावयवः । स चावयवस्तन्मात्रं तदेव सूक्ष्मं नाम भूतानां तृतीयं रूपम् । **अन्वयाख्यं रूपमुच्यते** । कार्यरूपस्वपरिणामानुगतास्त्रिविधागुणा एवान्वयाः । तदेतदन्वयाख्यं भूतानां चतुर्थं रूपम् । **अर्थवत्वमुच्यते**। गुणेषु वर्तमानं प्रयोजनत्वं यद्भोगापवर्गजातं भोगविवेकख्यातिरूपं तदेव पञ्चमं रुपम् । **एतेषु** भूतानां पञ्चसु रूपेषु क्रमेण स्थूलभूतविषये संयमाद्वशीकृतेषु भूतजयो भवति ।

'ततोऽणिमादि प्रादुर्भावः कायसम्पदन्तर्धानभिघातश्च'[६५] संकल्पमात्रेण तत्क्षणादेवावयवापचयेन यद्देहस्य सौक्ष्म्यं भवति सोऽणिमा । एवमवयवोपचयेन महिमा भवति । गुरुशरीर अपि ईर्षीकतूलवल्लघुर्भवतीति लघिमा । भूमिष्ठ एव चन्द्रादि स्पृशत्यवयवोपचये नाङ्गुलिर्दैर्घ्यादिति प्राप्तिः । प्राकाम्पमिच्छानभिघातः । जलवद्भूमौ निमज्जति चेति वशित्वम् । भूतभौतिकेषु वशी भवति अवश्यश्चान्येषाम् । भूतभौतिकानामुत्पत्ति विनाशयोः संस्थानविशेषे च समर्थो भवति । मूलप्रकृतिविजयादि तीशत्वम् । यत्र कामावसायित्वं सत्यसंकल्पता । यथा संकल्पस्तथा भूतप्रकृतीनामवस्थानम् । जितार्थवत्वरूपो हि योगी यद्यर्थतया यद्वस्तु संकल्पयति तत्तद्वस्तुवत्तदर्थकमेव करोति । यथा विषमेवामृतार्थं संकल्प्य भोजयन् जीवलोकं सुखयति । अर्न्तयामि प्रेरणानुसारेण योगी संकल्पयतीति न मिथो यत्र कामवसायिनां चरित विप्रतिषेधः जगद्व्यवस्थाविपर्ययो वा भवतीत्युक्तान्पुष्टैश्वर्याणि ।

'रूपलावण्यवज्रसंहनानि कायसंपत्'[६६] । **स्पष्टम्** । तद्धर्मानभिघातस्तु पृथ्वीमूर्त्यानननिरुद्धि योगिनः शरीरादि क्रियां यथा शीलामप्यनुविशति । नापः स्निग्धाः क्लेदयन्ति । नाग्निरुष्णो दहति । न वायुः प्रणामी वहति । आकाशे भवत्यावृतकायः । सिद्धानामप्यदृश्यो भवति ।

एवं ग्राह्य समापत्ति सिद्धयो विभज्य उच्यन्ते 'ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्वसंयमादिन्द्रियजयः'[६७] । सामान्यविशेषात्मकेषु विषयेष्विन्द्रियाणां वृत्तिग्रहणमत्रोच्यते । तदिन्द्रियाणां प्रथमं रूपम् ।

द्वितीयं रूपं नामेन्द्रियाणां सामान्यविषयात्मकम् । तत्र विशेषग्रहणरूपा नीलपीताद्याकाराः परिणामभेदाः । सामान्यं च चक्षुषु आदीनि । तृतीयं रूपमिन्द्रियाणां अस्मितावृत्तिको(ऽ)-हंकारस्तत्कार्यत्वादिन्द्रियाणामिति । चतुर्थं रूपं गुणा एव । इन्द्रियप्रकृतिगुणेषु यदनुगतं पुरुषार्थवत्वं

६५. वही. ४५/३, पृ. २०४

६६. रूपलावण्यबलवज्रसंहनत्वानि कायसंपत् ॥ ४६/३, पृ. २०६

६७. वही. ४७/३, पृ. २०७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्पञ्चमरूपम् । ए(ते)षु पञ्चस्विन्द्रियरूपेषु यथाक्रमं प्रत्येक जयादिन्द्रियजयो भवति । अस्य फलमुच्यते ।

'ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च'[६८] मनोवच्छीघ्रगतित्वं कर्मेन्द्रियजयाद्भवति । विकरणभाव इन्द्रियाणां वृत्तिलाभो यत्र देशे इष्यते तत्रैव भवतीति । विकरणभावेनापि योगिनो विदेहा उच्यन्ते । सर्वासां व्यक्तिभेदेनानन्तानां भूतेन्द्रिय प्रकृतिनां सत्त्वादिगुणानां तद्विकाराणां च सर्वेषां स्वेच्छयानुविधानं प्रधानजयः । स एव पूर्वभूमिकायामेव सिद्धः इति । प्रधानजयिन एव प्रकृतिलया उच्यन्ते । एतास्त्रिस्रः सिद्धयो मधुमतिका उच्यन्ते ।

गृहीत संयमस्य सिद्धिरुच्यते । 'सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावादिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च'[६९] । सर्वभावेषु प्रकृति तत्कार्यरूपेष्वधिष्ठातृत्वं स्वेच्छया विनियोक्तृत्वं स्वदेह इव भवति । प्रकृतिपुरुषादि सर्वज्ञातृत्वं च भवतीत्यर्थः । परार्थात्स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानमितिसूत्रे पौरुषेयप्रत्यये सुखाद्यनुभवरूपे परिछिन्न एव संयम उक्तः तस्य पुरुषज्ञानमात्रसिद्धिः अवतु संयमेन ज्ञाते पुरुषे बुद्धिविवेकसंयम उच्यते । ततश्चायं द्विविधः सिद्धिविशेषः । इयं सिद्धिर्विशोकेत्युच्यते । तत्र परमेश्वरवत्स्वेच्छया सर्ववस्तुप्रेरणवत्सामर्थ्यं सर्वभावाधिष्ठात्वं प्रकृतिपुरुषादिष्वप्रतिहतेच्छत्वमिति यावत् । सर्वज्ञत्वं चैकस्मिन्नेव क्षणे सर्वप्रकारकं सर्वेषां ज्ञानम् । तदेव बुद्धिपुरुषविवेकसंयमजन्यत्वाद्विवेकजं ज्ञानमित्युच्यते । संसारतारकत्वाच्च तारकमुच्यते ।

'तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्'[७०] । क्लेशकर्मरूपाणां संसारबीजानामात्मज्ञानेन निःशेषतः क्षये सति तयोः पूर्वोक्त सिध्योरपि वैराग्यमलं प्रत्ययो जायते ततः कैवल्यरूपासिद्धिर्भवति । यदि च ज्ञानस्यपरिपाकात्सर्वज्ञादि रागस्तिष्ठति तदा तदुक्ति सिद्धिद्वयं कैवल्याख्यासिद्धेरन्तरायरूपमित्यर्थः ।

'स्थान्युपनिमन्त्रणे संगमस्याकरणं पुनरिष्टप्रसंगात्'[७१] ।

चतुर्धा योगिनः - प्रथमकल्पिको मधुभूमिकः प्राज्ञो ज्योतिरतिक्रान्तभावनीयश्चेति । तत्र मधुभूमिकस्य मधुमतीनाम भूमिका । तस्यां यदा स्थान्युपनिमन्त्रणं नाम कैवल्यसिद्ध्यन्तरायो भवति । तदा तस्य प्रतिकारः संगमस्याकरणम् । विपर्यये दोषमाह । पुनरिष्टप्रसंगात् । अयमर्थः । मधुभूमिकमागत्य देवा एनं निमन्त्रयन्ते स्वर्गस्थानोपभोगाय । स व कैवल्यार्थं विषयेषु प्रीतिं न कुर्यात् । देवानामहं संभावनीयो(ऽ)स्मिजात इत्यभिमानं न कुर्यात् । संगस्मयकरणेषु पुनःसंसारान्धकूपनिपात इति । सर्वज्ञता साधकं संयमान्तरमुच्यते । 'क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्'[७२] । यथा लोष्ठादेर्भिद्यमानस्य यस्मिन्नवयवे पणिमा(?)पकर्षकाष्ठा स परमाणुः सत्त्वादिगुणविशेषः एवं

६८. वही. ४८/३, पृ. २०७ ६९. वही. ४९/३, पृ. २०८ ७०. वही. ५०/३, पृ. २१०

७१. वही. ५१/३, पृ. २११ ७२. वही. ५२/३, पृ. २१२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कालस्यापकर्षावधिभूतोऽवयवविशेषः । सर्वापरान्शोन्यः सोऽस्माकं क्षणाख्यः कालः स च न स्थिरः । तत्प्रचय एव बुध्युपसंहृतो लवमुहूर्तादिव्यवहारं लभते । तेषां क्षणानां क्रमः पौर्वापर्यम् । एवं क्षणेषु तत्क्रमेषु च संयमाद्विवेकजं ज्ञानं सार्वक्षणमुत्पद्यते । इदमपि विवेकजज्ञानस्य साधनान्तरमित्यर्थः ।

'जातिलक्षणदेशैरन्यता नवछेदात्तुल(ल्य)योस्ततःप्रतिपत्तिः[७३] । ययोर्जात्यादिकृतो भेदो नास्ति तयोर्भेदो विवेकजज्ञानादेव योगिभिर्नुभूयते । तथाहि । द्वयोरामलकयोर्जातिलक्षणसारूप्याद्देशभेदोन्यकत्वकर इदं पूर्वमिदमुत्तरमेतदितिविभागानुपपत्तिः । असंदिग्धं च योगिनस्तत्त्वज्ञानं भवितुमर्हतीति । ततो विवेकजज्ञानादेव तत्र भेदप्रतिपत्तिः कथं पूर्वामलकविशिष्टः पूर्वदेशादुत्तरामलकविशिष्टात् उत्तरादेशाद्भिन्न । ते चामलके स्वस्वदेशलक्षणानुभव भिन्ने । अन्यदेशलक्षणानुभवस्वतयोरन्यत्वे हेतुरिति । एवं परमाणुष्वात्मादिषु च देशजातिलक्षणैरभिन्नेषु विशेष प्रतिपत्तिर्विवेकजज्ञानादिति । उक्ताः संयमसिद्धियः ।

इति पातञ्जले योगशास्त्रे सुवोधार्थं सामान्यतो योगप्रक्रिया लिखिता ॥ श्रीरस्तु ॥श्रीः॥

-----

७३. वही. ५३/३, पृ. २१३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अच्युत विरचित "संयमसत्कृतिः" एक अप्रकाशित ग्रन्थ

नन्दकिशोर मिश्र*

प्रस्तावना :

हस्तलिखित ग्रन्थों के सङ्ग्रह, उपचारात्मक संरक्षण, अनुसन्धान, सम्पादन एवं प्रकाशन के लिए प्राच्यविद्या मन्दिर, वडोदरा प्रसिद्ध है । यहाँ विभिन्न विषयों की ३० हजार से भी अधिक पाण्डुलिपियों का भण्डार संरक्षित है । उसी में से अप्रकाशित "संयमसत्कृतिः" नामक ग्रन्थ का एक पाण्डुलिपि के आधार पर सम्पादन करने का प्रयास इस शोध पत्र में किया है ।

महर्षि पतञ्जलि का योगसूत्र चार भागों में विभक्त है - (१) समाधिपाद (२) साधनपाद (३) विभूतिपाद और (४) कैवल्यपाद । प्रथम पाद में प्रधानरूप से समाधि के स्वरूप तथा भेद का वर्णन है इसलिए इसे समाधिपाद कहते हैं । दूसरे पाद में प्रधानतया समाधि के साधनों का उल्लेख है इसलिए इसे साधनपाद कहते हैं । तीसरे पाद में मुख्य रूप से धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा प्राप्त होने वाली अनेक प्रकार की विभूतियों का दिग्दर्शन है इसलिए इसे विभूतिपाद कहते हैं । चतुर्थपाद में विस्तार पूर्वक कैवल्य (मोक्ष) का विवेचन है इसलिए इसे कैवल्यपाद कहते हैं ।

तीसरे विभूतिपाद में धारणा, ध्यान और समाधि को संयम नाम से व्यवहृत किया गया है । इसी विषय को अच्युत विरचित "संयमसत्कृतिः" नामक ग्रन्थ में विशद् रूप में प्रतिपादित किया गया है ।

"संयमसत्कृतिः" ग्रन्थ की प्रति प्राच्यविद्यामन्दिर, वडोदरा में क्रमाङ्क ३१४ से संरक्षित है, इस ग्रन्थ में ६४ श्लोक हैं, सभी श्लोक अनुष्टुप् छन्द में हैं । इसका परिमाण १९x८ सेंटीमीटर है, ९ पृष्ठात्मक प्रत्येक पृष्ठ में ७ पङ्क्ति एवं प्रत्येक पङ्क्ति में ३२ अक्षर एवं क्वचित् स्थान पर ३५ अक्षर भी हैं । लिपि देवनागरी एवं भाषा संस्कृत है । पाण्डुलिपि की स्थिति बहुत अच्छी एवं अक्षर सुपाठ्य हैं । इस ग्रन्थ में रचनाकाल, लेखनकाल, स्थल, लिपिकारविषयक कोई सङ्केत प्राप्त नहीं होता है ।

ग्रन्थसङ्ख्या ३१४ से यह ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ ई.स. १८९४ से १९१० के मध्य संस्था के ग्रन्थागार में सङ्ग्रहीत किया गया था । यह ग्रन्थ १२० वर्ष से भी अधिक प्राचीन प्रतीत होता है ।

'स्वाध्याय' - पु. ५९, वर्ष २०२२, पृ. १०५-११४. ISSN 2250-0391

* प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय वडोदरा, M: 09998807874, Email: mishrank187@gmail.com

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

New Catalogues Catalogorum, Vol. 1,[१] में ''संयमसत्कृतिः'' ग्रन्थ की एक ही प्रति वडोदरा ग्रन्थक्रमाङ्क ३१४ का उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु Vol. 37,[२] में इस ग्रन्थ की दो प्रतियों का सङ्केत प्राप्त हुआ है, प्रथम वडोदरा क्रमाङ्क ३१४ एवं द्वितीय कैवल्यधाम, लोनावला, महाराष्ट्र, क्रमाङ्क ४९६ । कैवल्यधाम संस्थान ने इस पाण्डुलिपि की छायाप्रति प्राच्यविद्यामन्दिर, वडोदरा से ही प्राप्त की थी, अतः दोनों पाण्डुलिपि एक ही हैं । एक ही पाण्डुलिपि के आधार पर प्रस्तुत कृति का पाठसम्पादन करने का प्रयास यहाँ किया गया है । अन्य पाण्डुलिपि के अभाव में कुछ स्थानों पर शंकास्पद पाठों का समाधान नहीं हो पाया है ।

लेखक परिचय :

''संयमसत्कृतिः'' ग्रन्थ के प्रणेता अच्युत नामक विद्वान् हैं, ग्रन्थ की पुष्पिका में ''इत्युच्युतविरचिता संयमसत्कृतिः समाप्ता'' समुल्लिखित है । इनके जीवन के विषय में एवं अन्य कोई रचना के विषय में कहीं पर भी हमको उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ है । ''संयमसत्कृतिः'' नामक ग्रन्थ के अध्ययन से यह विदित होता है कि ग्रन्थकार सुकवि, व्याकरण एवं दर्शनशास्त्र के विशेष मर्मज्ञ थे । शब्दचयन एवं कवित्व शक्ति के धनी थे । ''श्रीशं वन्द'' से श्रीकृष्ण को वन्दन कर ग्रन्थ का आरम्भ किया । ग्रन्थकार अद्वैतसिद्धान्तपरायण एवं गुरुभक्त थे-

अद्वैतसच्चिदानन्दः श्रीगुरुः परमः शिवः ।
मुमू(मु)क्षूननुगृह्णातु चिरं वेदैकतत्परान् ॥६३॥

सदा संयमसत्कृत्याऽनयाच्युतसुदिष्टया ।
सन्तुष्टः सद्गुरुश्रेष्टः(ष्ठः) पातु नः सततेष्टकृत् ॥६४॥

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय :

योग के अष्टाङ्गों के अन्तिम तीन अङ्ग धारणा, ध्यान और समाधि का सामूहिक अभिधान संयम है । संयम शब्द का उपर्युक्त अर्थ उसका वाच्यार्थ नहीं अपितु यह योगशास्त्र के विभूति प्रकरण में ही धारणा ध्यान समाधित्रय की तान्त्रिकी परिभाषा है । व्यासभाष्यकार कहते हैं - ''तदस्य त्रयस्य तान्त्रिकी परिभाषा संयम इति'' ।[३] धारणा, ध्यान और समाधि तीनों का लक्षण करने के बाद पतञ्जलि

---

१. Raghvan V., *New Catalogues Catalogorum*, Vol. 1, University of Madras, 1968, p. 72

२. Dash Siniruddha, *New Catalogues Catalogorum* Vol. 37, University of Madras, 2015, p. 1

३. पातञ्जल योगदर्शनम्, व्यासभाष्य-भोजदेववृत्ति सहित, ३.४, भाषानुवाद- श्री विज्ञानाश्रमजी, दी फाइन आर्ट्स प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर, १९३२, पृ. २८३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ने यह सूत्र दिया - "त्रयमेकत्र संयमः"।[४] इसी बात को ग्रन्थकार ने तृतीय श्लोक में कहा -

संयमो धारणाध्यानसमाधय इतीरितम् ।
पातञ्जले तमेवाथजीवनमुक्त्यर्थमाचरेत् ॥३॥

ग्रन्थाध्ययन से यह ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार ने ग्रन्थ का प्रणयन का उद्देश्य के अपने गुरुपुत्र की प्रसन्नता एवं शिष्यों के ज्ञान में वृद्धि को हेतु मानकर किया होगा जिससे क्लिष्ट विषय का सुगमतापूर्वक ज्ञान प्राप्त हो सके। इसके प्रथम श्लोक से यह बात स्पष्ट होती है -

श्रीमत्सद्गुरुपुत्रस्य पाण्डुरङ्गाख्यशास्त्रिणः ।
शिष्यस्य श्रीहरेस्तुष्ट्यै कुर्वे संयमसत्कृतिम् ॥१॥

चतुर्थ श्लोक में धारणा का लक्षण प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं-

चित्तस्य देशबन्धस्तु धारणेति च सूत्रितम् ।
सव्यष्टौ ब्रह्मरन्ध्रादिः समष्टौ सूर्यमण्डलम् ॥४॥

व्यष्टिरूप में अर्थात् नाभिचक्र, हृदयकमल, ब्रह्मरन्ध्रादि शरीर के भीतरी देश में अथवा समष्टिरूप अर्थात् सूर्य-चन्द्रमा आदि देवता या कोई मूर्ति तथा कोई भी पदार्थ बाह्य देश में इनमें से किसी एक देश में चित्त की वृत्ति को लगाने का नाम धारणा है। इसी प्रसङ्ग में सामवेद की ऋचा का प्रमाण देते हुए सत् रूपता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं -

सदेव सोम्येदमग्र इति सामशिरः श्रुतेः ।
मनसः स निरोधार्थं देशोऽनन्तः सतां मतः ॥६॥

छान्दोग्योपनिषद् में "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्"[५] हे सोम्य ! आरम्भ में यह एक मात्र अद्वितीय सत् ही था। अपने चित्त को सत्स्वरूपी एक देश में स्थिर करना ही धारणा है। खपुष्प, शशविषाण, वन्ध्यापुत्रादि अनेक उदाहरणों से ध्येय सत्ता के विषय का प्रतिपादन किया गया है। ग्रन्थकार ने विविधोदाहरण के साथ ११ श्लोकों में धारणा का प्रतिपादन किया। "संयमसत्कृतिः" के १५वें श्लोक में ध्यान का लक्षण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं -

---

४. वही, ३.४,

५. छान्दोग्योपनिषद् (सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित), ६.२.१, गीताप्रेस, गोरखपुर,- वि. सं. २०५२, ८वां संस्करण, पृ. ५८२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धारणा-विषये देशे या वृत्तेरेकतानता ।
तद्ध्यानमिति सम्प्रोक्तमस्ति पातञ्जले स्फुटम् ॥१५॥

धारणा के द्वारा जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाए, उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना अर्थात् केवल ध्येयमात्र की एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी भी दूसरी वृत्ति का न उठना "ध्यान" है । ध्यानोपरान्त समाधि की चर्चा आती है जिसके विषय में महर्षि पतञ्जलि परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहते हैं - "तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः" ।[६] जब ध्यान अर्थमात्र से निर्भासित होता है तथा स्वरूप से शून्य सा हो जाता है, तब उसी प्रत्ययैकतानता रूप ध्यान को समाधि कहते हैं । इसी बात को ग्रन्थकार अच्युत श्लोक के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं -

ध्यानस्यापि पराकाष्ठा सैवात्रेष्टा यदुत्तरम् ।
सम्प्रज्ञातसमाधिं स्यात्पूर्णानन्दात्मकः स्वयम् ॥२८॥

ननु ध्यानसमाध्योः स्यात्को विशेषस्तमीरय ।
अर्थनिर्भासमात्रं तु तदेवाह पतञ्जलिः ॥२९॥

वृत्त्युल्लेखो भवेत् ध्याने समाधौ स न विद्यते ।
किन्तु तद्विषयी भूतोऽर्थ एव स्वप्रभः स्फुरेत् ॥३०॥

ध्यातृ-ध्यान-ध्येयरूपा त्रिपुटी तत्र तु स्फुटा ।
वृत्तित्वान्न सात्रास्ति समाधाविति निर्णयः ॥३३॥

ब्रह्मात्मैक्य भाव जाग्रत होना उसका बोध होना ही ध्यान है और ध्यान की पराकाष्ठा को ही समाधि का स्वरूप माना है । ध्यान में वृत्तियों का भाव विद्यमान होता है ध्याता, ध्यान तथा ध्येय इन तीनों की प्रतीति होती है जबकि समाधि में ध्येय मात्र की ।

यह स्मर्तव्य है कि धारणामात्र से सम्यग् ज्ञान एवं परमपद की प्राप्ति नहीं हो सकती है अतएव प्रथम पूर्वोक्त विधि से धारणा में स्थिति प्राप्त हो जाने पर ध्यान करना चाहिए । ध्यान परिपक्व हो जाने पर समाधिनिष्ठ होकर संयम प्राप्त करने पर ही लक्ष्यसिद्धि सम्भाव्य है । धारणा की प्रकर्षावस्था ही ध्यान तथा ध्यान की अत्यन्त उत्कृष्टावस्था ही समाधि है और इन तीनों का संयोग ही संयम कहलाता है । ग्रन्थकार ने समाधि के सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात, सविकल्पक, निर्विकल्पक आदि भेदों का वर्णन किया है ।

६. पातञ्जल योगदर्शनम्, व्यासभाष्य-भोजदेववृत्ति सहित, ३.३, पृ. २७८

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निष्कर्ष :

इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार द्वारा अतीव सरल रीति एवं अनेक उदाहरणों के साथ धारणा, ध्यान, समाधि साधनत्रय संयम का विवेचन किया गया है । धारणा से जहाँ मन की शुद्धि होती है वहाँ ध्यान से "मैं" पन का सुधार होता है, ध्यान के स्थिर होने पर साधक का अहंकार गिर जाता है तथा केवल "हूं" ही शेष रह जाता है, जिसका लय समाधि में होता है । संयम को इस सत्कृति के द्वारा हृदयङ्गम कराना यही ग्रन्थकार का उद्देश्य रहा होगा । यह कृति यथा नाम तथा गुण से संयुक्त है ।

॥ संयमसत्कृतिः ॥

॥ श्रीशं वन्दे ॥

श्रीमत्सद्गुरुपुत्रस्य पाण्डुरङ्गाख्यशास्त्रिणः ।
शिष्यस्य श्रीहरेस्तुष्ट्यै कुर्वे संयमसत्कृतिम् ॥१॥

सच्चिदानन्दकूटस्थप्रत्यक्ब्रह्मणि कल्पितम् ।
इत्यर्थाच्च प्रकाराच्च मृषाद्वैतमभूदिदम् ॥२॥

संयमो धारणाध्यानसमाधय इतीरितम् ।
पातञ्जले तमेवाथ जीवन्मुक्त्यर्थमाचरेत् ॥३॥

चित्तस्य देशबन्धस्तु धारणेति च सूत्रितम् ।
सव्यष्टौ ब्रह्मरन्ध्रादिः समष्टौ सूर्यमण्डलम् ॥४॥

नामरूपात्मकं दृश्यं सतश्चेत्स्यात्पृथक् कृतम् ।
वन्ध्या पुत्रायते सद्यस्तद्देशोऽत्र सदेव नः ॥५॥

सदेव सोम्येदमग्र इति सामशिरः श्रुतेः ।
मनसः सनिरोधार्थं देशोऽनन्तः सतां मतः ॥६॥

तत्र रुद्धं मनः कालत्रयेप्यन्यत्र न व्रजेत् ।
अन्यथा सद्य एवैतत्खपुष्पत्वमुपैष्यति ॥७॥

कामिन्यादौ मनो गच्छेत् सता(त्ता)हीनमुतान्वितम् ।
नाद्यः स्वस्य खपुष्पत्वान्नाप्यन्त्यः स्यात्सतोऽगतेः ॥८॥

सोऽपि किं विषयः सत्ता शून्यः किं वा तदन्वितः ।
आद्ये शशविषाणं स्यादन्त्ये सत्तैक्यमेव यत् ॥९॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषयस्य रमण्यादेः सत्ता विषयिणो हृदः ।
सत्ताया न पृथक् कालत्रयेप्यस्ति विवेचने ॥१०॥

यावद् द्वैतस्य सत्ता नु(तु) वेधादेवानुभूतितः ।
तद्भेदेऽभेदसत्तापि भेद्यसत्तैव वेतरा ॥११॥

नैवाद्यो भेदसत्ता या भेद्यसत्तैकरूपतः ।
भेद एव तु वाङ्मात्रः स्यानान्त्योऽन्योन्य संश्रयात् ॥१२॥

तस्मात्सन्मात्र एवेष्टो देशश्चित्तस्य धारणे ।
स तां प्रेक्षावतां नित्यं श्रुतियुक्त्यनुभूतितः ॥१३॥

उत् धारणया भूयात् पञ्चमी भूमिकारणम्।
वासिष्टे सुप्रसिद्धाया विदाऽसंसक्तिनामिका ॥१४॥

धारणा विषये देशे या वृत्तेरेकतानता ।
तद्ध्यानमिति सम्प्रोक्तमस्ति पातञ्जले स्फुटम् ॥१५॥

अभासमानस्य सतः पारोक्ष्यं स्यादसंशयम् ।
मनसो धारणा तेन तत्र प्रोक्तापि दुष्करा ॥१६॥

तस्मात्तद्भासमानन्तु वक्तव्यं धारणाकृते ।
बाढं चेद्भाति तद्भ्रान्त्या प्रमया स्वयमेव वा ॥१७॥

नाद्यो मिथ्यात्वतो युक्तो न द्वितीयो जडत्वतः ।
ततस्तृतीय एवेज्यः सच्चिदेव स्वभेति नः ॥१८॥

तथा च तत्र मनसो वृत्तीनामेकतानता ।
विजातीयानवछिन्न सजातीयप्रवाहता ॥१९॥

सत्तास्फूर्तिविहीनास्ता वृत्तयोऽपि खपुष्पवत् ।
तत्सच्चिदहमित्येतद्विशिष्टास्ताः सतां मताः ॥२०॥

सच्चिद्वैशिष्ट्यमस्वत्र वृत्तिनामुक्तयुक्तितः ।
अहंकारविशिष्टत्वमुक्तं किमिति चेच्छृणु ॥२१॥

अहङ्कारोऽपि यच्चित्तवृत्तिरेव तदत्र नो ।
तद्वैशिष्ट्यं ममास्तीष्टं किं त्वात्मैवात्र मे मतः ॥२२॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सच्चिदेकस्वरूपो हि प्रत्यगात्मा यतः श्रुतः ।
अतो ध्याने तदुल्लेखो मतोऽनात्मनिवृत्तये ॥२३॥

अहं ब्रह्मेति बोधस्य प्रत्यग्ब्रह्मैक्यदायिनः ।
तन्मात्राध्यानविध्वस्त्याऽनुवृत्तेर्ध्यानमीदृशम् ॥२४॥

सत्यं ज्ञानमिति श्रुत्या ब्रह्मोपक्रम्यदर्शितम् ।
तस्माद्वा इति तस्यैव तथात्मत्वमतिस्फुटम् ॥२५॥

स आत्मा तत्त्वमस्येवं श्रुतिमौलिष्वनेकधा ।
ब्रह्मात्मैक्यविबोधोऽस्ति स तद्धा(ध्या)ने तथैव नः ॥२६॥

सच्चिद्ब्रह्माहमित्येकरूपवृत्तिपरम्परा ।
ध्यानं मतमिदं षष्ट(ष्ठ) भूमिकात्मकमुच्यते ॥२७॥

धारणायाः पराकाष्ठा सैवात्रेष्टा यदुत्तरम् ।
निरुक्तलक्षणं ध्यानं स्वयमेवाभिजायते ॥२८॥

ध्यानस्यापि पराकाष्ठा सैवात्रेष्टा यदुत्तरम् ।
सम्प्रज्ञातसमाधिं स्यात्पूर्णानन्दात्मकः स्वयम् ॥२९॥

ननु ध्यानसमाध्योः स्यात्को विशेषस्तमीरय ।
अर्थनिर्भासमात्रं तु तदेवाह पतञ्जलिः ॥३०॥

वृत्त्युल्लेखो भवेद्ध्याने समाधौ स न विद्यते ।
किन्तु तद्विषयी भूतोऽर्थ एव स्वप्रभः स्फुरेत् ॥३१॥

ध्याने प्रत्यक् तया सन्नप्यानन्दो वृत्तिभानतः ।
नैव पूर्णतया भाति समाधौ तु स भात्यलम् ॥३२॥

ध्यातृध्यानध्येयरूपा त्रिपुटी तत्र तु स्फुटा ।
वृत्तित्त्वं त्वान्न सात्रास्ति समाधाविति निर्णयः ॥३३॥

वृत्तयस्तु तदानीमज्ञाता अप्यात्मगोचराः ।
स्मरणादनुमीयन्ते व्युत्थितस्य समुत्थितात् ॥३४॥

इति तत्त्वविवेके तु निर्विकल्पेऽपि तत्र ताः ।
आत्मैकाकारताभात्याः स्मृतेरनुमिताः स्फुटम् ॥३५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सविकल्पे तु कैमुत्य सिद्धास्तातत्कथं न्व(व)यम् ।
तदानीं वृत्त्यभावस्त्वत्प्रोक्तः सिद्धेच्छृणूच्यते ॥३६॥

राजते चषके शुद्धे शुद्धाम्भसि तथा सिता ।
यदि क्षोदीकृता क्षिप्ता तदा रूपं तु यद्यपि ॥३७॥

सितान्यच्चाक्षुषं नैव तथापि जलशर्करे ।
यथा तत्र स्थिते एव तथैवात्र प्रतीयताम् ॥३८॥

अन्तःकरणतज्जात्मवृत्ती तु जलशर्करे ।
शुद्धत्व-सुख दत्त्वास्यां समाधौ नैव ते स्फुटे ॥३९॥

किं त्वधिष्ठानता योगाद्रजतं शार्करे जले ।
प्रतिबिम्ब्य निजं रूपं बहिश्चाक्षुषतां नयेत् ॥४०॥

तथैवात्मत्वमद्वैतसच्चिदानन्दमात्रकम् ।
समाधौ चित्ततज्जन्य तन्मात्राकारवृत्तिके ॥४१॥

प्रतिबिम्ब्य स्फुटं भाति स्वेतराभानपूर्वकम् ।
तत्समाधौ मनोवृत्तेर्भावाभावौ सुसङ्गतौ ॥४२॥

नन्वेवमपि सम्प्रज्ञातादिभेदविनिर्णयः ।
कथं स्यादिति चेन्नात्र व्युत्थितस्मृतिभेदतः ॥४३॥

एतावदहमद्वैतसच्चिदानन्दमात्रकः ।
आसमित्येव सम्प्रज्ञातसमाध्यु(ध्यु)त्तरं स्मृतिः ॥४४॥

एतावन्मयि न द्वैतभानमासीदिति स्मृतिः ।
निर्विकल्पसमाध्यूर्ध्वं भवतीत्येव मे मतिः ॥४५॥

न च तर्ह्येवमद्वैतभानमार्थिकमापतेत् ।
इष्टापतेः(त्तेः) स्वयं भानमात्रत्वादस्य वस्तुनः ॥४६॥

तुरीया चोन्मनी चेति सम्प्रज्ञातादि नामनी ।
तान्त्रिके एव विज्ञेये योगरूढ्वापि पण्डितैः ॥४७॥

ननूक्तराजतामत्र प्रतिबिम्बो जले नुतः ।
चक्षुरेव जलं भित्वा तद्गृह्णात्वतिलाघवात् ॥४८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सत्यं पीतादिका चान्तःस्थितं वस्त्वपि तादृशम् ।
भाति ते न तु तत्रैतद्यतिबिम्बो वसीयताम् ॥४९॥

न च तादात्म्य-तस्मादृक् प्रतिभातीति साम्प्रतम् ।
प्रतिबिम्बेप्युपाध्यादेस्तादात्म्यावश्यकत्त्वतः ॥५०॥

नापि तेनैव तत्सिद्धौ प्रतिबिम्बो बृथायुतः ।
मृद्धणदिवदेव स्यात् त्पी(पी)तकाचो घटाद्यपि ॥५१॥

तस्मादवश्यमेवात्र प्रतिबिम्बो जलादिगः ।
अधिष्ठानस्य रजतामत्रादेरेवमेव च ॥५२॥

अद्वैतसच्चिदानन्दकूटस्थपरमात्मनः ।
समाधावपि चित्तादौ प्रतिबिम्बः कुतो न ते ॥५३॥

तत्स्वप्रकाशनिर्द्वैतपूर्णानन्दात्मनास्थितिः ।
समाधिः सप्तमी भूमिः ?सिद्धाशुद्धविचारतः ॥५४॥

परमेतस्य सर्वत्रानुसन्धानं विवेकतः ।
निरुक्त ?रोतिकं भूयान्मननेन विजानहि ॥५५॥

तत्स्ववर्णाश्रमादीष्टं शुद्धवैदिकमार्गतः ।
नित्यादिकुर्वन्नन्तर्याम्येकतुष्टयै जनेष्टये ॥५६॥

काम्यादिवर्जयन्नेव दुःसङ्गवदनारतम् ।
निरुक्तमननस्यर्द्धि सर्वमन्यत्परित्यजेत् ॥५७॥

स्वप्नेप्येतन्न वक्तव्यं मन्यं प्रति कदाचन ।
यत्कलावद्य सञ्जाता म्लेच्छा क्रान्ता वसुन्धरा ॥५८॥

कश्चिद् धीर इति श्रुत्या कश्चिन्मामिति गीतया ।
अतीव-दुर्लभैवोक्ताद्वैतविद्याऽधिकारिता ॥५९॥

सर्वे वेदान्तिनो जाताः साम्प्रतं योगतोऽपि च ।
कामिनी कनकासक्ताः प्रायेणाद्यैकतत्पराः ॥६०॥

तस्मादेतद्गुरोः पादप्रसादादेव केवलम् ।
दैवाल्लब्धमिति स्वान्तरेव स्थाप्यं तदङ्घ्रिवत् ॥६१॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देहप्राणमतो बुद्धिसुखादिद्वैतभासकः ।
सच्चिदानन्दकूटस्थाद्वैतात्मैकशिवोस्म्यहम् ॥६२॥

अद्वैतसच्चिदानन्दः श्रीगुरुः परमः शिवः ।
मुमू(मु)क्षूननुगृह्णातु चिरं वेदैकतत्परान् ॥६३॥

सदा संयमसत्कृत्याऽनयाच्युतसुदिष्टया ।
सन्तुष्टः सद्गुरुश्रेष्टः(ष्ठः) पातु नः सततेष्टकृत् ॥६४॥

इत्युच्युतविरचिता संयमसत्कृतिः समाप्ता ॥
॥ श्रीगुरुचरणार्पणमस्तु ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुराणों में योगाङ्गविमर्श

धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी*

भूमिका

तपःपूत महर्षियों ने मानवजाति के कल्याणार्थ जिन तत्त्वों को उद्घाटित किया उनमें से योगतत्त्व को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वेद, उपनिषद्, पुराण प्रभृति ग्रन्थों में योगतत्त्व के रहस्यों को सामान्य जनमानस के निमित्त प्रकाशित किया गया है। योग की सार्वजनीन और सार्वभौम उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए ही पुराणों में योग और उसके विभिन्न अङ्गों का लोकोपयोगी विवेचन प्राप्त होता है।

योग

'योग' शब्द 'युज्' धातु के पश्चात् 'करण' और 'भाववाच्य' में 'घञ' प्रत्यय लगाने से बनता है। 'युज' धातु का अर्थ है 'समाधि'। 'समाधि' शब्द का अर्थ है सम्यक् प्रकार से भगवान् के साथ युक्त हो जाना, मिल जाना।[१] जीवात्मा एवं परमात्मा में ही अन्तःकरण की वृत्तियों को स्थापित करना उत्तम योग है।[२] योग न आकाश में है, न पृथिवी में है और न पाताल में ही है, योग के विशारद लोग कहते हैं कि जीव और आत्मा की जो एकता है, वही योग है।[३] शिवपुराण के अनुसार जिसकी दूसरी वृत्तियों का निरोध हो गया है, ऐसे चित्त की भगवान् शिव में जो निश्चल वृत्ति है, उसी को संक्षेप में योग कहते हैं। यह योग पाँच प्रकार का है-मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग और महायोग।[४] योग में विघ्न करने वाले छः दोष हैं-काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर। अतः योगी साधक को चाहिए कि वह इन विघ्नों का उच्छेद करके योग में सफलता प्राप्त करे।[५] योगरूपी अग्नि शीघ्र ही सम्पूर्ण पापपञ्जर को भस्म कर देती है और उसके बाद साक्षात् मुक्तिरूप सिद्धि प्रदान करने वाला निर्मल ज्ञान उत्पन्न होता है। योग से ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञान से योग प्रवर्तित होता है।[६]

'स्वाध्याय' पु. ५९, वर्ष २०२२, पृ. ११५- १३४. ISSN 2250-0391

* श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची- M: 07992362827, 09431590113; Email : dvd74@rediffmail.com; dvd1309@gmail.com

१. योगाङ्क, पृ. ७१

२. अग्निपुराण-३७२/२

३. श्रीमद्देवीभागवत पुराण-७/३५/२

४. शिवपुराण-वायवीयसंहिता/उत्तरखण्ड-३७/६-७

५. श्रीमद्देवीभागवत पुराण-७/३५/३-४

६. कूर्मपुराण-उ/११/२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अष्टाङ्गयोग

जैसे सुदृढ नींव के विना विशाल प्रासाद चिरस्थायी नहीं हो सकता है, उसी प्रकार योगाङ्गों का पालन किए बिना ध्यान और समाधि का सिद्ध होना असम्भव ही है। इसी को ध्यान में रखते हुए पुराणों में योगाङ्गों का विशद और विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। लिङ्गपुराण के अनुसार योग की प्राप्ति के आठ साधन बताए गए हैं–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।[७] स्कन्दपुराण और नारदपुराण में भी इसी का सङ्केत किया गया है।[८] इनके साधन से साधक को योग की प्राप्ति होती है।[९] अग्निपुराण के अनुसार अष्टाङ्गयोग त्रिविध ताप से छुटकारा दिलाने का साधन है।[१०]

उपर्युक्त आठ अङ्गों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- क) बहिरङ्ग एवं ख) अन्तरङ्ग। प्रथम पाँच को बहिरङ्ग कहते हैं क्योंकि उनका विशेषतया बाहर की क्रियाओं से ही सम्बन्ध है। शेष तीन अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि अन्तरङ्ग है क्योंकि इनका सम्बन्ध अन्तःकरण से है। योग के इन आठ अङ्गों के सम्बन्ध में पुराणों में पर्याप्त विवेचन प्राप्त होता है जिसका उल्लेख आगे किया जा रहा है-

यम

लिङ्गपुराण के अनुसार तप से विषयों का त्याग 'यम' है।[११] अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह-संक्षेप में इन्हें यम कहा गया है। ये मनुष्यों के चित्त की शुद्धि करने वाले हैं।[१२] विष्णुपुराण में कहा गया है कि इन पञ्चविध 'यम' का निष्कामभाव से सेवन करना चाहिए।[१३] नारदपुराण में सात प्रकार के यमों की चर्चा की गई है-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अक्रोध और अनसूया।[१४] श्रीमद्देवीभागवत में 'यम' दस कहे गये हैं-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धृति, परिमित आहार और पवित्रता।[१५] श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार 'यम' बारह है-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असंगता, लज्जा, असंचय (आवश्यकता से अधिक धन आदि न जोड़ना), आस्तिकता, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थिरता, क्षमा और अभय।[१६]

---

७. लिङ्गपुराण-पृ०/८/७-९

८. स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/१२-१३, नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/७२-७४

९. वही-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/१४

१०. अग्निपुराण-३७२/१

११. लिङ्गपुराण-पृ०/८/१०

१२. कूर्मपुराण-उ/११/१३

१३. विष्णुपुराण-६/७/३६

१४. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/७५

१५. श्रीमद्देवीभागवत पुराण-७/३५/६

१६. श्रीमद्भागवतपुराण-११/१९/३३

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मन, वाणी, तथा कर्म से सभी प्राणियों को सर्वदा किसी भी प्रकार का क्लेश प्रदान नहीं करना- इसे श्रेष्ठ ऋषियों ने 'अहिंसा' कहा है। 'अहिंसा' से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं है और 'अहिंसा' से बढ़कर कोई सुख नहीं है।[१७] जैसे राह चलने वाले अन्य सभी प्राणियों के पदचिह्न हाथी के चरणचिह्न में समा जाते हैं, उसी प्रकार धर्म के सभी साधन 'अहिंसा' में गतार्थ मान जाते हैं। हिंसा के दस भेद हैं-किसी को उद्वेग में डालना, संताप देना, रोगी बनाना, शरीर से रक्त निकालना, चुगली खाना, किसी के हित में अत्यन्त बाधा पहुँचाना, उसके छिपे हुए रहस्य का उद्घाटन करना, दूसरे को सुख से वंचित करना, अकारण कैद करना और प्राणदण्ड देना।[१८] अहिंसा योगमार्ग में सिद्धि प्रदान करने वाली है।[१९] सभी प्राणियों को अपनी तरह समझना और सभी प्राणियों के कल्याण में रत रहना अहिंसा है। यह आत्मज्ञान में सहायक है।[२०]

'सत्य' के द्वारा सब कुछ प्राप्त हो जाता है, 'सत्य' में सब कुछ प्रतिष्ठित है। द्विजातियों द्वारा यथार्थ कथन के आचार को 'सत्य' कहा गया है।[२१] लिङ्गपुराण के अनुसार देखे, सुने, समझे गए और अनुभव कए गए को बिना किसी को पीड़ा पहुँचाए हुए कहना ही 'सत्य' है। दूसरों का दोष जानकर भी दूसरों से नहीं कहना चाहिए।[२२] स्कन्दपुराण के अनुसार जिसका वेदों में विधान किया गया है, जो स्वयं देखा गया हो, सुना गया हो, अनुमान किया गया हो, अथवा अपने अनुभव में लाया गया हो, उसे दूसरे को पीड़ा न देते हुए यथार्थरूप से वाणी द्वारा प्रकट करना 'सत्य' कहलाता है।[२३] नारद पुराण के अनुसार धर्म और अधर्म का विचार रखते हुए जो यथार्थ बात कही जाती है, उसे 'सत्य' कहते हैं।[२४] अग्निपुराण के अनुसार जो बात दूसरे प्राणियों के लिए अत्यन्त हितकर है, वह 'सत्य' है। 'सत्य' का यही लक्षण है-सत्य बोले, किन्तु प्रिय बोले, अप्रिय सत्य कभी न बोले। इसी प्रकार प्रिय असत्य भी मुँह से न निकाले, यह सनातन धर्म है।[२५]

चोरी से अथवा बलपूर्वक दूसरे के द्रव्य का अपहरण करना 'स्तेय' है, उसका आचरण न करना 'अस्तेय' है, यह धर्म का साधन है।[२६] लिङ्गपुराण के अनुसार दूसरों की वस्तु सोद्देश्य भी

---

१७. कूर्मपुराण-उ/११/१४-१५

१८. अग्निपुराण-३७२/४-७

१९. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/७६

२०. लिङ्गपुराण-पू०/८/१२, स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/१६

२१. कूर्मपुराण-उ/११/१६

२२. लिङ्गपुराण-पू०/८/१३-१४

२३. स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/१६-१७

२४. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/७७

२५. अग्निपुराण-३७२/७-८

२६. कूर्मपुराण-उ/११/१७, नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/७८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न चुराना, यहाँ तक कि मानसिक, भौतिक और वाचिक संकट में नहीं चुराना 'अस्तेय' है।[२७] स्कन्दपुराण के अनुसार अपने ऊपर आपत्ति पड़ने पर भी मन, वाणी और क्रिया द्वारा किसी प्रकार भी दूसरों का धन न लेना अस्तेय कहलाता है।[२८] अग्निपुराण के अनुसार यदि मनुष्य बलपूर्वक दूसरे की वस्तु का अपहरण करता है, तो उसे अवश्य तिर्यग्योनि में जन्म लेना पड़ता है।[२९]

मन, वाणी तथा कर्म के द्वारा सभी अवस्थाओं में सर्वदा सर्वत्र मैथुन का त्याग करना 'ब्रह्मचर्य' कहलाता है।[३०] लिङ्गपुराण का भी यही मन्तव्य है।[३१] स्कन्दपुराण के अनुसार मन, वाणी, शरीर और क्रिया द्वारा मैथुन से सर्वथा दूर रहना यह 'संन्यासियों का ब्रह्मचर्य' है तथा ऋतुकाल में अपनी ही पत्नी के साथ केवल एक बार समागम करना तथा अन्य समय में पूर्ण संयम रखना 'गृहस्थों का ब्रह्मचर्य' है।[३२] अग्निपुराण के अनुसार 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं मैथुन के त्याग को। मैथुन आठ प्रकार का होता है। स्त्री का स्मरण, उसकी चर्चा, उसके साथ क्रीड़ा करना, उसकी ओर देखना, उससे लुक-छिपकर बातें करना, उसे पाने का संकल्प, उसके लिए उद्योग तथा क्रियानिर्वृत्ति-ये मैथुन के आठ अङ्ग हैं। ब्रह्मचर्य ही सम्पूर्ण शुभकर्मों की सिद्धि का मूल है, उसके बिना सारी क्रिया निष्फल हो जाती है।[३३]

आपत्तिकाल में भी इच्छापूर्वक द्रव्यों को ग्रहण न करना 'अपरिग्रह' कहा गया है। प्रयत्नपूर्वक उस 'अपरिग्रह' का पालन करना चाहिए।[३४] यह योगमार्ग में उत्तम सिद्धि प्रदान करने वाला है।[३५] स्कन्दपुराण के अनुसार मन, वाणी, शरीर और क्रिया द्वारा सब वस्तुओं का त्याग कर देना यह संन्यासियों का 'अपरिग्रह' है तथा सब वस्तुओं का संग्रह करते हुए भी केवल मन से उनका त्याग करना-उनके प्रति ममता और आसक्ति का न होना-यह गृहस्थों का 'अपरिग्रह' माना गया है।[३६]

जो अपना उत्कर्ष दताते हुए किसी के प्रति अत्यन्त कठोर वचन बोलता है, उसके उस क्रूरतापूर्ण भाव को धर्मज्ञ पुरुष 'क्रोध' कहते हैं। इसके विपरीत शान्तभाव का नाम अक्रोध हैं।[३७]

---

२७. लिङ्गपुराण-पृ०/८/१५
२८. स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/१७-१८
२९. अग्निपुराण-३७२/१४-१५
३०. कूर्मपुराण-उ/११/१८, नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/७९
३१. लिङ्गपुराण-पृ०/८/१७
३२. स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/१८-१९
३३. अग्निपुराण-३७२/९-११
३४. कूर्मपुराण-उ/११/१९
३५. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/८३
३६. स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/१९-२०
३७. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/८४

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धन आदि के द्वारा किसी को बढ़ते देखकर ईर्ष्या के कारण जो मन में संताप होता है, उसे असूया कहा गया है। इस असूया का त्याग ही 'अनसूया' है।[३८]

नियम

तप, स्वाध्याय, सन्तोष, शौच तथा ईश्वर का पूजन-संक्षेप में 'नियम' बतलाए गए हैं। ये योगसिद्धि प्रदान करने वाले हैं।[३९] स्कन्दपुराण के अनुसार शौच, सन्तोष, तप, जप और गुरुभक्ति-ये पाँच 'नियम' हैं।[४०] नारदपुराण के अनुसार तप, स्वाध्याय, सन्तोष, शौच, भगवान् विष्णु की आराधना तथा सन्ध्योपासना आदि 'नियम' कहे गए हैं।[४१] श्रीमद्देवीभागवत पुराण में 'नियम' दस बताए गए हैं-तप, सन्तोष, आस्तिकभाव, दान, देवताओं का पूजन, शास्त्रसिद्धान्त का श्रवण, बुरे कामों में लज्जा, सद्बुद्धि, जप और हवन।[४२] लिङ्गपुराण में भी 'नियम' दस बताए गए हैं जिनका नामोल्लेख आगे किया जा रहा है-शौच (स्वच्छता), इज्या (बलि), तप, दान, स्वाध्याय, प्रजनन अङ्गों का निग्रह, व्रत, उपवास, मौन और स्नान।[४३] श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार नियमों की संख्या बारह है-शौच, जप, तप, हवन, श्रद्धा, अतिथिसेवा, भगवत्पूजा, तीर्थयात्रा, परोपकार की चेष्टा, सन्तोष और कुरुसेवा।[४४]

तपस्वियों ने पराक आदि उपवासों तथा कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतों के द्वारा शरीर के शोषण को उत्तम 'तप' कहा है।[४५] स्कन्दपुराण के अनुसार अपने आहार को घटाते हुए साधक पुरुष जो चान्द्रायण आदि विहित 'तप' का अनुष्ठान करता है, उसका नाम 'तप' है।[४६] अग्निपुराण के अनुसार मन और इन्द्रियों की एकाग्रता को 'तप' कहते हैं। मन और इन्द्रियों पर विजय पाना सब धर्मों से श्रेष्ठ धर्म कहलाता है। 'तप' तीन प्रकार का होता है-वाचिक, मानसिक और शारीरिक। मन्त्रजप आदि वाचिक, आसक्ति का त्याग मानसिक और देवपूजन आदि शारीरिक तप है। यह तीनों प्रकार का 'तप' सब कुछ देने वाला है।[४७]

विद्वान् लोगों ने वेदान्तशास्त्र, शतरुद्रीय और प्रणव आदि के जप को पुरुषों के लिए सत्त्व की शुद्धि करने वाला 'स्वाध्याय' कहा है। 'स्वाध्याय' के तीन भेद हैं- वाचिक, उपांशु और मानस। वेदार्थ जानने

३८. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/८५
३९. कूर्मपुराण-उ/११/२०
४०. स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/२१
४१. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/८७
४२. श्रीमद्देवीभागवत पुराण-७/३५/७
४३. लिङ्गपुराण-पृ०/८/२९-३०
४४. श्रीमद्भागवतपुराण-११/१९/३४
४५. कूर्मपुराण-उ/११/२१, लिङ्गपुराण-पृ०/८/३८
४६. स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/२४
४७. अग्निपुराण-३७२/१९-२१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वालों ने इन तीनों नें उत्तरोत्तर का वैशिष्ट्य कहा है अर्थात् वाचिक स्वाध्याय से उपांशु स्वाध्याय श्रेष्ठ और उपांशु स्वाध्याय से मानस स्वाध्याय श्रेष्ठ है। दूसरे सुननेवाले को स्पष्टरूप से शब्द का ज्ञान उत्पन्न करने वाला स्वाध्याय वाचिक कहलाता है जो दूसरों को स्पष्ट सुनायी पड़े। ओठों में केवल स्पन्दन होने के कारण दूसरे को शब्द का बोध न कराने वाला स्वाध्याय उपांशु कहलाता है। यह वाचिक जप से हजार गुनाश्रेष्ठ है। स्पन्दन रहित अक्षर एवं उस पद की संगति के अनुसार सभी शब्दों के चिन्तन को विद्वान् मानस जप कहते हैं।[४८] नारदपुराण के अनुसार ॐकार , उपनिषद्, द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय), अष्टाक्षरमन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) तथा तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के समुदाय का जो जप, अध्ययन एवं विचार है, उसे 'स्वाध्याय' कहा गया है। यह भी योग का उत्तम साधन है। जो मूढ 'स्वाध्याय' छोड़ देता है, उसका योग सिद्ध नहीं होता। किन्तु योग के बिना भी केवल 'स्वाध्यायमात्र' से मनुष्यों के पाप का नाश हो जाता है। 'स्वाध्याय' से सन्तुष्ट किए हुए इष्टदेवता प्रसन्न होते है।[४९] अग्निपुराण में प्रणव पर विशिष्ट चर्चा प्राप्त होती है। इसके अनुसार वेद प्रणव से ही आरम्भ होते हैं, अतः प्रणव में सम्पूर्ण वेदों की स्थिति है। वाणी का जितना भी विषय है, सब प्रणव है, इसलिए प्रणव का अभ्यास करना चाहिए। यह स्वाध्याय के अन्तर्गत है। प्रणव अर्थात् ओंकार में अकार, उकार तथा अर्धमात्रावशिष्ट मकार है। तीनों मात्राएँ तीनों वेद, भू- आदि तीनों लोक, तीन गुण, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति-ये तीन अवस्थाएँ तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव-ये तीनों देवता प्रणवरूप हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र, स्कन्द, देवी और महेश्वर तथा प्रद्युम्न, श्री और वासुदेव-ये सब क्रमशः ॐकार के ही स्वरूप हैं। ॐकार मात्रा से रहित और अनेक मात्राओं से युक्त है। वह द्वैत की निवृत्ति करने वाला तथा शिवस्वरूप है। ऐसे ॐकार को जिसने जान लिया, वही मुनि है, दूसरा नहीं।[५०]

पुरुष को जो यदृच्छापूर्वक मिल जाता है, उसे ही पर्याप्त समझनेवाली बुद्धि को ऋषिलोग नित्य सुख लक्षणवाला सन्तोष कहते हैं।[५१] लिङ्गपुराण के अनुसार उचित माध्यम से प्राप्त जीविका से सन्तुष्टि प्राप्त करने वाला व्रती सन्तोषी है। वह अपनी आवश्यकताओं से चिन्तित नहीं रहता।[५२] स्कन्दपुराण के अनुसार न्याय से प्राप्त हुई जीविका या भिक्षा अथवा वार्ता (कृषि-वाणिज्य आदि) के द्वारा जो कुछ प्राप्त हो, उसी से सदा सन्तुष्ट रहना सन्तोष कहलाता है।[५३] नारदपुराण के अनुसार प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाए, उसी से प्रसन्न रहना सन्तोष कहलाता है। सन्तोषहीन पुरुष कभी सुख नहीं पाता। भोगों की कामना भोग्य वस्तुओं को भोग लेने से शान्त नहीं होती, अपितु इससे भी

---

४८. कूर्मपुराण-उ/११/२२-२६, लिङ्गपुराण-पृ०/८/३९

४९. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/८९-९१

५०. अग्निपुराण-३७२/२१-२५

५१. कूर्मपुराण-उ/११/२७

५२. लिङ्गपुराण-पृ०/८/३७-३८

५३. स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/२३

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिक भोग मुझे कब मिलेगा-इस प्रकार की कामना बढ़ती रहती है। अतः कामना का त्याग करके दैवात् जो कुछ मिले, उसी से सन्तुष्ट रहकर मनुष्य को धर्म के पालन में लगे रहना चाहिए।[५४]

बाह्य और आभ्यन्तर-भेद से 'शौच' दो प्रकार का कहा गया है। मिट्टी और जल से होने वाला 'शौच' बाह्य 'शौच' और मन की शुद्धि आभ्यन्तर 'शौच' है।[५५] लिङ्गपुराण के अनुसार बाह्य शुचिता वाले को आन्तरिक शुचिता का अभ्यास करना चाहिए। विधि के अनुसार पवित्र स्नान करना चाहिए। यह स्नान तीन प्रकार का होता है-आग्नेय, वारूण तथा ब्राह्म। बाह्य स्नान करने के उपरान्त आन्तरिक स्नान का अभ्यास करना चाहिए। आन्तरिक शुचिता से रहित व्यक्ति सारे शरीर पर मिट्टी का लेप करके तीर्थ के जलों से स्नान करके भी अपवित्र है। आन्तरिक शुचिता का अभ्यास करना चाहिए। आन्तरिक शुचिता इस प्रकार बताई गई है-व्यक्ति को विरक्ति रूपी पवित्र राख श्रद्धा से लपेटनी चाहिए और आत्मज्ञानरूपी जल में स्नान करना चाहिए। इस प्रकार आन्तरिक शुचिता प्राप्त की जा सकती है। सिद्धियों की प्राप्ति शुद्ध व्यक्ति को हो सकती है, अशुद्ध व्यक्ति को नहीं।[५६] नारदपुराण के अनुसार जो आन्तरिक शुद्धि से रहित होकर केवल बाहर से शरीर को शुद्ध करता है, वह ऊपर से सजाए हुए मदिरा पात्र की तरह अपवित्र होता है, उसे शान्ति नहीं मिलती। जो मानसिक शुद्धि से हीन होकर तीर्थयात्रा करते हैं, उन्हें वे तीर्थ उसी तरह पवित्र नहीं करते जैसे मदिरा से भरे हुए पात्र को नदियाँ। जो वाणी से धर्मों का उपदेश देता हो और मन से पाप की इच्छा रखता है, उसे महापातकियों का सिरमौर समझना चाहिए। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, वे यदि परम उत्तम धर्ममार्ग का आचरण करते हैं तो उसका फल अक्षय और सुखदायक हो जाता है।[५७]

मन, वाणी तथा कर्म द्वारा स्तुति, स्मरण तथा पूजा करते हुए शिव में अचल भक्ति रखना-यह 'ईश्वर का पूजन' है।[५८] नारदपुराण के अनुसार मन, वाणी और क्रिया द्वारा स्तुति, कथाश्रवण तथा पूजा करने से भगवान् विष्णु की 'आराधना' कही गई है।[५९]

भगवान् शिव ही ज्ञानस्वरूप गुरु हैं, उनमें जो भक्ति की जाती है, वही 'गुरुभक्ति' मानी जाती है।[६०]

विष्णुपुराण में कहा गया है कि संयतचित्त होकर 'नियम' का पालन करना चाहिए तथा मन को निरन्तर परब्रह्म में लगाना चाहिए।[६१]

---

५४. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/९७-९९
५५. कूर्मपुराण-उ/११/२८, स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/२२
५६. लिङ्गपुराण-पू०/८/३२-३७
५७. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/१०४-१०८
५८. कूर्मपुराण-उ/११/२९
५९. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/१०९
६०. स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/२५
६१. विष्णुपुराण-६/७/३७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आसन

यम और नियमों द्वारा बुद्धि को स्थिर करके जितेन्द्रिय पुरुष को योग-साधना के अनुकूल 'आसन' का विधिपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।[६२]

कूर्मपुराण में स्वस्तिकासन, पद्मासन तथा अर्धासन-भेद से 'आसन' तीन प्रकार का कहा गया है। सभी साधनों में यह साधन उत्तम है। अपने दोनों ऊरुओं के ऊपर दोनों पादतलों को रखकर बैठने को उत्तम पद्म नामक आसन कहा गया है। एक पैर को दूसरे जाँघ के ऊपर रखकर बैठने को अर्धासन कहा जाता है। यह योग का उत्तम साधन है। दोनों पैरों को जानुओं एवं ऊरुओं के भीतर करके बैठने को श्रेष्ठ स्वस्तिक नामक आसन कहा जाता है।[६३]

श्रीमद्देवीभागवत पुराण में पाँच आसन बताए गए हैं-पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन और वीरासन।[६४]

नारदपुराण में पद्मासन, स्वस्तिकासन, पीठासन, सिंहासन, कुक्कुटासन, कुञ्जरासन, कूर्मासन, वज्रासन, वाराहासन, मृगासन, चैलिकासन, क्रौञ्चासन, नालिकासन, सर्वतोभद्रासन, वृषभासन, नागासन, मत्स्यासन, व्याघ्रासन, अर्धचन्द्रासन, दण्डवातासन, शैलासन, खड्गासन, मुद्गरासन, मकरासन, त्रिपथासन, काष्ठासन, स्थाणु-आसन, वैकर्णिकासन, भौमासन और भौमासन को योगसाधन का हेतु बताया गया है। साधक पुरुष को शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों से पृथक् हो ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर गुरुदेव की चरणों में भक्ति रखते हुए उपर्युक्त आसनों में से किसी एक को सिद्ध करके प्राणों को जीतने का अभ्यास करना चाहिए।[६५]

आत्मा के जानने वाले को योगिक सिद्धियों के लिए आसनों को करना चाहिए।[६६]

प्राणायाम

नियमों और यमों का भलीभाँति साधन करके विद्वान् पुरुष को 'प्राणायाम' के लिए सन्नद्ध होना चाहिए, अन्यथा वह योग की सिद्धि नहीं कर सकता।[६७]

---

६२. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/११०-१११

६३. कूर्मपुराण-उ/११/४३-४६

६४. श्रीमद्देवीभागवत पुराण-७/३५/८-९

६५. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/१११-११६

६६. लिङ्गपुराण-पृ०/८/७८

६७. स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/२६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शिवपुराण के अनुसार अपने शरीर में प्रकट हुई जो वायु है, उसको 'प्राण' कहते हैं। उसे रोकना ही उसका आयाम है। इस 'प्राणायाम' के तीन भेद कहे गए हैं। नासिका के एक छिद्र को दबाकर या बन्द करके दूसरे से उदरस्थित वायु को निकालने की क्रिया को 'रेचक' कहते हैं। फिर दूसरे नासिका छिद्र द्वारा वायु से शरीर को धौंकनी की भाँति भरने की क्रिया 'पूरक' कहलाती है। जब साधक भीतर की वायु को न छोड़ता है और न बाहर की वायु को ग्रहण करता है, केवल भरे हुए घड़े की भाँति अविचलभाव से स्थित रहता है, तब उस प्राणात्मक को 'कुम्भक' नाम दिया जाता है। योग के साधक को चाहिए कि वह रेचक आदि तीनों प्राणायामों को न तो बहुत जल्दी-जल्दी करे न बहुत देर से करे। साधक के लिए उद्यत हो क्रम से उसका अभ्यास करना चाहिए।[६८] शिवपुराण के अनुसार 'प्राणायाम' से धृति, मेधा, युवापन, स्थिरता और प्रसन्नता आती है। तप, प्रायश्चित्त, यज्ञ, दान और व्रत आदि जितने भी साधन हैं-ये प्राणायाम की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं हैं।[६९]

विष्णुपुराण के अनुसार अभ्यास के द्वारा जो प्राणवायु को वश में किया जाता है, उसे 'प्राणायाम' समझना चाहिए।[७०] प्राण और अपान का निरोध 'प्राणायाम' है। यह बारह मात्राओं का होती है।[७१] आँख को बंद करन और खोलने में जितना समय लगता है, वह एक मात्रा है।[७२] प्राणों का उपरोध(संयम) करने से उस साधन का नाम 'प्राणायाम' है।[७३]

नारदपुराण के अनुसार जहाँ मनुष्यों की भीड़ न हो और किसी प्रकार का कोलाहल न होता हो, ऐसे एकान्त स्थान में पूर्व, उत्तर अथवा पश्चिम की ओर मुँह करके अभ्यासपूर्वक प्राणायाम करना चाहिए। शरीर के भीतर स्थित वायु का नाम प्राण है। उसके विग्रह (वश में करने की चेष्टा) को आयाम कहते हैं।[७४] जैसे मतवाले गजराज को धीरे-धीरे वश में किया जाता है, उसी प्रकार प्राण को धीरे-धीरे जीतना चाहिए। अन्यथा बड़े-बड़े रोग हो जाते हैं। जो योगी क्रमशः वायु को जीतने का अभ्यास करता है, वह निष्पाप हो जाता है और सब पापों से मुक्त होने पर वह ब्रह्मलोक को प्राप्त हो जाता है।[७५]

---

६८. शिवपुराण-वायवीयसंहिता/उत्तरखण्ड/३७/२२-२५

६९. वही-वायवीयसंहिता/उत्तरखण्ड/३७/४४-४५

७०. विष्णुपुराण-६/७/४०

७१. लिङ्गपुराण-पृ०/८/४६, स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/२९

७२. स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/३०

७३. वही-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/३३

७४. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/११७-११८

७५. वही-पूर्वखण्ड/३३/१२७-१२८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कूर्मपुराण के अनुसार अपनी देह से उत्पन्न वायु को प्राण कहते है और उस वायु का निरोध करना आयाम है। उत्तम, मध्यम तथा अधम के भेद से यह तीन प्रकार का कहा गया है। वही सगर्भ और अगर्भ-भेद से दो प्रकार का है। द्वादश मात्रा (अर्थात् प्रणव का बारह बार जप करने तक) के काल को मन्द प्राणायाम, चौबीस मात्रा के प्राणनिरोध को मध्यम और छत्तीस मात्रा तक के कालतक प्राणनिरोध को उत्तम प्राणायाम कहा गया है।[७६]

तीनों तरह के 'प्राणायाम' में क्रमशः पसीना आना, कम्पन और उत्थान होता है। जब प्राणायाम में निद्रा, चक्कर आना, तरह-तरह की ध्वनि से रोमाञ्च हो जाना, शरीर के अङ्गों में दबाव और कम्पन आदि हो तो यह उत्तम लक्षण है क्योंकि यह आनन्द का आरम्भ है।[७७] निरन्तर अभ्यास से वायु भी सामान्य और सन्तुलित हो जाता है। योगाभ्यास करने वाले पर कोई संकट नहीं रहता। समुचित अभ्यास से प्राणवायु, मन, वाणी और शरीर के दोषों को दूर करके साधक के शरीर को सुरक्षित रखता है। इस प्रकार 'प्राणायाम' के अभ्यास से दोषों का नाश होता है। अभ्यासी श्वास तक पर नियन्त्रण कर लेता है और दिव्य शान्ति आदि गुण प्राप्त होते है। 'प्राणायाम' कर शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद चार गुण होते हैं। शान्ति का अर्थ है पापों का दमन चाहे वे जन्मजात हों या प्राप्त किए हुए। प्रशान्त वाणी पर पूर्ण निरोध है। हर समय और सब तरफ की चमक दीप्ति कहलाती है और मन की स्पष्टता प्रसाद है। प्रसाद चार तरह का होता है। ये है ज्ञानेन्द्रियों, बुद्धि और मारुत के प्रसाद। मारुत, प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान हैं। इन्हें क्रमशः नाग, कर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय भी कहते हैं। इन सबकी स्पष्टता ही प्रसाद है। जो शरीर से प्रयाण करती है वह वायु प्राण कही जाती है। जो आहार और पान आदि को नीचे ले जाती है वब अपान कही जाती है। जो वायु शरीर के झुकने से योग्य बनाती है वह व्यान होती है। यह रोगों को भी उत्तेजित करती है। शरीर के मर्म स्थानों को उत्तेजित और प्रभावित करने वाली वायु उदान है और सब अङ्गों को सामान्य करने वाल वायु समान है। नाग का कार्य उद्गार है और कर्म का उन्मीलन है। कृकल छींकने का कार्य करता है जबकि धनञ्जय घोष(तीव्र ध्वनि) करता है। इन वायुओं का नियन्त्रण ही प्रसाद है। बुद्धि के पर्यायवाची हैं-विस्वर, महत्, प्रज्ञा, मानस, ब्रह्मा, चित्ति, स्मृति, ख्याति, संवित, ईश्वर और मति। 'प्राणायाम' से बुद्धि का प्रसाद प्राप्त होता है। यह बुद्धि दो विपरीत भावों को मिलाती है। अतः इसे विस्वर कहते हैं। यह सभी तत्त्वों में अग्रणी है। अतः महत् कही जाती है। यह प्रज्ञा कही जाती है क्योंकि यह ज्ञान का भण्डार है। यह सोचती है, इसीलिए मानस कहलाती है। यह बड़ी है और फैलती है इसीलिए ब्रह्मा कही जाती है। यह आनन्द के लिए सभी गतिविधियों को एकत्र करती है, इसीलिए इसे चिति कहते हैं। यह वस्तुओं का स्मरण रखती है इसीलिए इसे स्मृति कहते हैं। चूँकि इसे सब जगह ज्ञान के कारण जानी जाती है, इसीलिए इसे ख्याति कहते हैं।

७६. कूर्मपुराण-उ/११/३०-३२

७७. लिङ्गपुराण-पृ०/८/४८-५०, कूर्मपुराण-उ/११/३३

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चूँकि यह सब कुछ प्राप्त कर सकती है इसीलिए इसे संवित कहते हैं। इसे ईश्वर कहते हैं क्योंकि यह सभी तत्त्वों की स्वामिनी हैं। यह मति कही जाती है क्योंकि यह विषयगत और विषयीगत विचारों का उपकरण है। क्योंकि यह सभी वस्तुओं का बोध कराती है और स्वयं बोधवती है, अतः यह बुद्धि कही जाती है। 'प्राणायाम' से बुद्धि का प्रसाद सिद्ध होता है। 'प्राणायाम' से यमी सभी दोषों को जला देता है।[७८]

विद्वान् 'जपयुक्त प्राणायाम' को सगर्भ और 'जपरहित प्राणायाम' को 'अगर्भ' कहते हैं। योगियों के 'प्राणायाम' का यही लक्षण कहा गया है।[७९] प्राणधारणपूर्वक व्याहृति (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्), प्रणव और शीर्षमन्त्रसहित गायत्री का तीन वार जप सगर्भ 'प्राणायाम' कहा जाता है।[८०]

अग्निपुराण के अनुसार इन्द्रियों पर विजय पाने के लिए सगर्भ प्राणायाम ही उत्तम होता है, उसी का अभ्यास करना चाहिए। ज्ञान और वैराग्य से युक्त होकर प्राणायाम के अभ्यास से इन्द्रियों को जीत लेने पर सबपर विजय प्राप्त हो जाती है। जिसे स्वर्ग और नरक कहते है, वह सब इन्द्रियाँ ही हैं। वे ही वश में होने पर स्वर्ग में पहुँचाती हैं और स्वतन्त्र छोड़ देने पर नरक में ले जाती हैं। शरीर को रथ कहते हैं, इन्द्रियाँ ही उसके घोड़े हैं, मन को सारथि कहा गया है और प्राणायाम को चाबूक माना गया है। ज्ञान और वैराग्य की बागडोर में बँधे हुए मन रूपी घोड़े को प्राणायाम से आबद्ध करके जब अच्छी तरह काबू में किया जाता है तो वह धीरे-धीरे स्थिर हो जाता है।[८१]

स्कन्दपुराण के अनुसार जैसे आग में धौंके जाने पर पर्वतीय धातुओं की मैल जल जाती है, उसी प्रकार प्राणायाम से इन्द्रियजनित सम्पूर्ण दोष दग्ध हो जाते हैं। सौ कपिला गायों के दान करने से जो फल प्राप्त होता है, वही 'प्राणायाम' से भी मिल जाता है। इसीलिए योगज पुरुष को सदैव 'प्राणायाम' करना चाहिए।[८२] स्कन्दपुराण में ही शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति एवं प्रसाद को दिव्य गुण मानते हुए परिभाषित किया गया है। स्वाभाविक और आगन्तुक पापों की निवृत्ति तथा उनकी वासनाओं का शमन यह 'शान्ति' नामक प्रथम गुण है। मन और बुद्धि केद्वारा लोभ और मोहरूपी दोषों का पूर्णतया निराकरण करके जो शान्ति की प्राप्ति होती है, उसी को इस लोक में 'प्रशान्ति' कहते हैं। भूत, भविष्य, दूरस्थ तथा अदृश्य पदार्थों का यहाँ भलीभाँति ज्ञान होना ही 'दीप्ति' है। सम्पूर्ण इन्द्रियों की प्रसन्नता तथा बुद्धि और प्राणों की भी निर्मलता को 'प्रसाद' कहा गया है।[८३]

---

७८. लिङ्गपुराण-पृ०/८/५५-७५

७९. कूर्मपुराण-उ/११/३४

८०. वही-उ/११/३५

८१. अग्निपुराण-३७३/१४-१८

८२. स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/३५

८३. वही-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/३५-३९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अग्निपुराण के अनुसार प्राण को जीत लेने पर हिचकी और साँस आदि रोग दूर हो जाते है तथा मल-मूत्रादि के दोष भी धीरे-धीरे कम हो जाते हैं। निरोग होना, तेज चलना, मन में उत्साह होना, स्वर में माधुर्य आना, बल बढ़ना, शरीरवर्ण में स्वच्छता आना तथा सब प्रकार के दोषों का नाश हो जाना-ये प्राणायाम से होने वाले लाभ है।[८४]

वायुपुराण के अनुसार सौ सम्वत्सरों तक प्रत्येक मास कुश के अग्र भाग से जलबिन्दु पान करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल प्राणायाम करने से होता है।[८५] श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार जिस प्रकार वायु और अग्नि से तपाया हुआ सोना अपने मल को त्याग देता है, उसी प्रकार जो योगी प्राणवायु को जीत लेता है, उसका मन बहुत शीघ्र शुद्ध हो जाता है।[८६]

प्रत्याहार

सज्जनों ने स्वभावतः विषयों में विचरण करने वाली इन्द्रियों के निग्रह को 'प्रत्याहार' कहा है।[८७] श्रीमद्देवीभागवत पुराण में भी इसी ओर सङ्केत किया गया है। इन्द्रियाँ स्वच्छन्द रूप से अपने विषयों में विचरती रहती है। उनको बलपूर्वक विषयों से हटाने का नाम 'प्रत्याहार' है।[८८] लिङ्गपुराण के अनुसार मानसिक, शारीरिक और वाणी से शिव प्रणिधान, गुरु पर अटूट श्रद्धा, ज्ञानेन्द्रियों का सांसारिक सुखसे निवारण-यही 'प्रत्याहार' है।[८९] 'प्रत्याहार' से व्यक्ति सभी पापों को जला देता है।[९०] स्कन्दपुराण के अनुसार विषय सेवन से लगे हुए चित्त को विषय की ओर से लौटाने का जो प्रयत्न है, उसे 'प्रत्याहार' बताया गया है। चित्त को संयम में रखना ही 'प्रत्याहार' का मुख्य लक्षण है।[९१] नारदपुराण में कहा गया है कि जो विषयों में फँसी हुई इन्द्रियों को विषयों से सर्वथा समेटकर अपने भीतर रोके रहता है, उसके इस प्रयत्न का नाम 'प्रत्याहार' है। जिन्होंने प्रत्याहार के द्वारा अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है, वे महात्मा पुरुष ध्यान न करने पर भी पुनरावृत्तिरहित परब्रह्म पद को प्राप्त कर लेते हैं। जो इन्द्रियसमुदाय को वश में किये बिना ही ध्यान में तत्पर होता है, उसे मूर्ख समझना चाहिए क्योंकि उसका ध्यान सिद्ध नहीं होता।[९२] अग्निपुराण

---

८४. अग्निपुराण-३७३/१२-१३

८५. वायुपुराण-१०/९२

८६. श्रीमद्भागवतपुराण-३/२८/१०

८७. कूर्मपुराण-उ/११/३८

८८. श्रीमद्देवीभागवत पुराण-७/३५/२१-२२

८९. लिङ्गपुराण-पू०/८/४०-४२

९०. वही-८/७६

९१. स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/४२

९२. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/१२९-१३१

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के अनुसार विषयों के समुद्र में प्रवेश करके वहाँ फँसी हुई इन्द्रियों को जो आहूत करके, अर्थात् लौटाकर अपने अधीन करता है, उनके इस प्रयत्न को 'प्रत्याहार' कहते हैं। जैसे जल में डूबा हुआ मनुष्य उससे निकलने का प्रयत्न करता है, उसी प्रकार संसारसमुद्र में डूबे हुए अपने-आपको स्वयं ही निकालने का प्रयत्न करना चाहिए। भोगरूपी नदी का वेग अत्यन्त बढ़ जाने पर उससे बचने के लिए अत्यन्त सुदृढ़ ज्ञानरूपी वृक्ष का आश्रय लेना चाहिए।[९३]

शिवपुराण के अनुसार अपने-अपने विषय में आसक्त हुई इन्द्रियों को वहाँ से हटाकर जो अपने भीतर निगृहीत करता है, उस साधन को 'प्रत्याहार' कहते हैं। मन और इन्द्रियाँ ही मनुष्य को स्वर्ग और नरक में ले जाने वाली हैं। इसीलिए सुख की इच्छा रखने वाले बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह ज्ञान-वैराग्य का आश्रय ले इन्द्रियरूपी अश्वों को शीघ्र ही काबू में करके स्वयं ही आत्मोद्धार करे।[९४]

धारणा

हृदयकमल, नाभिदेश, मूर्धा तथा पर्वतशिखर आदि स्थानों में चित्त के बन्धन को 'धारणा' कहा जाता है।[९५] श्रीमद्देवीभागवत पुराण में इसका व्यापक वर्णन प्राप्त होता है। इसके अनुसार अँगूठे, एड़ी, घुटने, जाँघ, गुदा, लिङ्ग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, भ्रूमध्य और मस्तक-इन बारह स्थानों में प्राणवायु को विधिपूर्वक धारण किए रहने को 'धारणा' कहा जाता है।[९६] लिङ्गपुराण के अनुसार चित्त का उचित स्थान पर स्थिरीकरण 'धारणा' है।[९७] 'धारणा' से व्यक्ति सभी पापों को जला देता है।[९८] नारदपुराण के अनुसार मनुष्य जिस-जिस वस्तु को देखता है, उसे अपने आत्मा में आत्मस्वरूप समझे और प्रत्याहार द्वारा वश में की हुई इन्द्रियों को अपने आत्मा में ही अन्तर्मुख करके धारण करना चाहिए। इस प्रकार इन्द्रियों को जो आत्मा में धारण करना है, उसी को 'धारणा' कहते हैं।[९९] स्कन्दपुराण के अनुसार जैसे जल पीने की अभिलाषा रखने वाले लोग पत्र और नाल आदि के द्वारा धीरे-धीरे जल पीते हैं, उसी प्रकार योगी पुरुष धारणा द्वारा साधित वायु का धीरे-धीरे पान करता है। गुदा, लिङ्ग, नाभि, हृदय, तालु तथा भ्रूमध्यभाग ललाट में क्रमशः चतुर्दल, षट्दल, द्वादशदल, षोडशदल तथा द्विदल कमल का चिन्तन करके उन सबमें प्राणवायु की धारणा करना चाहिए और धीरे-धीरे एक स्थान में समेटकर दूसरे स्थान में ऊपर उठाते हुए उस प्राण

---

९३. अग्निपुराण-३७३/२०-२१

९४. शिवपुराण-वायवीयसंहिता/उत्तरखण्ड/३७/४५-४८

९५. कूर्मपुराण-उ/११/३९

९६. श्रीमद्देवीभागवत पुराण-७/३५/२२-२४

९७. लिङ्गपुराण-पृ०/८/४२

९८. वही-८/७६

९९. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/१३२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को मस्तक के भीतर ब्रह्मरन्ध्र में स्थापित कर देना चाहिए। गुदा आदि छः अंग और चतुर्दश आदि छः चक्र-इन बारह स्थानों में प्राणवायु की 'धारणा' तथा संकोच करने से सब मिलकर बारह प्राणायाम होते हैं। इसी को 'धारणा' कहते हैं। इस धारणाओं को सिद्ध कर लेने पर योगी पुरुष अक्षर ब्रह्म की समता को प्राप्त हो जाता है।[१००] गरुडपुराण के अनुसार विधिवत् अठारह बार किया गया जो प्राणायाम है, उसे योग में धारणा के नाम से स्वीकार किया गया है। योग के दो तत्त्व को जानने वाले योगीजन ऐसी धारणा की दो आवृत्ति को ही योग कहते हैं। योगियों की पहली धारणा नाड़ी में, दूसरी हृदय में, तीसरी वक्षःस्थल में, चौथी उदर में, पाँचवी कण्ठ में, छठी मुख में, सातवीं नासाग्र पर, आठवीं नेत्र में, नवीं दोनों भौंहों के मध्य और दसवीं मूर्धास्थान में होती है। इस प्रकार योग में धारणा को दस प्रकार का माना गया है। इन दसों धारणाओं में सफलता प्राप्त करके योगी अक्षररूपता को प्राप्त कर लेता है।[१०१] अग्निपुराण के अनुसार ध्येय वस्तु में जो मन की स्थिति होती है, उसे धारणा कहते हैं। इसके दो भेद हैं-'साकार' और 'निराकार'। भगवान् के ध्यान में जो मन को लगाया जाता है , उसे क्रमशः मूर्त और अमूर्त 'धारणा' कहते हैं। इस धारणा से भगवान् की प्राप्ति होती है। जो बाहर का लक्ष्य है, उससे मन जब तक विचलित नहीं होता, तब तक किसी भी प्रदेश में मन की स्थिति को धारणा कहते हैं। देह के भीतर नियत समय तक जो मन को रोक रखा जाता है और वह अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होता, यही अवस्था धारणा कहलाती है।[१०२]

किसी देश (स्थान) विशेष का अवलम्बन कर उसमें बुद्धि की जो एकतान वृत्ति बनी रहती हे और दूसरी वृत्तियों से कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता है, उसे विद्वानों ने 'ध्यान' कहा है।[१०३] श्रीमद्देवीभागवत पुराण अनुसार मन को चेतन आत्मा में समाहित करके उसमें अपने अभीष्ट देवता का 'ध्यान' करने को 'ध्यान' कहा जाता है।[१०४] लिङ्गपुराण के अनुसार धारणा का सामान्य हो जाना ही 'ध्यान' है।[१०५] सांसारिक विषयों को विष के समान मानते हुए ध्यानी अनीश्वरी गुणों को जला देता है।[१०६] अग्निपुराण के अनुसार 'ध्यान' 'ध्यै' धातु से निष्पन्न हुआ है। 'ध्यै' धातु का प्रयोग चिन्तन के अर्थ में होता है। अतः स्थिरचित्त से भगवान् विष्णु का वारंवार चिन्तन करना 'ध्यान' कहलाता है। समस्त उपाधियों

१००.स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/४३-४६

१०१.गरुडपुराण-आचारकाण्ड/२२६/२०-२२

१०२.अग्निपुराण-३७५/१-३

१०३.कूर्मपुराण-उ/११/४०

१०४.श्रीमद्देवीभागवत पुराण-७/३५/२४-२५

१०५.लिङ्गपुराण-पृ०/८/४३

१०६.वही-पृ०/८/७६

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से मुक्त मन सहित आत्मा का ब्रह्मविचार में परायण होना भी ध्यान है। ध्येयरूप आधार में स्थित एवं सजातीय प्रतीतियों से युक्त चित्त को जो विजातीय प्रतीतियों से रहित प्रतीति होती है, उसको भी 'ध्यान' कहते हैं। जिस किसी प्रदेश में ध्येय वस्तु के चिन्तन में एकाग्र हुए चित्त को प्रतीति के साथ जो अभेद भावना होती है, उसका नाम भी 'ध्यान' है। इस प्रकार ध्यानपरायण होकर जो अपने शरीर का परित्याग करता है, वह अपने कुल, स्वजन और मित्रों का उद्धार करके स्वयं भगवत्स्वरूप हो जाता है।[१०७] तत्त्ववेत्तायोगी को चाहिए कि वह ध्याता, ध्यान, ध्येय तथा ध्यान का प्रयोजन-इन चार वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करके योग का अभ्यास करे। योगाभ्यास से मोक्ष तथा आठ प्रकार के महान् ऐश्वर्यों (अणिमा आदि सिद्धियों) की प्राप्ति होती है। जो ज्ञान-वैराग्य से सम्पन्न, श्रद्धालु, क्षमाशील, विष्णुभक्त तथा ध्यान में सदा उत्साह रखने वाला हो, ऐसा पुरुष ही ध्याता माना जाता है। व्यक्त और अव्यक्त, जो कुछ प्रतीत होता है, सब परम ब्रह्म परमात्मा का ही स्वरूप है-इस प्रकार विष्णु का चिन्तन करना ध्यान कहलाता है। सर्वज्ञ परमात्मा श्रीहरि को सम्पूर्ण कलाओं से युक्त तथा निष्कल जानना चाहिए। अणिमादि ऐश्वर्यों की प्राप्ति तथा मोक्ष-ये ध्यान के प्रयोजन हैं। भगवान् विष्णु ही कर्मों के फल की प्राप्ति कराने वाले हैं, अतः उन परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए। वे ही ध्येय हैं। चलते-फिरते, खड़े होते, सोते-जागते, आँख खोलते और आँख मींचते समय भी, शुद्ध या अशुद्ध अवस्था में भी निरन्तर परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए।[१०८] स्कन्दपुराण के अनुसार धारणा में स्थित हुआ साधक जब आधे पल के लिए भी अपने ध्येय (इष्टदेव) से भिन्न चिन्तन न करे तो यह ध्यान की अवस्था है।[१०९] नारद पुराण के अनुसार प्रत्याहार से इन्द्रियों के समुदाय को जीतकर धारणा द्वारा उन इन्द्रियों को दृढ़तापूर्वक हृदय में धारण कर लेने के पश्चात् साधक को उन परमात्मा का ध्यान करना चाहिए जो सबका धारण-पोषण करने वाले हैं और जो कभी अपनी महिमा से च्युत नहीं होते। सम्पूर्ण विश्व उन्हीं का स्वरूप है। ये सर्वत्र व्यापक होने से विष्णु कहलाते हैं। समस्त लोकों के एकमात्र कारण वे ही हैं। उनके नेत्र विकसित कमलदल के समान सुशोभित हैं। मनोहर कुण्डल उनके कानों की शोभा बढ़ाते हैं। उनकी भुजाएँ विशाल हैं। अङ्ग-अङ्ग से उदारता सूचित होती है। सब प्रकार के आभूषण उनके सुन्दर विग्रह की शोभा बढ़ाते हैं। उन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा है। वे दिव्यशक्ति से सम्पन्न हैं। उन्होंने स्वर्णमय यज्ञोपवित धारण कर रखा है। गले में तुलसी की माला पहन रखी है। कौस्तुभमणि से उनकी शोभा और बढ़ गयी है। वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिह्न सुशोभित है। देवता और असुर सभी भगवान् के चरणों में मस्तक नवा रहे हैं। बारह अंगुल विस्तृत तथा आठ दलों से विभूषित अपने हृदयकमल के आसन पर विराजमान सर्वव्यापी अव्यक्तस्वरूप परात्पर परमात्मा का उपयुक्त रूप से ध्यान करना

१०७.अग्निपुराण-३७४/१-५५

१०८.वही-३७४/७-१२

१०९.स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/५२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चाहिए। ध्येय वस्तु में चित्त की वृत्ति का एकाकार हो जाना ही साधु पुरुषों द्वारा ध्यान कहा गया है। दो घडी ध्यान करके भी मनुष्य परम मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। ध्यान से पाप नष्ट हो जाते हैं। ध्यान से मोक्ष मिलता है। ध्यान से भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं तथा ध्यान से सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि हो जाती है। भगवान् के जो-जो स्वरूप हैं, उनमें से किसी का भी एकाग्रतापूर्वक ध्यान करना चाहिए। उस ध्यान से सन्तुष्ट होकर भगवान् विष्णु निश्चय ही मोक्ष देते हैं। ध्येय वस्तु में मन को इस प्रकार स्थिर कर देना चाहिए कि ध्याता और ध्येय की त्रिपुटी का तनिक भी भान न रह जाए। तब साधक ज्ञानरूपी अमृत के सेवन से अमृततत्त्व (परमात्मा) को प्राप्त हो जाता है।[११०]

शिवपुराण के अनुसार ध्येय में स्थित हुए चित्त की जो ध्येयाकार वृत्ति होती है और बीच में दूसरी वृत्ति अन्तर नहीं डालती, उस ध्येयाकार वृत्ति का प्रवाहरूप से बना रहना ध्यान कहलाता है। दूसरी सब वस्तुओं को छोडकर केवल कल्याणकारी परमदेव देवेश्वर शिव का ध्यान करना चाहिए। वे ही सबके परम ध्येय हैं।[१११] ध्यान के दो प्रयोजन हैं। पहला है मोक्ष और दूसरा प्रयोजन है अणिमा आदि सिद्धियों की उपलब्धि। ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान-प्रयोजन-इन चारों को अच्छी तरह जानकर योगवेत्ता पुरुष को योग का अभ्यास करना चाहिए। जो ज्ञान और वैराग्य से सम्पन्न, श्रद्धालु, क्षमाशील, ममतारहित तथा सदा उत्साह रखने वाला है, ऐसा पुरुष ही ध्याता कहा गया है अर्थात् वही ध्यान करने में सफल हो सकता है। साधक को चाहिए कि वह जप से थकने पर फिर ध्यान करे और ध्यान से थकने जाने पर पुनः जप करे। इस तरह जप और ध्यान में लगे हुए पुरुष का योग जल्दी सिद्ध हो जाता है।[११२]

समाधि

जो चैतन्यस्वरूप से युक्त और प्रशान्त समुद्र की भाँति स्थिर हो, जिसमें आत्मा के सिवा अन्य किसी वस्तु की प्रतीति न होती हो, उस ध्यान को समाधि कहते हैं। जो ध्यान के समय अपने चित्त को ध्येय में लगाकर वायुहीन प्रदेश में जलती हुई अग्निशिखा की भाँति अविचल और स्थिरभाव से बैठा रहता है, वह योगी समाधिस्थ कहलाता है।[११३]

किसी देश या अन्य आलम्बन से रहित चित्त की एकाकारता समाधि है। इसमें ध्येय मात्र का भान होता है। यह योग का उत्तम साधन है। बारह प्राणायामपर्यन्त धारणा, बारह धारणापर्यन्त ध्यान और बारह

११०.नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/१३३-१४२

१११.शिवपुराण-वायवीयसंहिता/उत्तरखण्ड/३७/५१-५४

११२.वही-वायवीयसंहिता/उत्तरखण्ड/३७/५६-५९

११३.अग्निपुराण-३७५/१-२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ध्यानपर्यन्त 'समाधि' कही जाती है।[११४] श्रीमद्देवीभागवत पुराण के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा में नित्य समत्वभाव-दोनों के ऐक्य को 'समाधि' कहा जाता है।[११५] लिङ्गपुराण के अनुसार विचार के साथ किया गया ध्यान 'समाधि' है। 'समाधि' में चित्त और ध्यान का केन्द्रीकरण है। इसमें बाहरी वस्तु पर विचार वर्जित है। 'समाधि' में मात्र उच्चतम चेतना रह जाती है मानो यह शरीर से रहित शून्यमात्र में हो।[११६] 'समाधि' से बुद्धि की क्षमता बढ़ानी चाहिए। योग के आठों अङ्गों का अभ्यास समुचित स्थान की प्राप्ति के बाद ही करना चाहिए।[११७]

स्कन्दपुराण के अनुसार जो शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध तथा रूप से सर्वथा रहित है, उस परमपुरुष परमात्मा को प्राप्त हुआ योगी 'समाधिस्थ' कहलाता है। समाधि में स्थित हुआ मनुष्य कभी विघ्नों से अभिभूत नहीं होता। भारी-से-भारी दुःख क्यों न आ जाए, वह उससे विचलित नहीं होता। उसके कानों के पास यदि सैकडों शंख फूँके जाएँ और बहुत से नगाड़े पीटे जाएँ तो भी वह बाहर के शब्दों को नहीं सुनता। कोड़ों के प्रहार से उसे घायल कर दिया जाए, आग से उसका शरीर जला दिया जाए तथा सर्दी से भरे हुए भयंकर स्थान में बैठा दिया जाए, तो भी वह बाहर के स्पर्श का अनुभव नहीं करता। फिर वैसे पुरुष के लिए बाहरी, रूप, गन्ध और रस के विषय में तो कहना ही क्या ? जो इस प्रकार आत्मा का साक्षात्कार करके पुनः समाधि को प्राप्त करता है, उसे भूख और प्यास कभी बाधा नहीं पहुँचा सकती। निश्चल समाधि को प्राप्तकर मनुष्य जिस सुख का अनुभव करता है, वह न तो स्वर्गलोक में है और न पाताल में ही है, फिर मनुष्यलोक में तो वह हो ही कहाँ सकता है।[११८]

नारदपुराण में समाधि को परिभषित करते हुए कहा गया है कि निरन्तर ध्यान करने से ध्येय वस्तु के साथ अपना अभेदभाव स्पष्ट अनुभव हो जाता है। जिसकी सब इन्द्रियाँ विषयों से निवृत्त हो जाती हैं और वह परमानन्द से पूर्ण हो वायुशून्य स्थान में जलते हुए दीपक की भाँति अविचलभाव से ध्यान में स्थित हो जाता है, तो उसकी इस ध्योयाकार स्थिति को समाधि कहते हैं। योगी पुरुष समाधि अवस्था में न देखता है, न सुनता है, न सूँघता है, न स्पर्श करता है और न वह कुछ बोलता ही है। उस अवस्था में योगियों क सम्पूर्ण उपाधियों से मुक्त, शुद्ध, निर्मल, सच्चिदानन्दस्वरूप तथा अविचल आत्मा का साक्षात्कार होता है। यह आत्मा परम ज्योतिर्मय तथा अमेय है। जो माया के अधीन हैं, उन्हीं को वह मायायुक्त सा प्रतीत होता है। उस माया का निवारण होने पर वह निर्मल ब्रह्मरूप से प्रकाशित होता है। वह ब्रह्म एक, अद्वितीय, परमज्योतिःस्वरूप, निरञ्जन तथा सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तर्यामी आत्मारूप

११४.कूर्मपुराण-उ/११/४१

११५.श्रीमद्देवीभागवत पुराण-७/३५/२५-२६

११६.लिङ्गपुराण-पृ०/८/४३-४४

११७.वही-पृ०/८/७७

११८.स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड/५५/५३-६०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से स्थित है। परमात्मा सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म और महान से भी अत्यन्त महान है। वह सनातन परमेश्वर समस्त विश्व का कारण है। ज्ञानियों में श्रेष्ठ पुरुष परम पवित्र परात्पर ब्रह्मरूप में उसका दर्शन करते हैं। अकार से लेकर हकार तक के भिन्न-भिन्न वर्णों के रूप में स्थित अनादि पुराणपुरुष परमात्मा को ही शब्दब्रह्म कहा गया है और जो विशुद्ध, अक्षर, नित्य, पूर्ण, हृदयाकाश के मध्य विराजमान अथवा आकाश में व्याप्त, आनन्दमय, निर्मल एवं शान्त तत्त्व है, उसी को परब्रह्म परमात्मा कहते हैं।[११९]

शिवपुराण में कहा गया है कि 'समाधि' से सर्वत्र बुद्धि का प्रकाश फैलता है। जिस ध्यान में केवल ध्येय ही अर्थरूप से भासता है, ध्याता निश्चल महासागर के समान स्थिरभाव से स्थित रहता है और ध्यानस्वरूप से शून्य सा हो जाता है, उसे 'समाधि' कहते हैं। जो योगी ध्येय में चित्त को लगाकर सुस्थिरभाव से उसे देखता है और बुझी हुई आग के समान शान्त रहता है, वह 'समाधिस्थ' कहलाता है।[१२०] जैसे वायुरहित स्थान में रखा हुआ दीपक कभी हिलता नहीं है-निःस्पन्द बना रहता है, उसी तरह 'समाधिनिष्ठ' शुद्ध चित्त योगी भी उस 'समाधि' से कभी विचलित नही होता-सुस्थिरभाव से स्थिर रहता है। इस प्रकार उत्तम योग का अभ्यास करने वाले योगी के सारे अन्तराय शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण विघ्न भी धीरे-धीरे दूर हो जाते हैं।[१२१]

मान, अपमान, सुख, दुःख, बन्धु, साधु, मित्र, अमित्र, उदासीन, द्वेषी, मिट्टी के ढेले और सुवर्ण इत्यादि में समानबुद्धि रखनेवाला, जितेन्द्रिय, विज्ञानी और जितात्मा साधक को तबतक योग का अभ्यास करना चाहिए जबतक योग की सिद्धि न हो जाए। जो सन्तप्त हो, श्रान्त हो, व्याकुल, क्षुधित अथवा व्यग्रचित्त हो, उसे योगाभ्यास नहीं करना चाहिए। अतिशीतकाल अथवा अति उष्णकाल, अग्नि, वायु और जल की अधिकता वाले देश में, जिस स्थान में ध्वनि अधिक हो, जो टूटा-फूटा हो, गोष्ठ, अग्नि के निकट, जल के निकट, कूप के निकट, श्मशान, नदी, दीवार के निकट तथा जहाँ शुष्क पर्ण का शब्द सुनाई पड़ता हो, चैत्यवृक्ष के नीचे, वल्मीक वाले स्थान में और पिशाचादि से युक्त स्थान में योगपरायण योगी को अभ्यास नहीं करना चाहिए। स्मृति का लोप होना, गूँगापन, बधिरता, मन्दता, ज्वर, जड़ता-ये सब विकार योगाभ्याससम्बन्धी दोषों के अज्ञान से योगी को होते हैं। योगाभ्यासी को ये सब दोषपूर्ण स्थान त्याग देना चाहिए, ऐसा नहीं करने से अवश्य ही स्मृतिलोप आदि दोष होते हैं। योगी को सदा थोड़ा भोजन करना चाहिए, बिना भोजन किए नहीं रहना चाहिए। न बहुत सोना चाहिए

---

११९. नारदपुराण-पूर्वखण्ड/३३/१४३-१५१

१२०. शिवपुराण-वायवीयसंहिता/उत्तरखण्ड/३७/६१-६३

१२१. वही-वायवीयसंहिता/उत्तरखण्ड/३७/६६-६७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न बहुत जागना चाहिए। उसे सम्पूर्ण इच्छाओं और कामनाओं का त्याग कर देना चाहिए। बुद्धि से सब इन्द्रियों को वश में करके शनैः शनैः ऐन्द्रिय विषयों से विरत हो जान चाहिए।[१२२]

यदि समय और स्थान उचित न हो तो योग की झलक भी प्राप्त नहीं की जा सकती है। अग्नि के पास, जल में, सूखी पत्तियों के ढेर पर, प्राणियों से व्याप्त, श्मशान में, जर्जर, गोशाला में, चौराहे पर, कोलाहलयुक्त स्थान में, भय उत्पन्न करने वाली जगह में, मठ में, चींटी की बॉबी के पास, अशुभ स्थान पर, दुष्टों से आक्रान्त स्थान पर और मच्छरों से युक्त स्थानों पर योगाभ्यास नहीं करना चाहिए। जब शरीर रोगग्रस्त हो या मन दुःखी हो तो योगाभ्यास नहीं करना चाहिए। साधक को प्रसन्न मन से योगाङ्गों का अभ्यास करना चाहिए। स्थान सुरक्षित, शुभ सुखद होना चाहिए या पर्वत की गुफा या शिव का मन्दिर या सुरक्षित उद्यान या घर की ही कोई स्थान जो मनुष्यों और पुरुषों से रहित हो। स्थान स्वच्छ गोबर से लिपा हुआ और अच्छे ढंग से सजा हुआ और दर्पण की तरह साफ होना चाहिए। चारों तरफ पुष्प बिखरे होने चाहिए। वह स्थान नाना प्रकार के पुष्पों, पल्लवों, फलों, मूलों और कुश घास से बने हुए छत से ढका होना चाहिए। साधक को सन्तुलित आसन में बैठना चाहिए। साधक को गुरु, भगवान् शिव, देवी और विनायक एवं योगी गुरुओं और उनके शिष्यों को प्रणाम करना चाहिए। उसे (साधक को) स्वस्तिक, पद्मासन या अर्धासन में बैठना चाहिए।[१२३]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि योगसिद्धि के लिए योगाङ्गों को सम्यक् रीति से समझना होगा, तदनुकूल आचरण करना होगा। ऐसा करता हुआ ही मनुष्य योगी कहलाने का अधिकारी होगा। ऐसा योगी जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा तो पाता है, वह लोकोपकारक भी होता है। योगाङ्गों का अभ्यास करने से मानवीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों की भी रक्षा की जा सकती है। योगाभ्यास करता हुआ व्यक्ति शारीरिक तथा मानसिक दोनों दृष्टियों से सबल रहता है।

सन्दर्भग्रन्थसूची

अग्निपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि०स० २०५९

उपाध्याय बलदेव (सम्पादक), अग्निपुराणम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९६६

कल्याणकूर्मपुराणाङ्क, गीताप्रेस, गोरखपुर, १९१९

कल्याणयोगाङ्क, गीताप्रेस, गोरखपुर, २०६५

कल्याणश्रीगणेशपुराणाङ्क, गीताप्रेस, गोरखपुर, २००५

पाण्डेय पण्डित रामतेज (सम्पादक), गरुडपुराणम्, चौखम्बा विद्याभवन, २००५

---

१२२. श्रीगणेशपुराण-क्री०ख०/१४२/५-१६

१२३. लिङ्गपुराण-पृ०/८/७८-८२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शास्त्री पं० द्वारकाप्रसाद शास्त्री (अनुवादक एवं सम्पादक),लिङ्गमहापुराणम्, चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, २००८

शास्त्री रामप्रताप त्रिपाठी (अनुवादक), वायुपुराणम्, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, २००५

श्रीनारदीयमहापुराणम्, राष्ट्रीय-संस्कृत-संस्थान, नई दिल्ली, २००२

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि०स० २०६५

श्रीमद्भागवतमहापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि०स० २०७६

श्रीश्रीविष्णुपुराणम्, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि०स० २०५९

श्रीशिवमहापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि०स० २०७८

श्रीस्कन्दमहापुराणम्, राष्ट्रीय-संस्कृत-संस्थान, नई दिल्ली, २००६

संक्षिप्त गरुडपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि०स० २०६७

संक्षिप्त नारदपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि०स० २०६६

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि०स० २०६६

संक्षिप्त स्कन्दपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि०स० २०६६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कूर्मपुराण और अग्निपुराण में अष्टाङ्गयोग के स्वर

सत्यव्रत वर्मा*

वेद और पुराण भारतीय चिन्तन के मूलाधार हैं। पौराणिक मान्यता के अनुसार तो ब्रह्मा के मूल से पहले निस्सृत होने के कारण पुराण वेद से भी प्राचीनतर हैं[१]। धर्म के स्वरूप में धीरे-धीरे परिवर्तन होने पर वैदिक देवों के स्थान पर नवीन देवकुल का आविर्भाव हुआ और भारतीय क्षितिज पर एक नये धर्म का उदय हुआ, जो पौराणिक धर्म के नाम से ख्यात है। पुराण विद्या की सुगमता तथा भक्तिभाव की उच्छलता के कारण पुराण-साहित्य तथा उसमें प्रतिपादित धर्म को अपूर्व ख्याति मिली है। पुराणों के व्यापक प्रसार और लोकप्रियता का भरपूर सदुपयोग करते हुए उनके प्राचीन संशोधकों, सम्पादकों ने, समय-समय पर, उनमें ऐसी पुराणेतर सामग्री भी भर दी, जिसे वे जन-जन तक पहुँचाने को लालायित थे। भागवत, मत्स्य, विष्णुधर्मोत्तर, गरुड, पद्म आदि पुराणों में इस प्रकार की सामग्री प्रचुर मात्रा में समाहित है। अग्निपुराण में तो यह प्रक्रिया इस पराकाष्ठा तक पहुँच गयी कि वह ज्ञान-विज्ञान का भरा-पूरा विश्वकोष बन गया है। कूर्मपुराण में भी कुछ इस श्रेणी के रोचक विषयों का निरूपण हुआ है। उनमें योगदर्शन-अष्टाङ्गयोग विशेष उल्लेखनीय है। कूर्मपुराण में योग का यह विशद विश्लेषण ईश्वरगीता के अन्तर्गत एक अध्याय (२.११) में हुआ है, जिसके उपदेष्टा महेश्वर परब्रह्म, परमपुरुष, परमात्मा, आत्मा आदि सब कुछ हैं। अग्निपुराणकार ने जम कर पूरे पाँच अध्यायों में योग का प्रतिपादन किया है (३७२-३७६), भले ही उसमें विस्तार का आधिक्य हो। पुराणद्वय का यह योग-दर्शन निश्चय ही प्राचीन परम्परा तथा मान्य ग्रन्थों से प्रेरित रहा होगा, किन्तु उसमें कुछ भिन्नताएँ अथवा नवीनताएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं, जिनका विश्लेषण योग-विमर्श को समृद्धता प्रदान करेगा।

रोचक संयोग है कि कूर्मपुराण तथा अग्निपुराण दोनों में योग का प्रतिपादन उसके उद्देश्य, महत्त्व के निरूपण से आरम्भ हुआ है। कूर्मपुराण में यह प्रयोजन-निरूपण अधिक व्यवस्थित तथा विस्तृत है। उसके अनुसार योग-साधना का चरम उद्देश्य आत्मा का साक्षात् दर्शन करना है, जो अपने शुद्ध रूप में परमात्मा से भिन्न नहीं है (येनात्मानं प्रपश्यन्ति भानुमन्तमिवेश्वरम् (२.११.१)। अग्निपुराण में यही बात प्रकारान्तर

'स्वाध्याय' पु. ५९, वर्ष २०२२, पृ. १३५-१४१. ISSN 2250-0391

* ७/३४, पुरानी आबादी, नामदेव फ्लोर मिल के पास, श्रीगंगानगर – ३३० ००१, M: 08778798755, Email : srinarasimhan05@gmail.com

१. पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।। मत्स्यपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि. सं. २०७६, अ. ५३.३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से कही गयी है । 'ब्रह्म को प्रकाशित करने वाला ज्ञान (भी) योग से सुलभ होता है' । पुराणद्वय की यह मान्यता एक प्रकार से योग शब्द की व्याख्या है, जिसका तात्पर्यार्थ आत्मा और परमात्मा का मिलन (योग) है । वह परम आनन्द की अवस्था है, जिसमें सब दुःखों की निवृत्ति हो जाती है । अग्निपुराण के शब्दों में योग जगत् के त्रिविध दुःखों से मुक्ति पाने का अचूक साधन है (संसारतापमुक्त्यर्थं वक्ष्याम्यष्टाङ्गयोगकम् (३७२.१) । भगवद्गीता के समान कूर्मपुराण की निर्भ्रान्त मान्यता है कि योग की अग्नि समूचे पापों को तत्काल दग्ध कर देती है । उससे साधक को निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है और वह अन्ततः मोक्ष को प्राप्त होता है । योगानुष्ठान का स्तर उन्नत होने पर चित्त के दोषों और क्लेशों का क्षय हो जाता है और ज्ञान की दीप्ति उज्ज्वलता से प्रकाशित होती है, जिसकी परिणति आत्मज्ञान में होती है[२] । पुराण की भाषा में योग और ज्ञान से सम्पन्न योगी महेश्वर पद को प्राप्त करता है – ते विज्ञेया महेश्वराः (२.११.२-४) । अग्निपुराण के विपरीत कूर्मपुराण में योग के दो भेद किये गये हैं – अभाव योग और महा योग, जो सब योगों में उत्तमोत्तम है । जिसमें ध्याता, ध्यान आदि का भान तक समाप्त हो जाता है और केवल ध्येय के शून्य (निर्विकल्पक) स्वरूप निरञ्जन आत्मा का दर्शन होता है और साधक परमेश्वर (महेश्वर) के साथ एकाकार हो जाता है, उसे महायोग कहते हैं (२.११.६)[३] । ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय योग की नाना विधियाँ प्रचलित थीं पर पुराणकार ने उन्हें वेदबाह्य तथा महत्त्वहीन कह कर बहिष्कृत कर दिया है[४] । उनका अनुसरण करनेवाले अभ्यासी परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकते थे (न ते पश्यन्ति मामेकं योगिनो यतमानसाः (२.११.१०) ।

यद्यपि कूर्मपुराण ने पतञ्जलि के योग के लक्षण को यथावद् उद्धृत नहीं किया है, जैसा अग्निपुराणकार ने किया है, किन्तु दोनों ने, लगभग समान रूप से लक्षण को कुछ विस्तार देकर नयी भंगिमा देने की चेष्टा की है । जहाँ पतञ्जलि ने चित्त की समस्त वृत्तियों के निरोध को योग कहा है, वहाँ उक्त दोनों पुराणों के अनुसार योग की सिद्धि तभी होती है, जब चित्त में उठने वाली समस्त वृत्तियों को निरुद्ध कर उन्हें सर्वात्मा परमात्मा में केन्द्रित कर दिया जाता है[५] । यह प्रकारान्तर से योग में भक्ति का समावेश है । इसके संकेत ईश्वरप्रणिधानाद्वा (१.२३), तस्य वाचकः प्रणवः (१.२८) आदि सूत्रों द्वारा योग दर्शन में भी मिलते हैं । भागवतकार ने योग और भक्ति के इस संयोग को और दृढता प्रदान की है । भक्तिमय पुराण के रचयिता के लिये यह बहुत स्वाभाविक था[६] ।

---

२. यह पतञ्जलि के सूत्र 'योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः (२.२८) की स्वतन्त्र व्याख्या है।

३. योगदर्शन में इसे समाधि कहा गया है : 'तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः' (३.३) ।

४. ये चान्ये योगिनां योगाः श्रूयन्ते ग्रन्थविस्तरे ।
सर्वे ते ब्रह्मयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ कूर्मपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि. सं. २०७५, अ. २.११.८

५. मय्येकचित्ततायोगो वृत्त्यन्तरनिरोधतः । वही, अ. २.११.१२
''जीवात्मा एवं परमात्मा में ही अन्तःकरण की वृत्तियों को स्थापित करना उत्तम योग है'' । अग्निपुराण (हिन्दी अनुवाद), गीता प्रेस, गोरखपुर, वि.सं. २०६५, अ. ३७२, पृ. ८१९

६. तस्मात् सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया ।
मय्यावेशितया युक्त एतावान् योगसंग्रहः ॥ भागवतपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि. सं. २०७१, अ. ११.२३.६१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कूर्मपुराण और अग्निपुराण में योग के प्रसिद्ध आठ अंगों का रोचक निरूपण हुआ है । छन्द की विवशता के कारण कूर्मपुराण में उनकी गणना का क्रम उलट-पुलट हो गया है परन्तु उनका विवेचन सुविज्ञात क्रम के अनुसार ही है । अग्निपुराण में धारणा से पूर्व ध्यान की व्याख्या करने से विवेचनक्रम भी भंग हो गया है । कूर्मपुराण के कर्ता ने यम के अन्तर्गत अहिंसा को विशेष गौरव दिया है । उसके लिये अहिंसा सामान्य भाव नहीं है बल्कि परम धर्म और सुख का अक्षय स्रोत है । अपने यथार्थ स्वरूप में अहिंसा सर्वोच्च भाव है । केवल शारीरिक पीडा अथवा प्राणहरण ही हिंसा नहीं है । मन और वाणी से किसी का अहित करना अथवा उसका अहित सोचना भी उतना ही जघन्य है, जितना उसका वध अथवा उसका प्राणहरण करना । इस उच्च आदर्श की पृष्ठभूमि में शास्त्रविहित हिंसा को अहिंसा मानना वदतो व्याघात प्रतीत होता है (२.११.१४-१५) । अग्निपुराणकार ने भी लगभग इसी शैली और स्वर में अहिंसा का निरूपण किया है । ''अहिंसा सबसे उत्तम धर्म है । धर्म के सभी साधन अहिंसा में गतार्थ हो जाते हैं, जैसे हाथी के पाँव में सब पाँव समा जाते हैं''[७] । अग्निपुराण में अहिंसा के दस भेद बता कर उसकी व्यापकता, सूक्ष्मता तथा दुस्साध्यता को दृढता से रेखांकित किया गया है (३७२.५-६) । कूर्मपुराण ने सत्य के विस्तृत आयामों को सहजता तथा विशदता से उजागर किया है । यथार्थ कथनाचारः सत्यं प्रोक्तं द्विजातिभिः (२.११.१६) : जो जैसा है, उसे यथावत्, बिना ननु न च के, कहना सत्य है । सब कुछ सत्य में समाहित है और संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसे सत्य से प्राप्त न किया जा सके (सत्येन सर्वमाप्नोति सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्, २.११.१६) । अग्निपुराण में सत्य के स्वरूप का जो निरूपण हुआ है, उससे उसे और भव्य किन्तु कुछ विवादास्पद आयाम मिला है । जो वचन मनुष्य तथा समाज के लिये हितकारी हो वही (वास्तविक) 'सत्य' है (यद् भूतहितमत्यन्तं वचः, ३७२.६) । 'न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' का विधान वाल्मीकि के समय से ही भारतीय साहित्य में गूँज रहा है !' इस कठोरता से सत्य का अवमूल्यन नहीं हुआ है, बल्कि वह 'परहित' के परीक्षण की आँच में तप कर और उज्ज्वल बन गया है[८] । अग्निपुराण में ब्रह्मचर्य को अपूर्व महत्त्व मिला है । उसके अनुसार ब्रह्मचर्य सम्पूर्ण शुभ कर्मों की सिद्धि का मूल है । उसके बिना सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं । पुराणकार ने मैथुन के आठ भेद तथा नारी की मोहिनी के समक्ष प्रख्यात ऋषि-मुनियों के भी स्खलित होने का उल्लेख कर ब्रह्मचर्य-पालन की दुष्करता का कडा संकेत भी किया

---

७. अग्निपुराण अ. ३६२, पृ. ८१९

८. Kural _ The Great Book of Tiru-Valluvar, ed. C. Rajagopalachari, Bhartiya Vidya Bhavan, Mumbai, 2009, p. 50, Editor's Note.
भगवान् वेदव्यास की व्यावहारिक प्रज्ञा के अनुसार जो सच झूठ के समान हानिकारक, अहितकारी हो, उसे न बोलना ही अच्छा है, किन्तु जो झूठ सच की भाँति लाभकारी, हितकारी हो, उसे बोलने में हिचक नहीं होनी चाहिये। भवेत् सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत् । यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ॥ महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि. सं. २०७१, कर्णपर्व, ६८/३२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है[९]। कूर्मपुराण ने यह सब प्रकारान्तर से एक पद्य में बड़ी कुशलता से समेट लिया है[१०]। विपत्काल में भी आवश्यकता से अधिक धन का संचय न करना सच्चा अपरिग्रह है। (द्रव्याणामप्यनादानमापद्यपि यथेच्छया, २.११.१९)। अग्निपुराण ने अपरिग्रह को कठोरता की चरम सीमा तक पहुँचा दिया है जिससे प्राचीन आदर्श की झलक मिलती है। कौपीन, पादुका, कन्था तथा उत्तरीय के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु का संग्रह करना भी परिग्रह है (३७२. २४-२६)। यह बहुत डरावना विधान है।

नियमों में सम्मिलित तप की कूर्मपुराण में दी गयी परिभाषा अतिवादी है। उसके अनुसार उपवास, चान्द्रायण आदि कठोर व्रतों के नियमित पालन से शरीर को सुखा देना उत्तम तप है (२.११.२१)। भगवद्गीता में ऐसी क्लेशजनक क्रियाओं को आसुरी क्रियाएँ कहा है (१८/६)। अग्निपुराण ने मन और इन्द्रियों की एकाग्रता को तप माना है और उसके वाचिक, मानसिक तथा शारीरिक तीन भेद किये हैं[११]। सुख-दुःख लाभ-हानि आदि द्वन्द्वों में अविचल रह कर वासनाओं को क्षीण करना ही सच्चा तप है। कूर्मपुराण ने 'स्वाध्याय' का सच्चा व्यावहारिक पक्ष दिया है। चित्त की शुद्धि करने वाले सत्साहित्य का अध्ययन तथा प्रणव का जप 'स्वाध्याय' है। स्वाध्याय के सूक्ष्म आयामों का संकेत पुराणकार ने नहीं किया है, यद्यपि उसने स्वाध्याय के तीन भेद – वाचिक, उपांशु, मानस-कर उसे विशदता प्रदान की है (२.११.२२-२६)। अग्निपुराण के अनुसार भी प्रणव का अभ्यास। जप स्वाध्याय का पर्याय है। इस प्रसंग में, पुण्य में, प्रणव के स्वरूप का विस्तृत निरूपण किया गया है, जो रोचक तथा ज्ञानवर्धक है। मन, वचन, कर्म तथा काया से भगवान् शिव में अविचल भक्ति रखना 'ईश्वर-प्रणिधान' है। 'ईश्वर-प्रणिधान' का यह स्वरूप प्रसंग से अनुशासित है। अनन्यभाव तथा समर्पणपूर्वक ईश्वर के चिन्तन-आराधन से कर्तृत्वभाव विगलित हो जाता है, अहंकार लुप्त हो जाता है और चित्त ईर्ष्या, द्वेष आदि तुच्छ भावों से मुक्त होकर निर्मल हो जाता है। कूर्मपुराण में यमों को 'चित्तशुद्धिप्रदाः' और नियमों को 'योगसिद्धिप्रदायिनः' कहा गया है। वस्तुतः यम-नियम के अन्तर्गत सभी भाव, सम्यक्तया पालन करने पर, चित्त को निर्मल बना कर योगानुष्ठान का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इतना अवश्य है कि यमों का सम्बन्ध समाज से है जबकि नियम वैयक्तिक आचरण के भाव हैं। आसन को यद्यपि योगानुष्ठान का सर्वोत्तम साधन कहा गया है, किन्तु कूर्मपुराण में उसका निरूपण अन्त में हुआ है, और उसका लक्षण तक नहीं किया गया है (२.११.४३)। इसका कारण सम्भवतः यह है कि इसके पश्चात् योगाभ्यास का वर्णन है, जो उचित आसन लगा कर विधिपूर्वक किया जाता है। अतः आसन को इसके निकट ही स्थान देना उचित था। अग्निपुराण का आसन का विवरण भगवद्गीता पर आधारित है (६.१२-१४)।

---

९. अग्निपुराण अ. ३६२, पृ. ८१९

१०. कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥ कूर्मपुराण, अ. २.११.१८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

योग-साधना की सफलता के लिये प्राण का शोधन आवश्यक है। प्राणशोधन की सर्वोत्तम विधि प्राणायाम है। प्राणायाम एक प्रकार से योगानुष्ठान का प्राण है। इसीलिये कूर्मपुराण तथा अग्निपुराण में उसका कुछ विस्तार से विश्लेषण किया गया है। दोनों में प्राणायाम का लक्षण एक समान है – शरीर के भीतर रहने वाली वायु को प्राण कहते हैं, उसे रोकने का नाम आयाम है – 'प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्' (२.११.३०)। प्राण को रोकने का अभिप्राय है श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति को अधिक देर तक रोकना, उसे आयाम देना, जैसे पूरक और रेचक के बीच कुम्भक द्वारा किया जाता है। दोनों पुराणों में पहले उसकी अवधि के आधार पर प्राणायाम के तीन भेद किये गये है – अधम (मन्द) / कनिष्ठ (अग्निपुराण), मध्यम तथा उत्तम। बारह, चौबीस तथा छत्तीस पल तक किये जाने वाले प्राणायाम को क्रमशः मन्द, मध्यम तथा उत्तम कहा गया है। तत्पश्चात् उसके अन्य दृष्टि से दो भेद किये गये हैं – सगर्भ, अगर्भ। जिस प्राणायाम में प्रणव का जप साथ-साथ चलता है, उसे सगर्भ प्राणायाम कहते हैं। जो प्राणायाम प्रणव-जप के बिना किया जाता है, वह अगर्भ प्राणायाम है। अग्निपुराण के अनुसार इन्द्रियों पर विजय पाने के लिये सगर्भ प्राणायाम उत्तम है। इन्द्रियों को जीत लेने पर सब पर विजय प्राप्त हो जाती है। मन के घोडे को प्राणायाम से बाँधने पर वह स्थिर हो जाता है।[१२] अग्निपुराण में प्राणायाम के अनुष्ठान के फल का विशद निरूपण है। प्राणायाम के नियमित अभ्यास से शरीर निरोग रहता है, गति में तीव्रता आती है, मन उत्साह से भर जाता है, स्वर स्पष्ट से स्पष्टतर हो जाता है, शरीर की कान्ति उत्तरोत्तर बढती जाती है और सब दुःख नष्ट हो जाते हैं (३७३.१३)। सौ वर्ष से अधिक तक, एक-एक मास के अन्तराल से, कुश की नोंक पर स्थित जल की बूँद पीने का तप करना और प्राणायाम का अभ्यास करना – ये दोनों तप एक समान हैं (३७३.१९)। प्राणायाम का सर्वोत्तम फल, जैसा पतञ्जलि ने कहा है, यह है कि उसके नियमित अभ्यास से ज्ञान को आच्छादित करने वाले कर्मों का आवरण क्षीण हो जाता है, जिससे क्रमशः आत्म-अनात्म के भेद का प्रकाश फैल जाता है (ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्, २.५२)। इसीलिये मनु ने प्राणायाम को परम तप कहा है – प्राणायामाः परमं तपः।

विशेषज्ञों ने योग के आठ अंगों को दो वर्गों में पृथक् पृथक् एकीकृत किया है। यम, नियम, आसन और प्राणायाम योग के बाह्य अंग हैं। धारणा, ध्यान और समाधि उसके आन्तरिक अंग हैं। प्रत्याहार इन दो वर्गों की संयोजक कडी है। कूर्मपुराण और अग्निपुराण में प्रत्याहार का केवल एक पद्य में चलता-सा उल्लेख है। स्वभावतः अपने-अपने विषयों में विचरण करने वाली इन्द्रियों को उनके विषयों से लौटाना, उनका निग्रह करना प्रत्याहार है (२.११.३८)। पतञ्जलि ने योगदर्शन में प्रत्याहार के स्वरूप का बहुत सटीक निरूपण किया है – स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः (२.५४)। इन्द्रियों का स्वभाव है कि वे अपने विषयों की ओर दौडती हैं, किन्तु चित्त के साथ सम्बन्ध के बिना वे उन्हें

---

११. अग्निपुराण अ. ३६२, पृ. ८२०
१२. वही, पृ. ८२२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ग्रहण नहीं कर सकतीं। चित्त का बाह्य विषयों के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं होता। योगाभ्यास के कारण जब चित्त विषयों से विमुख होने लगता है तब इन्द्रियों को भी विषयों के साथ सम्बन्ध होने पर भी, उनका ज्ञान नहीं होता। उस स्थिति में चित्त और इन्द्रियों का स्वरूप एक-जैसा हो जाता है। दोनों को विषयों का ज्ञान नहीं होता। योग के इस स्तर को प्रत्याहार कहते हैं। इन्द्रियों का विषयों से आहरण हो जाता है। वे विषयों से हट जाती है। प्रत्याहार से इन्द्रियाँ पूर्णतया वश में हो जाती हैं (ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्, २.५५)।

धारणा, ध्यान और समाधि का सामूहिक पारिभाषिक नाम 'संयम' है। अग्निपुराण में धारणा का पूरे एक अध्याय में विस्तृत विवेचन किया गया है, यद्यपि उसमें पारिभाषिकता और विस्तार अधिक है। उसमें धारणा का जो लक्षण दिया गया है, वह कूर्मपुराण के लक्षण से भिन्न नहीं है। देह के भीतर हृदयकमल, नाभिचक्र, मूर्धा आदि किसी अंग में अथवा पर्वतशिखर आदि किसी बाह्य लक्ष्य में चित्त को बांधना - एकाग्र करना-'धारणा' कहलाता है (२.११.३८)। यह पतञ्जलि के सूत्र 'देशबन्धश्चित्तस्य' (३.१) का विस्तार मात्र है। धारणा में चित्त एक विषय में एकाग्रता अवश्य प्राप्त करता है, किन्तु अन्य विषय की वृत्ति उभर कर उसे वाधित कर देती है। विषयान्तर को हटा कर चित्त को लक्ष्य देश में केन्द्रित करने के प्रयत्न भी धारणा की सीमा में आते हैं। अग्निपुराण में विष्णु की चार प्रकार की -ऐशानी, आग्नेयी, वारुणी तथा अमृतात्मिका - धारणा करने का उल्लेख किया गया है और व्याख्या द्वारा उनके स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न भी किया है[१३]। अग्निपुराण में ध्यान का भी एक पूरे अध्याय में विस्तार से निरूपण हुआ है। इस विवेचन की एक विशेषता यह है कि उसके अन्तर्गत ध्याता, ध्येय और ध्यान के प्रयोजन के स्वरूप की विस्तृत चर्चा की गयी है, क्योंकि, पुराणकार के अनुसार, उनके सम्यक् ज्ञान के बिना योगाभ्यास सम्भव नहीं है। उनके स्वरूप का विश्लेषण पुराण की वैष्णवी भावना से अनुप्राणित है। ध्यान अन्तःकरण की शुद्धि का प्रमुख साधन और चित्त को वश में करने वाला है। इसीलिये ध्यानयज्ञ सब से श्रेष्ठ तथा मोक्ष रूपी फल देने वाला है। अग्निपुराण ने ध्येय के दो भेद किये हैं। तीन गुणों का ध्यान 'अशुद्ध ध्येय' है। पुरुष (आत्मा) सत्त्वोपाधिक गुणों से अतीत चौबीस तत्त्वों से परे जो पच्चीसवाँ तत्त्व है, वह 'शुद्ध ध्येय' है[१४]। कूर्मपुराण का ध्यान का निरूपण अति संक्षिप्त होता हुआ भी सार पूर्ण है। किसी एक विषय का अवलम्बनकर उसमें बुद्धि(चित्त) की जो एकतान वृत्ति बनी रहती है और उसमें अन्य वृत्ति का उदय नहीं होता, विद्वज्जन उसे 'ध्यान' कहते हैं (२.११.४०)। यह योगदर्शन के 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' (३.२) की प्रतिच्छाया है। चित्त जिस विषय में अवस्थित है, उसी की वृत्ति निरन्तर बनी रहे, विषयान्तर की वृत्ति उदित न हो, यही ध्यान का स्वरूप है। वृत्ति की यह एकतानता जितनी अधिक देर तक बनी रहे, उतनी ही अधिक उसकी श्रेष्ठता है। अग्निपुराण में भी ध्यान का लगभग यही लक्षण दिया गया है -

ध्येयालम्बनसंस्थस्य सदृशप्रत्ययस्य च।
प्रत्ययान्तरनिर्मुक्तः प्रत्ययो ध्यानमुच्यते ॥ ३७४.२

१३. वही, पृ. ८२५
१४. वही, पृ. ८२३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अग्निपुराण ने धारणा और ध्यान की भाँति समाधि का भी विस्तारपूर्वक निरूपण किया है, यद्यपि उसमें विषयान्तरों की भरमार है (३७६), कूर्मपुराण में समाधि के स्वरूप को मात्र एक पद्य में समाहित कर दिया है। किसी (बाह्य-आन्तरिक) आलम्बन के बिना चित्त की एकतानता समाधि है। इसमें ध्येय मात्र का भान होता है। यह योग का उत्तम साधन है (२.११.४१)। ध्यान ही अपनी विशेष अवस्था में समाधि कहा जाता है। ध्याता जब ध्यान में इतना गहरा संलीन हो जाता है कि उसे यह प्रतीति भी न रहे कि वह अमुक ध्येय का ध्यान कर रहा है और जब ध्याता और ध्येय का भेद समाप्त हो जाए, उस अवस्था में केवल ध्येय भासित होता है। वह समाधि की स्थिति है - तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः (३.३)। अग्निपुराण में निरूपित समाधि का स्वरूप योगदर्शन और कूर्मपुराण की परिभाषाओं से भिन्न नहीं है। ''जो चैतन्यस्वरूप से युक्त और प्रशान्त समुद्र की भाँति स्थिर हो, जिसमें आत्मा के सिवा अन्य किसी वस्तु की प्रतीति न हो, उस ध्यान को समाधि कहते हैं''[१५]। स्पष्टतः उसके अनुसार भी 'ध्यान' की समुन्नत अवस्था विशेष ही समाधि है।

कूर्मपुराण में, अन्त में, योगाभ्यास की विधि बताई गयी है। शान्त एवं शुद्ध स्थान में सुविधानुसार स्वस्तिक अथवा पद्मासन लगा कर, अर्धखुली दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर स्थिर करके, और मायामय जगत् को भूलकर अपनी आत्मा में स्थित परमेश्वर का चिन्तन करना चाहिए। शिखा के अग्रभाग में अष्टदल कमल की कल्पना करके उसकी कर्णिका में हिरण्मय श्रेष्ठ कोश का ध्यान करे। उस कोश में स्थित ज्योति से अपनी आत्मा को अभिन्न मान कर आकाश के मध्य में स्थित परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए (२.११.४७-४८)। ध्यान की दूसरी विधि यह है कि पूर्वोक्त हृदयकमल में अग्नि के समान तेजस्वी सनातन तत्त्व महेश्वर का तन्मयता से चिन्तन किया जाए। योगाभ्यास की इस विधि से जीव रूपी पशु को बन्धन रूपी पाश से मुक्ति मिलती है, अतः इसे पाशुपतयोग कहा जाता है। पुराणकार की शब्दावली में यही समूचे वेदान्त का सार है। इसी से पशुपति शिव से सायुज्य प्राप्त होता है (२.११.६०-६८)। पुरुष की नाभि से प्रकट हुए कमल की कर्णिका के मध्य भाग में ओंकारमय ईश्वर का अथवा कमल के ऊपर प्रकृति और पुरुष से भी अतीत विराजमान परमेश्वर का ध्यान करने और अक्षर ओंकार का निरन्तर जप करने की चर्चा अग्निपुराण में भी हुई है[१६]।

उपर्युक्त तुलनात्मक विमर्श से स्पष्ट है कि कूर्मपुराण और अग्निपुराण में निरूपित योग प्राचीन योगदर्शन की थाती लेकर पल्लवित हुआ है। अतः उसके साथ साम्य होना स्वाभाविक था। किन्तु दोनों पुराणों ने परम्परा में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने का साहस किया है। उससे प्राचीन परम्परा को कुछ नयी आभा मिली है।

-----

१५. वही, पृ. ८२६
१६. वही, पृ. ८२४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

અમારાં આગામી પ્રકાશનો...

(૧) ચરકનો સ્વાધ્યાય, ભાગ-૨ (પુનઃપ્રકાશન)

(૨) સોરઠ અને બરડા પ્રદેશનો ઇતિહાસ

(૩) ચાંપાનેર : એક અધ્યયન (પુનઃપ્રકાશન)

(૪) આધુનિક ગુજરાતના સંતો (પુનઃપ્રકાશન)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

योग के अष्टाङ्ग : आयुर्वेदशास्त्रीय अवधारणाएँ

शैलेश कुमार मिश्र*

आयुर्वेद और योगशास्त्र भारत की महनीय आर्ष-परम्परा के महान अवदान हैं। रोग शोकादि से मुक्त कर मनुष्य को आरोग्यमय शरीर और स्वस्थ चित्त प्रदान करने वाले ये दोनों शास्त्र परस्पर सम्बद्ध हैं क्योंकि शारीरिक विकृति के निवारण के लिए चित्तविकृति का निवारण, चित्त की विशुद्धि अत्यावश्यक है। अष्टांग आयुर्वेद और अष्टांग योग के प्रवक्ता ऋषियों को चित्त और देह का घनिष्ठ सम्बन्ध भली-भाँति ज्ञात था, अतः आयुर्वेद के महनीय आचार्यों ने अपने ग्रंथों में योगमार्ग के अनुसरण पर बल दिया है। कतिपय विद्वानों की तो यह मान्यता है कि योगदर्शन के आचार्य महर्षि पतंजलि ने ही चरकसंहिता का प्रतिसंस्करण किया है, अत एव चरकसंहिता में योग के अंगों का विवरण शब्दान्तरेण मिलता है। महाभाष्यकार, योगसूत्रकार तथा चरकसंहिता के रचयिता के रूप में पतंजलि की स्तुति का यह श्लोक विद्वज्जगत् में विश्रुत है–

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य तु वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

चरकसंहिता सूत्रस्थान के आरंभिक श्लोक की टीका करते हुए टीकाकार आचार्य चक्रपाणिदत्त शेषावतार पतंजलि को नमन करते हैं–

पातञ्जलमहाभाष्यचरकप्रतिसंस्कृतैः।
मनोवाक्कायदोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नमः॥[१]

योग का लक्षण प्रतिपादित करते हुए पतंजलि कहते हैं–

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।[२]

अर्थात् चित्तवृत्ति का निरोध योग है। वृत्तिनिरोध का अर्थ है किसी एक इच्छित विषय में चित्त को स्थिर रखना। विषय का अर्थ केवल घट-पट आदि बाह्य द्रव्य नहीं है; मानसिक भाव

'स्वाध्याय' पु. ५९, वर्ष २०२२, पृ. १४३-१५८. ISSN 2250-0391

* राजकीय संस्कृत कॉलेज, कुम्हारटोली, किशोरगंज, राँची- ८३४ ००१ (झारखण्ड), M: 07541933637, Email : shail.vbu@gmail.com

१. चरकसंहिता, १.१ सम्पा, नरेन्द्रनाथ शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, १९२९, सूत्रस्थान (१.१ पर चक्रपाणिदत्त की आयुर्वेददीपिका टीका)

२. योगसूत्र, समाधिपाद, २

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भी ध्येय विषय हो सकता है । जब चित्त में स्थिरता की शक्ति आ जाती है तो कोई भी मनोवृत्ति चित्त में स्थिर रखी जा सकती है । तात्पर्य यह है कि चित्त की बहिर्मुखी वृत्तियों को सांसारिक विषयों से हटाकर अंतर्मुखी कर देना किं वा आत्मस्थ कर देना ही योग है ।

चरकसंहिताकार ने भी शब्दान्तर से पतंजलि के अभिमत को ही प्रकट किया है–

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां सन्निकर्षात्प्रवर्तते ।
सुखदुःखमनारम्भादात्मस्थे मनसि स्थिरे ।।
निवर्तन्ते तदुभयं वशित्वं चोपजायते ।
सशरीरस्य योगज्ञास्तद्योगमृषयो विदुः ।।[३]

चरक का अभिप्राय है कि आत्मा, इन्द्रिय, अर्थ और मन के सन्निकर्ष से सुख और दुःख की उत्पत्ति होती है । जब मन विषयों से हटकर आत्मा में स्थिर हो जाता है तब कर्मो का आरंभ न होने से सुख-दुःख की निवृत्ति हो जाती है, सुख-दुःख समाप्त हो जाते हैं और वशित्व उत्पन्न होता है अर्थात् आत्मा वशी हो जाती है । शरीरयुक्त इस दुःखनिवृत्ति रूप अवस्था को योगविद् योग कहते हैं । पतंजलि जिसे चित्तवृत्तियों का निरोध कहते हैं, आचार्य चरक उसे ही आत्मा के वशी हो जाने की संज्ञा देते हैं । चित्तवृत्तियों के निरोध का तात्पर्य है अभ्यास द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार चित्त को किसी विषय में स्थिर रखना । चरक के कथनानुसार मन के आत्मा में स्थिर हो जाने पर, सुख-दुःख की निवृत्ति हो जाने पर आत्मा का वशी हो जाना ही योग है । दोनों आचार्य चित्त के नियंत्रण का संकेत कर रहे हैं ।

योग के आठ अंगों का उल्लेख करते हुए महर्षि पतंजलि ने सूत्र दिया है–

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।[४]

इनमें प्रथम पाँच यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार योग के पाँच बहिरंग साधनों का निरूपण साधनपाद में तथा शेष तीन अन्तरंग साधनों धारणा, ध्यान और समाधि की व्याख्या विभूतिपाद में की गई है । आयुर्वेदशास्त्र में भी पतंजलिनिरूपित इन अष्टांगों की व्याख्या मिलती है ।

योग का प्रथम अंग यम है जो पाँच विशिष्ट गुणों का समाहार है–

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः ।[५]

---

३. चरकसंहिता, शारीरस्थान १.१३६-१३७

४. योगसूत्र, साधनपाद २९

५. वही, साधनपाद ३०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आचार्य वाग्भट भी अष्टांगहृदय में दिनचर्याध्याय के अंतर्गत हिंसा, स्तेय आदि दुर्गुणों के परित्याग का निर्देश देते हैं–

हिंसास्तेयान्यथाकामं पैशून्यं परुषानृते ।
सम्भिन्नालापव्यापादममिध्यादृग्विपर्ययम् ॥
पापं कर्मेति दशधा कायवाङ्मानसैस्त्यजेत् ।[६]

आचार्य ने स्पष्ट निर्देश दिया है 'पापं कर्मेति दशधा कायवाङ्मानसैस्त्यजेत्'; अर्थात् हिंसा आदि पापकर्म न मन से, न वाणी से और न देह से किये जाने चाहिए। मनोवाक्कायेन अहिंसा का आचरण करना चाहिए। स्तेय और अनृत का त्याग करना चाहिए। आचार्य कहते हैं कि कीट, चींटी आदि क्षुद्र प्राणियों के प्रति भी आत्मीय भाव रखना चाहिए-

आत्मवत् सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकाम् ।[७]

सत्य के आचरण के सम्बन्ध में आचार्य का यह भी निर्देश है कि यथासमय, यथाकाल, हितकारी, सत्य और सीमित वचन बोलना चाहिए–

काले हितं मितं ब्रूयादविसंवादि पेशलम् ।[८]

वाणी के प्रयोग को लेकर वक्ता को इस बात के लिए सचेष्ट रहना चाहिए कि उसकी वाणी सत्य और हितकर हो। इसका समर्थन करते हुए महर्षि व्यास महाभारत में कहते हैं–

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं तु दुष्करम् ।
यद् भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥[९]

अष्टांगहृदयकार ने सत्य के परित्याग का उल्लेख पूर्वनिर्दिष्ट श्लोक में किया है तथा उसे पापकर्मों में परिगणित किया है। आयुर्वेदशास्त्र में ब्रह्मचर्य को लेकर विस्तृत चर्चा की गई है। शरीर को धारण करने वाले तीन उपस्तम्भों (आधारस्तम्भों) का उल्लेख किया गया है–

आहारशयनब्रह्मचर्यैर्युक्त्या प्रयोजितैः ।
शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव धारणैः ॥[१०]

---

६. अष्टांगहृदय, २.२१ सम्पा. अन्ना मोरेश्वर कुंटे, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, १९२५
७. वही, २.२२
८. वही, २.२५
९. महाभारत, शांतिपर्व २८७.२०, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. २०७०
१०. अष्टांगहृदय, ७.५१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

योगियों के लिए ब्रह्मचर्य का वास्तविक रूप सभी इन्द्रियों के निरोधपूर्वक 'उपस्थेन्द्रिय' का संयम करना है। गृहस्थ के संदर्भ में ब्रह्मचर्य की परिभाषा थोडी अलग हो जाती है। ब्रह्मचर्याश्रम के पच्चीस वर्षों तक अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करने के पश्चात् गृहस्थाश्रम में केवल संतानोत्पत्ति के लिए ऋतुकाल में स्त्रीसंभोग करने से ब्रह्मचर्य का व्रत भंग नहीं होता है अतः गृहस्थाश्रम में भी ब्रह्मचर्य का पालन हो सकता है। महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है–

ऋतुकाले स्वदारेषु संगतिर्या विधानतः।
ब्रह्मचर्यं तदेवोक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम्॥[११]

वाग्भट अष्टांगसंग्रह में कहते हैं कि शुक्र शरीर का उत्कृष्ट तेज है। यह आहारसार का भी सारभूत है। संयमी बनकर इस शुक्र की रक्षा करनी चाहिए–

कायस्य तेजः परमं हि शुक्रमाहारसारादपि सारभूतम्।
जितात्मना तत्परिरक्षणीयं ततो वपुः संततिरप्युदारा॥[१२]

इस शास्त्रानुकूल ब्रह्मचर्य के अनुपालन का निर्देश करते हुए अष्टांगसंग्रह में कहा गया है–

त्रिवर्गशून्यं नारम्भं भजेत्तं चाविरोधयन्।[१३]

अर्थात् धर्म, अर्थ और काम के शास्त्रानुकूल निर्देश के विरुद्ध कोई कार्य न करें।

इस पञ्चविध यम के अनुपालन का निर्देश चरकसंहिता में भी प्राप्त होता है। चरकसंहिताकार ने सद्वृत्त के पालन का निर्देश देते हुए सत्य अहिंसादि के अनुसरण का उल्लेख किया है–

नानृतं ब्रूयान्नान्यस्वमाददीत नान्यस्त्रियमभिलषेन्नान्यश्रियं न वैरं रोचयेन्न कुर्यात्पापं...।[१४]

आचार्य का निर्देश है कि असत्यभाषण नहीं करना चाहिए, दूसरे का धन नहीं लेना चाहिए, दूसरे की स्त्री की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए, वैरादि पापकर्म नहीं करने चाहिए। 'न वेगान् धारणीय' नामक अध्याय में आचार्य चरक मलमूत्र वीर्य आदि के वेगधारण को निषिद्ध बतलाते हुए यह भी निर्देश करते हैं कि किस प्रकार के वेगों को धारण करना चाहिए–

इमांस्तु धारयेद् वेगान् हितार्थी प्रेत्य चेह च।
साहसानामशस्तानां मनोवाक्कायकर्मणाम्॥

११. पातंजलयोगप्रदीप, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. २०६१, पृ. ३८४
१२. अष्टांगसंग्रह, ९.८४, अत्रिदेव गुप्त, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, १९५१
१३. वही- २.२९
१४. चरकसंहिता, ८.१९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत् ।
नैर्लज्ज्येर्ष्यातिरागाणामभिध्यायाश्च बुद्धिमान् ॥[१५]

इसी प्रसंग में उन्होंने स्पष्टतः कहा है कि परुषवचन, असत्यवचन, स्तेय, स्त्रीभोग, हिंसा आदि वेगों को रोकना चाहिए–

परुषस्यातिमात्रस्य सूचकस्यानृतस्य च ।
वाक्कायस्याकालयुक्तस्य धारयेद्वेगमुत्थितम् ॥
देहप्रवृत्तिर्या काचिद्विद्यते परपीडया ।
स्त्रीभोगस्तेयहिंसाद्या तस्या वेगान् विधारयेत् ।[१६]

शरीरधारण के लिए तीन उपस्तम्भों की चर्चा के प्रसंग में चरक ब्रह्मचर्य का स्पष्ट निर्देश करते हैं–

त्रय उपस्तम्भा इत्याहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति एभिस्त्रिभिः युक्तियुक्तैरुपस्तब्धमुपस्तम्भैः शरीरं बलवर्णोपचयोपचितमनुवर्तते यावादायुः संस्कारात्..... ।[१७]

टीकाकार चक्रपाणिदत्त ब्रह्मचर्य शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि ब्रह्मचर्य शब्द इन्द्रियसंयम तथा सौमनस्य आदि गुणों का द्योतक है–

ब्रह्मचर्यशब्देन इन्द्रियसंयमसौमनस्यप्रभृतयो ब्रह्मज्ञानगुणा गृह्यन्ते ।[१८]

योग के दूसरे अंग नियम के अंतर्गत पतंजलि शौच, संतोष, ताप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, आदि का उल्लेख करते हैं–

शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।[१९]

शौच अर्थात् शुचिता दो प्रकार की है– बाह्य और आभ्यंतर । शुचिता के परिपालन से ब्रह्मचर्यादि के आचरण में सहायता मिलती है । उत्तेजक मदिरा आदि के पास से इन्द्रियाँ उत्तेजित होती हैं और उससे अशुचिता आती है, व्यक्ति का चित्त मलिन हो जाता है । अतएव अमेध्य आहार विहार से शरीर

---

१५. वही, ७.२६-२७
१६. वही, ७.२८-२९
१७. वही, ११.३५
१८. वही, ११.३५ पर आयुर्वेददीपिका टीका
१९. योगसूत्र, साधनपाद, ३२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में अशुचिता का प्रवेश होता है और चित्त में मलिनता आती है। ऐसा चित्त योग के आचरण के लिए अनुकूल नहीं है।

आचार्य चरक शौचाचरण के लिए उपदेश देते हुए कहते हैं कि प्रातः सायं स्नान और अग्निहोत्र करना चाहिए। मल के स्थानों को तथा पैरों को स्वच्छ रखना चाहिए। केश, दाढी, मूछ, नाखून, कक्ष और गुह्यस्थानों के केश को पाँच-पाँच दिनों के अंतराल पर कटवाना चाहिए। स्वच्छ, शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिए। इस बाह्य शौचाचारों के अतिरिक्त चरक आभ्यन्तर शौच के सम्बन्ध में कहते हैं कि कल्याण चाहने वालों को हितकारी, परिमित और मधुर वाणी बोलनेवाला, वश्यात्मा, चिंताविहीन, निर्भय, रागद्वेषमुक्त, उत्साही, क्षमाशील और आस्तिक होना चाहिए–

देवगोब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धाचार्यानर्चयेत् अग्निमुपाचरेत् ओषधीः प्रशस्ता धारयेत् द्वौ कालावुपस्पृशेत् मलायनेष्वभीक्ष्णं पादयोश्च वैमल्यमादध्यात् त्रिः पक्षस्य केशश्मश्रुलोमनखान्संहारयेत् नित्यमनुपहतवासाः सुमनाः सुगन्धिः स्यात्। काले हितमितमधुरार्थवादी वश्यात्मा.... निर्भीकः ह्रीमान् धीमान् महोत्साहः दक्षः क्षमावान् धार्मिकः आस्तिकः विनयबुद्धिविद्याभिजनवयोवृद्धसिद्धाचार्याणामुपासिता ..... सत्यसन्धः सामप्रधानः परपुरुषवचनसहिष्णुः, अमर्षघ्नः प्रशमगुणदर्शी रागद्वेषहेतूनां हन्ता।[२०]

शरीरशोधन के अभाव में चित्त की शुद्धि असंभव है अतः हठयोग के अंतर्गत छह क्रियाओं द्वारा शरीरशोधन करने का उल्लेख है। ये छह क्रियाएँ हैं– धौति, वस्ति, नेति, नौली, त्राटक और कपालभाति–

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिर्नौलिकिस्त्राटकस्तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणि समाचरेत्।[२१]

शरीरशोधन के लिए आयुर्वेद में निर्दिष्ट पंचकर्म की पद्धति इसी प्रकार की है। स्नेहन, स्वेदन से बाह्य शोधन कर आमाशयादि अन्तःशोधन के लिए वमन, विरेचन, द्विविध वस्ति तथा नस्य आदि का निर्देश किया गया है। चरकसंहिताकार कहते हैं–

तान्युपहितदोषाणां स्नेहस्वेदोपपादनैः।
पञ्च कर्माणि कुर्वीत मात्राकालौ विचारयन्॥[२२]

दूसरे की सम्पत्ति से ईर्ष्याभाव न रखते हुए, अपने सुख-दुःख को समान भाव से स्वीकार करने से ही सुख का अनुभव किया जा सकता है, जो संतोष का लक्ष्य है। संतोष का लक्ष्य तृष्णा का नितांत क्षय है–

---

२०. चरकसंहिता, ८.१८
२१. पातंजलयोगप्रदीप, ? पृ. ३८७
२२. चरकसंहिता, २.१३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ।[२३]

'नान्यस्वमाददीत अभिलषेन्नान्यस्त्रियं ..... ।'[२४] कहकर चरक ने संतोष के आचरण की ओर संकेत किया है । आचार्य वाग्भट ने भी संपत्ति और विपत्ति में एक समान भाव रखने का निर्देश किया है–

सम्पद्विपत्स्वेकमना हेतावीर्ष्येत्फले न तु ।[२५]

इसके अतिरिक्त सभी जीवों पर दया, स्वार्थादि का परित्याग कहकर आचार्य वाग्भट संतोष, तप आदि सद्‌गुणों को लक्ष्य करते हैं–

आर्द्रसन्तानता त्यागः कायवाक्चेतसां दमः ।
स्वार्थबुद्धिः परार्थेषु पर्याप्तमिति सद्व्रतम् ॥[२६]

दूसरे की परितुष्टि का ध्यान रखने के सद्‌गुण का उल्लेख करते हुए वाग्भट ने कहा है कि लोक का अभिप्राय भली-भाँति समझते हुए जो व्यक्ति जिस तरह प्रियवचन, दानादि से संतुष्ट होता है, उसी तरह व्यवहार करना चाहिए–

जनस्याशयमालक्ष्य यो यथा परितुष्यति ।
तं तथैवानुवर्तेत पराराधनपण्डितः ॥[२७]

ईश्वरप्रणिधान से तात्पर्य है भक्तिविशेष । अर्थात् फलसहित सभी कर्मों के फल की इच्छा का त्याग करते हुए ईश्वरार्थ सर्वकर्म समर्पण ।

चरकसंहिताकार चिकित्सास्थान में रसायनपाद के अंतर्गत आचाररसायन की चर्चा करते हैं । इसके अंतर्गत निर्दिष्ट कार्य शौच, सत्य, अहिंसा ईश्वरप्रणिधानादि का संकेत करते हैं । चरक का अभिमत है कि रसायन के संपूर्ण गुण प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अपनी आचारसंहिता में कुछ इस तरह गुणों का सन्निवेश करना चाहिए– सत्यवादी होना, क्रोध न करना, मद्य और मैथुन से पृथक् रहना, मन, वचन और कर्म से अहिंसक होना, प्रियवादी होना, तपस्वी, देवता, गौ, ब्राह्मण तथा आचार्य और गुरु की पूजा में तत्पर होना, उदारचेता होना, अहंकारशून्य होना, आत्मज्ञानियों और आस्तिकों का

---

२३. योगसूत्र, साधनपाद .४२
२४. चरकसंहिता, ८.१८
२५. अष्टांगहृदय, २.२५
२६. वही, सूत्रस्थान २.४५
२७. वही, सूत्रस्थान २.२८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सत्संग करना, धर्मशास्त्र का अनुपालन करना आदि–

सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात् ।
अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम् ।।
याज्यशौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम् ।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम् ।।
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम् ।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यरसायनम् ।।[२८]

योग का तीसरा और महत्त्वपूर्ण अंग है आसन । आसन अर्थात् सुखपूर्वक निश्छल बैठने की स्थिति–

स्थिरसुखमासनम् ।[२९]

चरक इसे व्यायाम के रूप में व्याख्यायित करते हैं । उनका मत है कि शरीर की जो चेष्टाएँ शरीर की स्थिरता दृढता के लिए, शरीर के बल बढाने की इच्छा से की जाती है उन्हें शारीरिक व्यायाम कहते हैं । व्यायाम का सेवन यथोचित मात्रा में ही किया जाना चाहिए–

शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था बलवर्धिनी ।
देहव्यायामसंख्याता मात्रया तं समाचरेत् ।।[३०]

व्यायाम की मात्रा की अधिकता से थकान, धातुक्षय, रक्तपित्त रोग, कास, ज्वर तथा वमन हो सकते हैं । आचार्य वाग्भट भी व्यायाम की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि जिस कर्म से शरीर में थकावट उत्पन्न हो वह व्यायाम है–

शरीरायासजननं कर्म व्यायाम उच्यते ।[३१]

व्यायाम से कार्यक्षमता में वृद्धि होती है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है, मेद-क्षय अर्थात् स्थूलता घटती है और शरीर के अंग-प्रत्यंग सुगठित हो जाते हैं-

लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेधसः क्षयः ।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते ।।[३२]

---

२८. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान १.२९, ३०, ३३
२९. योगसूत्र, साधनपाद ४६
३०. चरकसंहिता, ७.३१
३१. अष्टांगसंग्रह, ३.६२
३२. अष्टांगहृदय, २.९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्यायाम करने के नियमों का निर्देश करते हुए आचार्य वाग्भट कहते हैं कि वातज और पित्तज रोगों से ग्रस्त, अजीर्ण रोग से ग्रस्त तथा बालक (सोलह वर्ष से कम उम्र के), वृद्ध (सत्तर वर्ष से अधिक अवस्था वाले) व्यायाम न करें।

बलवान् और स्निग्धभोजन करनेवाले लोग शीत एवं वसंत ऋतु में आधी शक्ति से ही व्यायाम करें। अन्य ऋतुओं में इससे भी कम शक्ति से व्यायाम करें–

वातपित्तामयी बालो वृद्धोऽजीर्णो च तं त्यजेत्।
अर्धशक्त्या निषेव्यस्तु बलिभिः स्निग्धभोजिभिः॥[३३]

आचार्य सुश्रुत भी व्यायाम को व्याधिनिवारक साधन के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिससे अंग सुगठित हो जाते हैं, देह कांतिमय हो जाती है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा शरीर में हल्कापन आ जाता है। मोटापा दूर होता है, श्रम, प्यास, गर्मी, ठंडक आदि को सहने की शक्ति आ जाती है–

शरीरायासजननं कर्म व्यायामसंज्ञितम्।
तत् कृत्वा तु सुखं देहं विमृद्नीयात् समन्ततः॥
शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा॥
श्रमक्लमपिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता।
आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते॥[३४]

बलार्ध से व्यायाम का निर्देश देते हुए आचार्य सुश्रुत बलार्ध को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जब हृदयस्थ प्राणवायु मुख से निकलने लगे तो उसे बलार्ध की सीमा समझना चाहिए–

बलस्यार्धेन कर्तव्यो व्यायामो हन्त्यतोऽन्यथा।
हृदि स्थानस्थितो वायुर्यदा वक्त्रं प्रपद्यते॥
व्यायामं कुर्वतो जन्तोस्तद् बलार्धस्य लक्षणम्।[३५]

आयुर्वेद के आचार्यों ने व्यायाम की विस्तृत चर्चा की है किन्तु किसी प्रकार के आसन का उल्लेख नहीं किया है। पतंजलि भी आसनों का उल्लेख नहीं करते। योगदर्शन के भाष्यकारों ने ही विभिन्न प्रकार के आसनों का उल्लेख किया है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी योगाभ्यास के प्रसंग में भगवान् कहते हैं कि विशुद्ध भूमि पर रखे आसन पर बैठ कर चित्त और इन्द्रियों को नियंत्रित कर, एकाग्र होकर अंतःकरण

---

३३. वही, २.१०.११
३४. सुश्रुतसंहिता, चिकित्सास्थान २४.३८-४०
३५. वही, चिकित्सास्थान २४.४७, ४८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करना चाहिए–

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥[३६]

इस योगाभ्यास में शरीर की मुद्रा क्या हो, आसन किस तरह का हो, इस सम्बन्ध में मात्र इतना ही निर्देश है कि देह, सिर और गले को सीधा रखते हुए निश्चल और स्थिर होकर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर ब्रह्मचर्यव्रत में स्थित, निर्मल होकर ईश्वर में अपना चित्त लगाए–

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥[३७]

प्राणायाम योग का चौथा महत्त्वपूर्ण अंग है । प्राणायाम के सम्बन्ध में पतंजलि कहते हैं कि उस आसन के स्थिर हो जाने पर श्वास प्रश्वास की गति को रोकना ही प्राणायाम है–

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।[३८]

यह प्राणायाम बाह्यवृत्ति, आभ्यंतरवृत्ति और स्तम्भवृत्ति रूप से तीन प्रकार का होता है । ये तीन प्रकार पुनश्च देश, काल और संख्या द्वारा दीर्घ और सूक्ष्म होते हैं । श्वास को बाहर निकालकर उसकी स्वाभाविक गति का अभाव करना बाह्यवृत्तिप्राधान्य है । श्वास को अन्दर लेकर उसकी स्वाभाविक गति का अभाव आभ्यंतरवृत्तिप्राधान्य तथा श्वास प्रश्वास दोनों गतियों के अभाव से प्राण को रोक देना स्तम्भवृत्तिप्राधान्य है । ये तीनों वृत्तियाँ पुनः देशपरिदृष्ट, कालपरिदृष्ट तथा संख्यापरिदृष्ट होती हैं । देशपरिदृष्ट अर्थात् जिस स्थान तक उसका विषय है, कालपरिदृष्ट का अर्थ समय की विशेष मात्रा में श्वास प्रश्वास तथा संख्यापरिदृष्ट का तात्पर्य प्रथम उद्घात, द्वितीय उद्घात इस प्रकार संख्या से श्वास प्रश्वास का उपलक्षित होना है । पूरक, कुम्भक रेचकादि भेदों को इन नामों से व्यवहृत नहीं किया जाता था । सूत्रकार ने इन नामों का उल्लेख नहीं किया है, यह परवर्ती उद्भावना है ।

आचार्य चरक वातकलाकलीयाध्याय के अंतर्गत शरीर में वायु संचरण के विविध गुणों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि वायु के पाँच प्रकार हैं – प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान । यह वायु तंत्र अर्थात् शरीर और यंत्र अर्थात् शरीर के अवयवों को धारण करती है । यह वायु ही सभी चेष्टाओं

३६. श्रीमद्भगवद्गीता, सम्पा. वासुदेव लक्ष्मण पणशीकर, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, २०१०, ६.१२
३७. वही, ६.१३-१४
३८. योगसूत्र, साधनपाद ४९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का प्रवर्तक है, मन का नियामक है, इन्द्रियों का प्रेरयिता है, अर्तात् इन्द्रियों को विषयों में प्रेरित करता है। यह वायु ही शरीर के धातुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान वहन करता है। यह वाणी को प्रवृत्त करनेवाला, स्पर्श तथा शब्द का मूल कारण है–

वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः प्राणोदानसमानव्यानापानात्मा प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानां नियन्ता प्रणेता च मनसः सर्वेन्द्रियाणामुद्योजकः सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढा सर्वशरीरधातुव्यूहकरः सन्धानकरः शरीरस्य प्रवर्तको वाचः प्रकृतिः स्पर्शशब्दयोः ..... ।[३९]

प्रत्याहार का लक्षण देते हुए पतंजलि ने कहा है–

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ।[४०]

इन्द्रियों का अपने विषयों से निरुद्ध होकर चित्त के स्वरूप में तदाकार हो जाना प्रत्याहार है। प्रत्याहार में इन्द्रियाँ अपने बहिर्मुख विषय से हटकर अंतर्मुखी हो जाती हैं। प्रत्याहार सिद्ध हो जाने वाले व्यक्ति की इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। किसी अन्य उपाय से इन्द्रियविजय करने में विषय से दूर हटना होता है, अथवा चित्त को प्रबोधित करना होता है, किन्तु प्रत्याहार में ऐसा नहीं करना पडता क्योंकि उसमें चित्त की इच्छा के अनुकूल कार्य होता है। इन्द्रियाँ चित्त का अनुसरण करती हैं।

इसी प्रसंग को चरक 'इन्द्रियोपक्रमणीयाध्याय' के अंतर्गत उल्लेख करते हुए अतियोग, योग और मिथ्यायोग की चर्चा करते हैं। चरक का अभिमत है कि मन के साथ इन्द्रियाँ अपने अर्थों के अतियोग, योग और मिथ्यायोग से विकृत होकर अर्थात् रोग उत्पन्न कर अपने ज्ञान का नाश करती हैं। ये ही इन्द्रियाँ जब सामर्थ्ययोग से अर्थात् समयोग से विषयों के साथ युक्त होती हैं तो अपने-अपने ज्ञान को बढानेवाली होती हैं। मन का विषय चिंतन करना है। अतएव मन और बुद्धि का समयोग स्वस्थता का कारण है तथा मन एवं बुद्धि का अतियोग, योग या मिथ्यायोग विकृति का कारण है, रोगोत्पत्ति का कारण है–

तदर्थातियोगायोगमिथ्यायोगात् समनस्कमिन्द्रियं विकृतिमापद्यमानं यथास्वं बुद्ध्युपघाताय सम्पद्यते सामर्थ्ययोगात्पुनः प्रकृतिमापद्यमानं यथास्वं बुद्धिमाप्यायाति। मनसस्तु चिन्त्यमर्थः तत्र मनसो मनोबुद्धेश्च त एव समानातिहीनमिथ्यायोगाः प्रकृतिविकृतिहेतवो भवन्ति ।[४१]

यहाँ 'मनसस्तु चिन्त्यम्' विशेष ध्यातव्य है, जिसके माध्यम से आचार्य यह कहना चाह रहे हैं कि इन्द्रियनिरपेक्ष मन जो कुछ ग्रहण करता है, मन के उन विषयों का समयोग या सम्यग्योग ही प्रकृति

---

३९. चरकसंहिता, १२.८

४०. योगसूत्र, साधनपाद ५४

४१. चरकसंहिता, ८.१५-१६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है, अन्यथारूप अर्थात् अतियोग या अयोग विकृति है। तात्पर्य यह है कि जब मन इन्द्रिय के विषयों को ग्रहण नहीं करता है, बल्कि इन्द्रियाँ मनोनुकूल विषयों को ग्रहण करती हैं तो वह विशुद्ध चित्त जिसके वश में इन्द्रियाँ हैं, स्वास्थ्यगत विकृतियों को दूर रखता है। मन और इन्द्रियों का विषयों के साथ असंतुलित योग जो विकृति या रोग का कारण है, उसके निराकरण के लिए चरक का निर्देश है कि मन सहित इन्द्रियों को स्वस्थ्य रखने के लिए, विकृति से बचाने के लिए इन्द्रिय और विषयों के अतियोग, योग और मिथ्यायोग से बचना चाहिए। आचार्य चरक इसके लिए देश कालादि के अनुरूप हितकारी वस्तुओं के सेवन का निर्देश देते हैं। इससे इन्द्रियाँ उपतप्त न होकर अविकृत (प्रकृति) अवस्था में रहती हैं। विविध प्रकार के सद्वृत्त का पालन मनसा वाचा कर्मणा करना चाहिए। इससे एक साथ ही नैरुज्य और इन्द्रियविजय दोनों की प्राप्ति होती है–

तत्रेन्द्रियाणां समनस्कानामनुपतप्तानामनुपतापाय प्रकृतिभावे प्रयतितव्यं एभिर्हेतुभिः तद्यथा सात्म्येन्द्रियार्थसंयोगेन बुद्ध्या सम्यगवेक्ष्यावेक्ष्यकर्मणां सम्यक्प्रतिपादनेन देशकालात्मगुणविपरीतोपासनेन च इति तस्मादात्महितं चिकीर्षता सर्वेण सर्वं सर्वदा स्मृतिमास्थाय सद्वृत्तमनुष्ठेयम्। तद्ध्यनुतिष्ठन् युगपत् सम्पादयत्यर्थद्वयमारोग्यमिन्द्रियविजयं चेति ......।[४२]

चरक द्वारा प्रतिपादित यह आरोग्य और इन्द्रियविजय की अवस्था प्रत्याहार के सन्निकट है जहाँ चित्त इन्द्रियों के वशीभूत नहीं वरन् इन्द्रियाँ चित्त के वशीभूत हैं। चरक इसे समयोग अर्थात् सम्यग्योग कहते हैं जो उनके अनुसार योग और अतियोग की मध्यावस्था है। आचार्य वाग्भट भी इन्द्रियों के नियंत्रण के सम्बन्ध में कहते हैं कि इन्द्रियों को न तो अत्यधिक पीडित किया जाए और न ही अत्यधिक विलासी बनाया जाए–

न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यतिलालयेत्।[४३]

योग का छठा, सातवाँ और आठवाँ अंग क्रमशः धारणा, ध्यान और समाधि है। ये तीनों योग के अन्तरंग अंग हैं। पूर्वोक्त पाँच अंगों का निरूपण साधनपाद के अंतर्गत किया गया है तथा इन तीनों का विभूतिपाद के अंतर्गत। धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनों अंगों के लिए एक शब्द व्यवहृत किया गया है – संयम। धारणा, ध्यान और समाधि तीनों का लक्षण करने के बाद पतंजलि ने यह सूत्र दिया-

त्रयमेकत्र संयमः।[४४]

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि के द्वारा जब चित्त स्थिर हो जाए तो उसे अन्य विषयों से हटाकर एक ध्येय विषय में वृत्तिमात्र से बाँधना ही धारणा है। ध्येय से अभिप्राय यह है

४२. चरकसंहिता, ८.१७, १८
४३. अष्टांगहृदय, २.२९
४४. योगसूत्र, विभूतिपाद ४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कि जिस देशरूप विशेष स्थान पर वृत्ति को ठहराया जाए वह नाभि, हृदय, नासिकाग्र, भृकुटी आदि आभ्यंतर देश हो सकते हैं अथवा चंद्रमादि कोई बाह्यदेशरूप विषय हो सकते हैं। इन विषयों को, जिनमें ध्यान लगाया जाए उसे ही ध्येय कहते हैं। इस धारणा में चित्त जिस वृत्तिमात्र के ध्येय में लगा रहता है उस वृत्ति का अक्षुण्ण प्रवाह बना रहता है, कोई दूसरी वृत्ति उसे बाधित नहीं करती तो उस एकाग्रता या एकतानता को ध्यान की संज्ञा दी जाती है। यही ध्यान ही समाधि कहलाता है, जब उसमें केवल ध्येय अर्थमात्र से भासित होता है। ध्यान और समाधि में अंतर इतना ही है कि ध्यान में ध्येय का भान होता है, ध्येयमात्र का नहीं; जबकि समाधि में ध्येयमात्र में ध्यान स्थिर हो जाता है। धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनों का समुदाय ही संयम कहलाता है। समाधि अंगी है और धारणा तथा ध्यान अंगरूप हैं–

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।[४५]
तत्रैकतानता ध्यानम्।[४६]
तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।[४७]
त्रयमेकत्र संयमः।[४८]

आचार्य चरक ने प्रवृत्ति और निवृत्ति अर्थात् संसार की ओर प्रवृत्ति और मोक्षरूपा निवृत्ति के कारणों का उल्लेख चरकसंहिता के शारीरस्थान में किया है। मोक्ष या कैवल्य के उपायों का चिंतन करते हुए चरक कहते हैं–

ध्यानहेतोः कायनिबन्धनं........... तन्द्रालस्यादिकर्मवर्जनम् इन्द्रियार्थेष्वनुरागोपताप-निग्रहः.......... योगारम्भे सततमनिर्वेदः सत्त्वोत्साहोऽपवर्गाय धीधृतिस्मृतिबलाधानं नियमनमिन्द्रियाणां चेतासी चेतस आत्मनि ....सर्वसंन्यासेषु सुखमित्यभिनिवेशः।[४९]

'ध्यानहेतोः कायनिबन्धनम्' कहकर आचार्य ने ध्यानार्थ योगासन के विधान का संकेत किया है। पुनश्च वे यह भी कहते हैं कि ध्यानादि के लिए इन्द्रियों के विषयों–रूप रसादि के प्रति अनुराग नहीं करना चाहिए तथा इन्द्रियों के विषयों के न मिलने से उत्पन्न उपताप अर्थात् द्वेषादि का निग्रह करना चाहिए। मोक्ष के लिए बुद्धि, धैर्य एवं स्मृति के बल का आधान करना चाहिए, चित्त में इन्द्रियों का नियमन तथा आत्मा में मन का नियमन करना चाहिए। चरकाचार्य कहते हैं कि सर्वसंन्यास अर्थात्

---

४५. वही, विभूतिपाद १
४६. वही, विभूतिपाद २
४७. वही, विभूतिपाद ३
४८. वही, विभूतिपाद ४
४९. चरकसंहिता, ५.१३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वपरित्याग की भावना से ही यथार्थ सुख की प्राप्ति हो सकती है। अतः सर्वसंन्यास की भावना रखनी चाहिए। शरीर को रस, मल, स्नायु आदि रूप में देखने से ही शरीर के प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है–

मज्जास्थ्ना रजसा प्लीहायकृता शकृतापि च।
पूर्णः स्नायुशिरा याः स्युस्ताः स्त्रियश्चर्मपेशिकाः।[५०]

'नियमनमिन्द्रियाणां चेतसि चेतस आत्मन्यात्मनश्च .....' कहकर चरक ने इन्द्रियों की बाह्य विषयों से निवृत्ति और चित्त के द्वारा उनके वशीभूत हो जाने का उल्लेख कर धारणा और ध्यान की ओर संकेत किया है। 'चेतस आत्मनि आत्मनश्च ... ।' की शब्दावली चित्त को चिन्त्य विषयों से व्यावृत्त होकर परमात्मज्ञान के लिए नियमन का संकेत करती है। शरीर को अस्थि, मज्जा, रस, मल, स्नायु आदि के समुदाय के रूप में देखना वैराग्य का हेतु है।

'सर्वप्रवृत्तिष्वघसंज्ञा' कहकर चरक मोक्षाभिलाषी के लिए सभी प्रकार की सांसारिक प्रवृत्तियों को अघरूप अर्थात् पाप की संज्ञा देते हैं। 'सर्वसंन्यासेषु सुखम्' कहकर सभी प्रकार के त्याग को सुख का मूल बतलाते हैं। चरक स्पष्टतः कहते हैं एष मार्गोऽपवर्गाय अर्थात् यही मार्ग अपवर्ग या मोक्ष का मार्ग है, कैवल्य का मार्ग है। अन्यथारूप मार्ग का अवलंबन मनुष्य को बंधन में बाँधता है।

कैवल्य या मोक्ष के सम्बन्ध में भी पतंजलि और आचार्य चरक के विचारों का साम्य उल्लेख है। कैवल्यपाद में पतंजलि कहते हैं कि हेतु, फल, आश्रय, तथा आलंबन से वासनाएँ संगृहीत होती हैं। अविद्या आदि क्लेश वासनाओं का हेतु है। जाति, आयु और भोग वासनाओं के फल हैं। अधिकारयुक्त मन वासनाओं का आश्रय है। इन्द्रियों के विषय वासनाओं के आलम्बन हैं। ये वासनाएँ हेतु, फल, आश्रय और आलंबन के सहारे विद्यमान रहती हैं। इनकी सत्ता में ही वासनाओं की सत्ता है और इनके अभाव में वासनाओं का नाश हो जाता है। वासना का आश्रय साधिकार चित्त है और विवेकख्याति द्वारा अधिकार समाप्त होने पर चित्त में विवेक मात्र शेष रह जाता है अतः वासना नहीं रहती। विवेकख्यातिविहीन चित्त ही वासना का आश्रय है–

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्त्वादेषामभावे तदभावः।[५१]

पतंजलिप्रोक्त उक्त सूत्र के आलोक में चरक का अभिमत द्रष्टव्य है, जहाँ वे कहते हैं–

सर्वं कारणवद् दुःखमस्वं चानित्यमेव च।
न चात्मकृतकं तद्धि तत्र चोत्पद्यते स्वता॥

---

५०. वही, शारीरस्थान ५.१३ पर आयुर्वेददीपिका टीका
५१. योगसूत्र, कैवल्यपाद ११

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यावन्नोत्पद्यते सत्या बुद्धिर्नैतदहं यया ।
नैतन्मम च विज्ञाय ज्ञः सर्वमतिवर्तते ।।५२

अर्थात् कारणवान् सभी वस्तुएँ अनित्य और दुःखरूप हैं । आत्मा कारण रहित और अनित्य है । सत्य के प्रकट हो जाने पर यथा मेरा यह शरीर नहीं है आदि ज्ञान हो जाने पर ज्ञानी जन्म कर्म के बंधनों का अतिक्रमण कर जाता है और सभी वेदनाओं की निवृत्ति हो जाती है । पतंजलि द्वारा निर्दिष्ट विवेकख्याति जिससे सभी वासनाओं का नाश हो जाता है, कुछ इसी प्रकार की स्थिति है ।

चरक कहते हैं कि चरम संन्यास की अवस्था में सभी कर्मों के परित्याग के फलस्वरूप मिथ्याज्ञान से उत्पन्न सभी प्रकार की भूत, भविष्य तथा वर्तमान वेदनाएँ सम्पूर्ण रूप से निवृत्त हो जाती हैं क्योंकि ज्ञेय का भली प्रकार ज्ञान हो जाता है । इसके बाद वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है, उसका कोई चिह्न शेष नहीं रह जाता-

तस्मिंश्चरमसंन्यासे समूलाः सर्ववेदनाः ।
असंज्ञाज्ञानविज्ञाना निवृत्तिं यान्त्यशेषतः ।।
अतः परं ब्रह्मभूतो भूतात्मा नोपलभ्यते ।
निःसृतः सर्वभावेभ्यश्चिह्नं यस्य न विद्यते ।।५३

चित्त के भीतर राग द्वेषादि मल के होने से मलिन चित्त में स्थिरता नहीं होती अतः चित्त की निर्मलता प्राप्त करने के सम्बन्ध में पतंजलि का मत है कि सुखी मनुष्यों में मित्रता की भावना रखने से, दुखी मनुष्यों में दया की भावना रखने से, और पापियों में उपेक्षा की भावना रखने से मनोगत मलिनता नष्ट होती है, रागद्वेषादि दूर हो जाते हैं तथा चित्त निर्मल हो जाता है–

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ।५४

पतंजलि के इन विचारों के सदृश चरक का भी मत दृष्टिगत होता है, यद्यपि उन्होंने इसे चिकित्सा के संदर्भ में कहा है–

मैत्रीकारुण्यमार्तेषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षणम् ।
प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधेति ।।५५

अर्थात् चिकित्सक को चाहिए कि वह प्राणिमात्र के साथ मैत्री का व्यवहार करें । रुग्ण जनों के प्रति करुणा का भाव साध्य रोगों से ग्रस्त व्यक्ति के प्रति प्रीति अर्थात् प्रेमपूर्वक चिकित्सा तथा असाध्य रोग से ग्रस्त जिनका मरण निश्चित है, वहाँ उपेक्षा भाव रखना चाहिए ।

---

५२. चरकसंहिता, शारीरस्थान १.१५०-१५१

५३. वही, शारीरस्थान १.१५२-१५३

५४. योगसूत्र, समाधिपाद ३३

५५. चरकसंहिता, सूत्रस्थान ९.२४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि योगसूत्रों में प्रतिपादित यम नियमादि अष्टांग की विवेचना आयुर्वेदशास्त्र में विशेषतया चरकसंहिता में प्राप्त होती है । योग और आयुर्वेद दोनों का लक्ष्य स्वस्थ देह और निर्मल चित्त की प्राप्ति से मोक्ष की ओर अग्रसर होता है । दोनों शास्त्रों का प्रयोजन एक ही है अतः चरक कहते हैं–

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।[५६]

अर्थात् धर्मार्थादि पुरुषार्थ चतुष्टय का मूल उत्तम आरोग्य है । वे यह भी कहते हैं कि मोक्ष में वेदनाओं की आत्यंतिक निवृत्ति हो जाती और योग मोक्ष का साधन है–

मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः ।[५७]

दोनों ही शास्त्रों में अष्टांगों का विवेचन शब्दान्तरेण प्राप्त होता है । आयुर्वेद के पंचकर्म, दिनचर्या, ऋतुचर्या तथा आचाररसायन, सद्वृत्त के विवेचन में योग के यम, नियम स्पष्टतया प्रतिविम्बित है । ब्रह्मचर्य जो योग का एक प्रमुख विवेच्य विषय है, आयुर्वेद में शरीरधारण के तीन मूलभूत आधारस्तम्भों में परिगणित है तथा विस्तरेण व्याख्यात है । आयुर्वेद में प्रतिपादित वात की अवधारणा, पञ्चविध वायु के संचरण तथा उनके विनियमन का विवेचन योग में प्रतिपादित प्राणायाम के सन्दर्भों से एक अद्भूत साम्य रखता है । यद्यपि दोनों शास्त्र इन अष्टांगों के विवेचन में साम्य रखते हैं तथापि आयुर्वेद का लक्ष्य शरीर और मनोगत व्याधियों का निवारण कर आरोग्यमय शरीर प्रदान कर मोक्ष की ओर अग्रसर करना है जिसके लिए औषधियों के प्रयोग का विधान है । अतः व्याधियों के कारण निदानादि का विवेचन आयुर्वेद का प्रधान विषय है, योग इसमें उपकारक के रूप में, अंगरूप में व्याख्यात हुआ है । योगशास्त्र में अष्टांगों की सांगोपांग विवेचना है अतः उसमें आयुर्वेद की अपेक्षा विषय सुसंगठित और विस्तृत रूप में दृष्टिगत होता है, फिर भी यह कहना अनुचित न होगा कि आयुर्वेद और योग दोनों शास्त्रों में प्रतिपादित योगविषयक विचारों को एक दूसरे के पूरक के रूप में ग्रहण किया जा सकता है ।

-----

५६. वही, सूत्रस्थान १.११५

५७. वही, शारीरस्थान १.१३५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गोरक्षनाथ की योग-परम्परा

गोविन्दकुमार टी. वेकरिया*

'योग' भारतीय अध्यात्म, साधना, संस्कृति, साहित्य चेतना की सुन्दरतम एवं गौरवमयी अभिव्यक्तियों में सर्वोच्च है, यह वैज्ञानिक और अविवादास्पद विषय है । इसका उद्भव एवं विकास भारतवर्ष में हुआ है । पश्चिमी अतिभौतिकवादी, उपभोक्तावादी एवं उपयोगितावादी सभ्यता एवं जीवनशैली के वश में आकर आज का मानवसमाज अपने नैतिकमूल्यों एवं गरिमाओं की निरंतर अवहेलना कर रहा है, इसके फलस्वरूप राष्ट्र एवं समाज का निरंतर पतन हो रहा है । इसका एक मात्र उपाय 'योगविद्या' है । भारतीय 'योगविद्या' ही भौतिक उत्थान एवं आध्यात्मिकता का प्रवेशद्वार है । यही विश्व-मानव-समाज को गौरव लौटा सकता है ।

आचार्य रजनीश ने कहा है कि-''भारतीय धर्माकाश में सबसे ज्यादा चमकने वाले सितारें मुख्य चार हैं- कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध और गोरक्षनाथ।'' इन चारों में 'योग' का निरूपण है । लेकिन 'योग' की बात आती है तो हमारे सामने दो नाम आते हैं- महर्षि पतंजलि और सिद्धमहायोगी गुरु गोरक्षनाथ । यह दोनों 'योगविद्या' के आधारस्तम्भ हैं ।[१] पतंजलि और गोरक्ष दोनों का कहना है कि परम तत्त्व आत्मा (परमात्मा) की खोज के लिए जीव को कहीं बाहर जाने की जरूरत नहीं है । वह तो हमारे अन्दर (भीतर) ही है ।

भारतीय दर्शन एवं अध्यात्म-साधना की प्रायः सभी वैदिक और अवैदिक, निगम और आगम की धारा अनादिकाल से बहती आ रही है एवं प्रचलित है । पतंजलि की परम्परा वैदिक (निगम) से है । गोरक्षनाथ के 'योगदर्शन' परम्परा के संस्थापक, प्रारंभकर्ता एवं प्रवर्तक आदिनाथ (शिव, शंकर) है और इनके विकास एवं संवर्धन में सर्व श्री मत्स्येन्द्रनाथ, जालंधरनाथ, गोरक्षनाथ, नवनाथों आदि की एक महान परंपरा रही है ।

गोरक्षनाथ ने अपने योग-दर्शन एवं साधना के लिए पूर्ववर्ती सभी वैदिक-अवैदिक, निगम-आगम परम्पराओं में विकसित योगिक एवं तांत्रिक विचारधाराओं और साधनाओं का समन्वित और संभवित

'स्वाध्याय' – पु. ५९, वर्ष २०२२, पृ. १५९-१७४. ISSN 2250-0391

* हिंदी विभाग, म्युनि. महिला विनयन कॉलेज, गोंडल, जिला-राजकोट, पीन-३६०३११ (गुजरात), M: 09409494111, Email: profgtvekariya@gmail.com

१. ओशो, मरौ हे जोगी मरौ (प्रवचनों का संकलन) रेबलः पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., ५० कोरेगाँव पार्क, पूना, विशेष राज संस्करण, १९९०, पृ. ४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूप माना है । महासुख की प्राप्ति के लिए सिद्धों की वामाचार प्रक्रिया और मुक्त यौन सहवास साधना प्रक्रिया की प्रतिक्रिया के रूप में गोरक्षनाथ ने एक नूतन नाथ-संप्रदाय की स्थापना की । गोरक्षनाथ इस संप्रदाय के प्रबल समर्थक, सबल प्रचार-प्रसारक और दृढ संगठनकर्ता है । आज-कल नाथ-पंथ का पर्याय गोरक्षनाथ है । जो आदिनाथ शिव से प्रारंभ हुआ था । गुरु गोरक्षनाथ योगी-संप्रदाय के सर्वप्रधान नेता थे और इस संप्रदाय को संगठित एवं सुव्यस्थित रूप देने में इन्हीं का हाथ है । यह शिव के अवतार माने जाते हैं ।

रांगेय राघव ने ('गोरक्षनाथ और उनका युग' इस पुस्तक में) कहा है- ''गोरक्षनाथ का युग भारतीय इतिहास की एक कडी है । यदि यह हजारों वर्षों का परिणाम है तो इसका प्रभाव भी अनेक शताब्दियों का इतिहास है । यह भारतीय इतिहास का वह भूला हुआ विषय है जिसके बिना इतिहास समझा ही नहीं जा सकता ।''[२]

जब हम गोरक्षनाथ की योग-परंपरा की विवेचना करते है तो हमें कई ऐसे प्राचीन प्रमाण (साक्ष्य) मिलते हैं, जिनमें योग की बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाती है कि 'योग' सृष्टि के आरंभ से ही है । प्राचीन प्रमाणों के रूप में सिन्धु घाटी सभ्यता से प्राप्त मूर्तियों के अवशेषों से यह बात सिद्ध होती है । इन अवशेषों में योग-मुद्रा की अवस्था में ध्यानस्थ भगवान शिव (आदिनाथ) मूर्तियों से भी यह स्पष्ट होता है कि योग-क्रिया की परम्परा 'शिव' से जुडी है और उनकी 'योगविद्या' अनादिकाल परंपरा से चली आ रही है, वह केवल देवताओं तक ही सीमित थी, कालांतर यह विद्या ऋषि मुनियों, महर्षियों, मनीषियों से चलकर आज वह सामान्यजन तक प्रचलित हुई है ।

'हठयोगियों' के अनुसार भगवान् शिवजी ने धर्म-पत्नी पार्वती को योग का प्रथम उपदेश दिया था, इसका यह अर्थ है कि गोरक्षनाथ परम्परा में योग का प्रथम उपदेश माँ पार्वती को दिया था ।

''भारतीय संस्कृति की यह विलक्षण विशेषता है कि यहाँ अनेकों धर्म-सम्प्रदायों का उदय हुआ जिन्होंने परमसत्ता को समझने तथा उसके साक्षात्कार के लिए कई मार्ग सुझाएँ है । इन्हीं मार्गों में से योग एक है । इसी मार्ग का अनुसरण कर अनेक ऋषि-मुनियों ने अपने ध्येय की प्राप्ति की । जहाँ तक योग की उत्पत्ति का प्रश्न है, उनके अनुसार स्वयं आदिनाथ भगवान् शिव ही योग के उत्पत्तिकर्ता हैं । यही कारण है कि अधिकांश हठयोग एवं तंत्र सम्बन्धी ग्रन्थ शिव-पार्वती संवाद रूप में मिलते है ।''[३]

जब हम योगपरम्परा का अध्ययन करते है, तब बहुत ऐसे प्रमाण मिलते है, उससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही 'योग-दर्शन' आया है । योगीन्द्र स्वात्माराम की हठयोग

२. रांगेय राघव, गोरक्षनाथ और उनका युग, आत्माराम एंड सन्स-दिल्ली, २०१७

३. धारु नरेशकुमार, नाथ संप्रदाय में योग का स्वरूप, गणेश शंकर, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, २०१९, पृ. ७२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रदीपिका में कहा है- ''श्री आदिनाथ भगवान् शिव को नमस्कार है-जिन्होंने (भगवती पार्वती को) हठयोग (सूर्य-प्राणवायु और चन्द्र-अपानवायु के योग) की विद्या का उपदेश (महाज्ञान) का प्रकाशन किया है । यह (हठयोग विद्या) महती, राजयोग सिद्धि के लिए (साक्षात्) सीढी के रूप में शोभित है । ब्रह्मानंदने इस श्लोक की टीका करते हुए सर्ववृत्ति निरोध लक्षणवाले असंप्रज्ञातयोग को राजयोग कहा है । स्वात्माराम का कथन है कि केवल राजयोग के लिए ही हठविद्या का उपदेश किया जा रहा है:

श्री आदिनाथ नमोऽस्तु तस्मै येनोपदिष्टा हठयोगविद्या ।
विभ्राजते प्रसन्नोतराज योग मारोढुमिच्छोरधीरोहिणीव ॥१॥

प्रणम्य श्रीगुरुनाथ स्वात्मारामेण योगिना ।
केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते ॥२॥[४]

योग-साधना के क्षेत्र में हठयोग-साधना नाथ-पंथ की एक अनुपम और मौलिक देन है । आदिनाथ भगवान् शिव ने तत्त्व-जिज्ञासु भगवती पार्वती के प्रश्नों के उत्तर देते हुए सर्वप्रथम योग-विषयक जो गुप्त-ज्ञान प्रकाशित किया था उसे दैवयोग से मछली के पेट में स्थित महायोगी मत्स्येन्द्रनाथजी ने ग्रहण कर अपने शिष्य महायोगी गोरक्षनाथ को प्रदान किया । गोरक्षनाथ और उनकी परम्परा ने अन्य योगेश्वरों के माध्यम से लोक-कल्याण के लिए महलों से कुटियों तक यह ज्ञान प्रचरित और प्रतिष्ठित किया । अब संपूर्ण विश्व में इसका प्रचार-प्रसार हो रहा है ।

डॉ. भारतीय सिंह के अनुसार नाथयोग दर्शन एवं साधना का प्रवर्तन आदिनाथ शिव ने किया था । उन्होंने देवी पार्वती के आग्रह पर जिस तत्त्वज्ञान का उपदेश किसी द्वीप में एकांत में किया था उसे एक मत्स्य के उदर में पल रहे श्री मत्स्येन्द्रनाथजीने सुनकर ग्रहण कर लिया बाद में शिव से प्राप्त इसी तत्त्वज्ञान को योगिराज श्री मत्स्येन्द्रनाथजीने अपने शिष्य गोरक्षनाथजी को प्रदान किया । कालांतर में भी मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालंधरनाथ, कानिपानाथ, भर्तृहरिनाथ आदि नवनाथों और उत्तरवर्ती अन्य नाथ योगियों ने नाथ योगदर्शन एवं योग-साधना को विस्तृत करते हुए उसे एक विशिष्ट दर्शन एवं साधना-प्रस्थान का गौरव दिलाया । इस परम्परा के गुरु गोरक्षनाथ सबसे सर्वोच्च स्थान पर है । इसी परम्परा में घेरण्ड ऋषि, स्वात्माराम आदि भी हुए है । शिवसंहिता, हठयोगप्रदीपिका, गोरखसंहिता, सिद्धसिद्धांत पद्धति, घेरण्डसंहिता आदि इस परम्परा के महत्वपूर्ण ग्रन्थ है ।[५]

एक बात स्पष्ट है कि गोरक्षनाथ की परंपरा अनादिकाल से है और अत्यन्त प्राचीन है । विभिन्न ग्रंथो में नाथ सिद्धों की अनेक सूचियाँ प्राप्त होती है । उनके अध्ययन से स्पष्ट नहीं होता है

---

४. श्रीवास्तव रामलाल, हठयोग प्रदीपिका, टीकाकार तथा संपादक - गोरक्षनाथ मंदिर - गोरखपुर, तृतीय संस्करण, वि.सं. २०५८, पृ.१

५. कामाख्या कुमार, योग महाविज्ञान, स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स- नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, २०११, पृ. ३२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कि कौन से नाथ गोरक्षनाथ के पहले के थे और कौन से इनके बाद । वस्तुतः नाथ साहित्य परंपरा की मीमांसा कठिन है ।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, रांगेय, राघव, राहुल, सांकृत्यायन आदि विद्वानों ने नाथ सिद्धों की जो सूचि अपने ग्रंथो में उद्धृत की है, उसके आधार पर हम यहाँ नाथों की चार सूचियों का उल्लेख कर रहे है । इनके ऐतिहासिक प्रमाणों का लेखा-जोखा हमारे पास नहीं है-[६]

''गोरक्षनाथ के पूर्ववर्ती नाथ''

१. एकनाथ	५. दण्डनाथ	८. कूर्मनाथ
२. आदिनाथ	६. सत्यनाथ	९. जालंधरनाथ
३. मत्स्येन्द्रनाथ	७. संतोषनाथ	१०. गोरक्षनाथ
४. उदयनाथ		

''गोरक्षनाथ के समसामयिक नाथ''

१. चौरंगीनाथ	९. धोबी	१७. धर्मनाथ
२. चामरीनाथ	१०. नागार्जुन	१८. भद्रपा
३. तंतिपा	११. अचिति	१९. सबर
४. दारिपा	१२. चम्पक	२०. सान्ति
५. विरूपा	१३. ठैण्टस	२१. कुमारी
६. कामरी	१४. चुणकर	२२. सियारी
७. कनखल	१५. भादे	२३. कमल कंगारी
८. मेखल	१६. कामरी	२४. चर्पटीनाथ

'' गोरक्षनाथ के उत्तरवर्ती नाथ''

१. अजयपाल	९. जालंध्री पाँव	१७. बाल्गुन्दाई
२. काणेरी	१०. दत्तजी	१८. भरथरी
३. गरीब	११. देवल	१९. मच्छेन्द्रनाथ
४. गोपीचन्द्र	१२. धूंधलीमल	२०. महादेव

६. गोस्वामी सुरक्षित, पतंजलियोग एवं नाथयोग, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, २००६, पृ. २७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५. धोडाचौली	१३. नागार्जुन	२१. रामचंद्र
६. चरपटनाथ	१४. पार्वती	२२. लक्ष्मण
७. चौरंगीनाथ	१५. पृथ्वीनाथ	२३. सतवंती
८. चीणकनाथ	१६. बालकनाथ	२४. सुकुल हंस
		२५. हणवंत

विभिन्न ग्रंथों में उल्लिखित ८४ नामों की सूची

क्रम	नाथ सिद्ध	क्रम	सहजयानी सिद्ध
१	मीननाथ	१	लूहिपा
२	गोरक्षनाथ	२	लीलापा
३	चौरंगीनाथ	३	विरूपा
४	चामरीनाथ	४	डोम्भीपा
५	तंतिपा	५	शबरीपा
६	हालिपा	६	सरहपा
७	केदारिपा	७	कंकालीपा
८	धोंगपा	८	मीनपा
९	दारिपा	९	गोरक्षण
१०	विरूपा	१०	चौरंगीपा
११	कपाली	११	वीणापा
१२	कमारी	१२	शान्तिपा
१३	कान्हा	१३	तंतिपा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१४	कनखल	१४	चमरिपा
१५	मेखल	१५	खड्गपा
१६	उन्मन	१६	नागार्जुन
१७	काण्डलि	१७	कराहपा
१८	धोबी	१८	कर्णरिपा (आर्यदेव)
१९	जालंधर	१९	थगनपा
२०	तोंगी	२०	नारोपा
२१	मवह	२१	शलिपा (शीलपा)
२२	नागार्जुन	२२	तिलोपा
२३	दौली	२३	छत्रपा
२४	भिषाल	२४	भद्रपा
२५	अचिति	२५	दोखधिपा (द्विखंडिता)
२६	चम्पक	२६	अजोगिपा
२७	ढैण्टस	२७	कालपा
२८	भुम्बरी	२८	धोम्भिपा
२९	बाकलि	२९	कंकणपा
३०	तुजी	३०	कमरीपा (कम्बलपा)
३१	चर्पटी	३१	डेंगिपा
३२	भादे	३२	भदेपा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३३	चांदन	३३	तन्धेपा (तंतिपा)
३४	कामरी	३४	कुकुरिपा
३५	करवत	३५	कुचिपा (कुसूलिपा)
३६	धर्मपापतंग	३६	धर्मपा
३७	भद्र	३७	महीपा (महिलपा)
३८	पातलिभद्र	३८	अचिन्तिपा
३९	पालिहिह	३९	भलहपा (भवपा)
४०	भानु	४०	नलिनपा
४१	मीन	४१	भूसुकपा
४२	निर्दय	४२	इंद्रभूति
४३	सवर	४३	मेकोपा
४४	सांति	४४	कुडालिपा (कुद्दुलिपा)
४५	भर्तृहरि	४५	कमरिपा (कम्मरिपा)
४६	भीषण	४६	जालंधरपा (जालंधारक)
४७	भटी	४७	राहुलपा
४८	गगनपा	४८	धर्मरिपा (धर्मरि)
४९	गमार	४९	धोकरिपा
५०	मेनुरा	५०	मेदनीपा (हालीपा)
५१	कुमारी	५१	पंकजपा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५२	जीवन	५२	घंटापा (वज्रघंटा)
५३	अघोसाधव	५३	जोगिपा (अजोगिपा)
५४	गिरिवर	५४	चेलुकपा
५५	सियारी	५५	गुंडरिपा (गोरुपा)
५६	नागवालि	५६	लुपिकपा
५७	विभवत्	५७	निर्गुणपा
५८	सारंग	५८	जयानंत
५९	विविकिधज	५९	चर्पटपा (पचरिपा)
६०	मगरधज	६०	चम्पकपा
६१	अचित	६१	भिखनपा
६२	विचित	६२	भलिपा
६३	नेचक	६३	कुभरिपा
६४	चाटल	६४	चवरि (जवरि) अजपालिपा
६५	नाचन	६५	मणिभद्रा (योगिनी)
६६	भीलो	६६	मेखलापा (योगिनी)
६७	पाहिल	६७	कनखलापा (योगिनी)
६८	पासल	६८	कलकपा
६९	कमल-कंगारी	६९	कन्ताली (कन्थाली)पा
७०	चिपिल	७०	धहुलि(रि) पा (दबडिपा?)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

७१	गोविन्द	७१	उधनि (उधलि) पा
७२	भीम	७२	कपाल (कमल) पा
७३	भैरव	७३	किलपा
७४	भद्र	७४	सागरपा
७५	भमरी	७५	सर्वभक्षपा
७६	मुरुकुटी	७६	नागबोधिपा
		७७	दारिकपा
		७८	पुतुलिपा
		७९	पनहपा
		८०	कोकालिपा
		८१	अनंगपा
		८२	लक्ष्मीकरा
		८३	समुदपा
		८४	भलि (व्यालि)पा

गोरक्षनाथ की योगपरंपरा आदिनाथ शिव से होती है । इन नामों से गोरक्षनाथ परम्परा समृद्ध है । पं. परशुराम चतुर्वेदीने नवनाथों की कल्पना पर विचार करते हुए नवनाथों की लगभग ३० सूचियों का उल्लेख किया है । इन पर विचार कर जो नौ नाम निकले है, वे है- (१) मीनपा (मत्स्येन्द्रनाथ), (२) गोरक्षनाथ, (३) जालन्धरनाथ, (४) चौरंगीनाथ, (५) कनिप (कुणेरीपानाथ), (६) चर्पटीनाथ, (७) भर्तृहरि, (८) कंथडिनाथ और (९) गहनीनाथ ।

आचार्य विनयमोहन शर्माने अपनी पुस्तक 'हिन्दी को मराठी संतो की देन' में गोरक्षनाथ की परम्परा की बहुमान्य नाथपरम्परा का निरूपण इस तरह किया है-[७]

७. अनुजप्रताप सिंह, गोरक्षनाथ और नाथसिद्ध, गोरक्षनाथ मंदिर - गोरखपुर, द्वितीय संस्करण, वि.सं. २०६२, पृ. १३०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

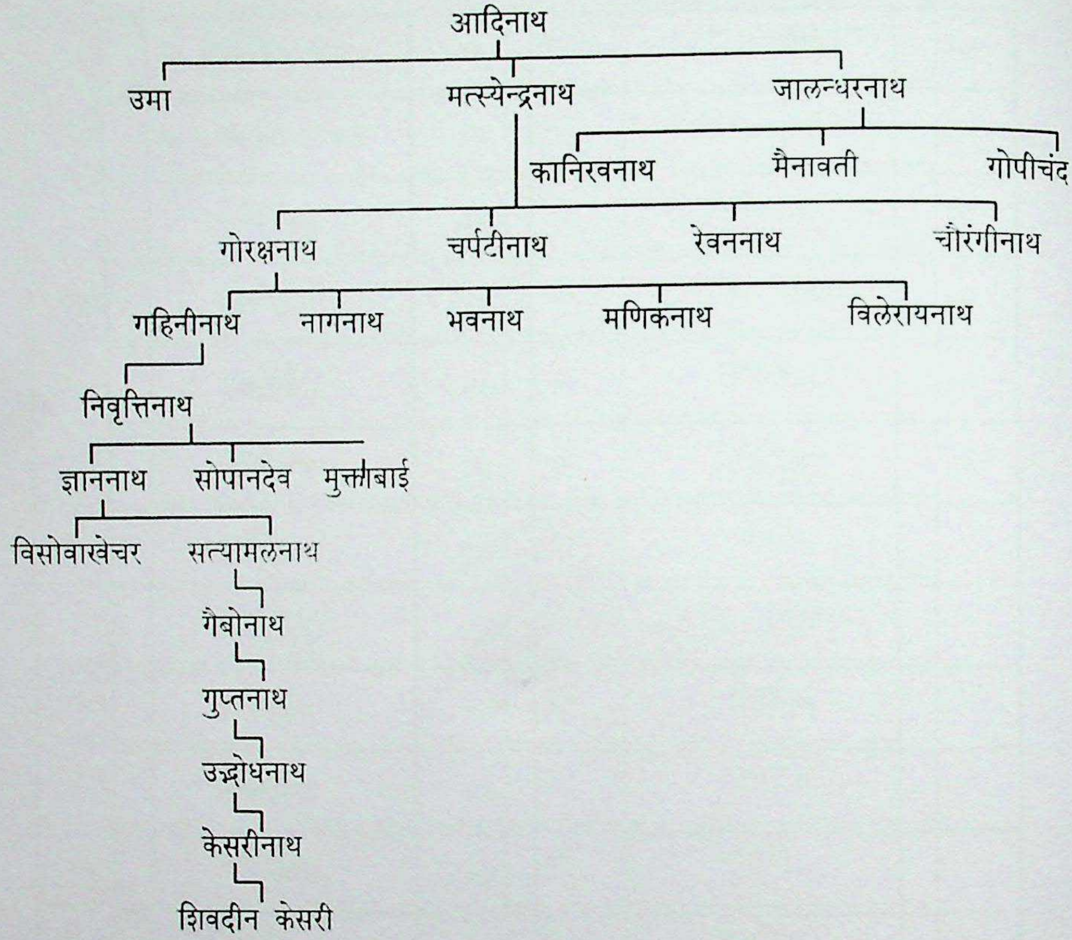

'महाराष्ट्र के नाथपंथीय कवियों का हिन्दी काव्य' ग्रन्थ में डॉ. कामत ने निवृत्तिनाथ की गुरु-शिष्य-परंपरा की सूची इस प्रकार दी है-[८]

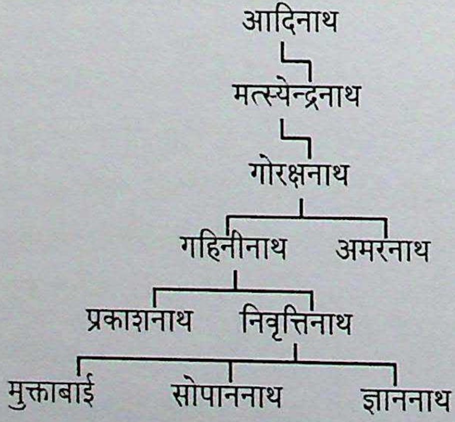

८. कामत अशोक प्रभाकर, महाराष्ट्र के नाथपंथी कवियों का हिन्दी काव्य, कुंजबिहारीलाल पंचोरी, जवाहर पुस्तकालय - मथुरा वि. सं. १९७६ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्री 'ज्ञानेश्वर चरित्र' में पं. लक्ष्मण रामचंद्र पंगारकर ने ज्ञाननाथ तक की गुरुपरम्परा इस प्रकार बताई है-[१]

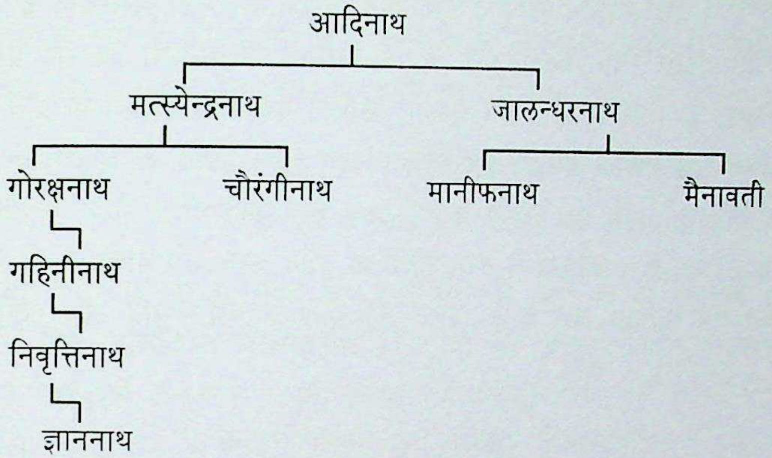

इस प्रकार यदि नवनाथों, कापालिकों, ज्ञाननाथ तक के गुरु सिद्धों और 'वर्णरत्नाकर' के चौरासी नाथ-सिद्धों को नाथ परम्परा में मान लिया जाय तो चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ होने के पूर्व लगभग सौ सिद्धों के नाम उपलब्ध होते हैं ।

गोरक्षनाथ परंपरा के प्रारंभ-कर्ता, प्रवर्तक आदिनाथ भगवान शिव है, इनके शिष्य मत्स्येन्द्रनाथ हैं । गोरक्षनाथ ने नाथ योगी संप्रदाय का संगठन किया था । इन नाथ योगियों की अनेक शाखाएँ हुई जिनमें १२ पंथ प्रसिद्ध है जो इस तरह हैं-

१) सत्यानाथी, २) धर्मनाथी, ३) रामपंथी, ४) नाटेश्वरी, ५) कन्हड, ६) कपिलानी, ७) वैराग पंथ, ८) माननाथी, ९) आईपंथ, १०) पागलपंथ, ११) धजपंथ और १२) गंगानाथी ।

आजकल नाथ-पंथ का जो रूप है, वह मुख्यतः गोरक्षनाथी संप्रदाय ही है । नाथ संप्रदाय को सम्पूर्ण भारत एवं भारत से बाहर प्रसारित करने का श्रेय अकेले गोरक्षनाथ को जाता है । वह भारतीय धर्माकाश का ध्रुव तारा है । उनसे एक नये प्रकार के धर्म का जन्म हुआ है, आविर्भाव हुआ है । गोरक्षनाथ के बिना न कबीर हो सकते थे, न नानक, न दादू, न वाजिद, न फरीद, न मीरा, न लाल । गोरक्षनाथ के बिना निर्गुण परम्परा ही न बनती । इन सबका मौलिक आधार गुरु गोरक्षनाथ है । वह नींव का पत्थर है । भारत की सारी संत परम्परा गोरक्षनाथ की ऋणी है । गोरक्षनाथ के पास अपूर्व व्यक्तित्व और कृतित्व है ।

---

१. द्विवेदी हजारीप्रसाद, नाथ संप्रदाय : लोकभारती प्रकाशन - इलाहाबाद, २०१०, पृ. ३२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महर्षि पतंजलि की परम्परा :

महर्षि पतंजलि वैदिक (निगम) परम्परा से हैं । विश्व के प्राचीन ग्रन्थ 'वेद' में 'योग' शब्द की चर्चा मिलती है । वेद भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान विज्ञान का मूल उद्गमस्थान है । वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय योग-विद्या (योग-विज्ञान) है । योग सम्बन्धी विचारधारा का सर्व प्रथम उल्लेख हमें ऋग्वेद में प्राप्त होता है । ऋग्वेद में अपने पूर्वजो, ऋषियों एवं मार्ग प्रदर्शकों के प्रति समर्पणभाव यह स्पष्ट करता है कि उनमें वर्णित सभ्यता का स्वरूप बहुत पहले उद्भुत हो चुका था । ऋग्वेद से हमें जिस सभ्यता का बोध होता है वह वेद के पूर्व ही फल-फूल चुकी थी । वैदिक मन्त्रों की रचना योग की उच्चतम रूप की देन हैं । ऋषियों ने परम सत्य का दर्शन करके उसे वैदिक मन्त्रों में प्रकट किया । वेद को अपौरुषेय एंव मंत्रदृष्टा कहा है । 'योग' का सर्वप्रथम वर्णन श्रुति और स्मृति ग्रंथो में है । याज्ञवल्क्यस्मृति (१२/५) में कहा है-

''हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ।''

अर्थात् - हिरण्यगर्भ ही योग के वक्ता हैं । उनसे पुरातन कोई नहीं है । महाभारत (१२/३४९/६५) में स्पष्ट कहा है-

''सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्चते
हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ॥

अर्थात् योग के प्राचीन वक्ता हिरण्यगर्भ ही है और सांख्य प्रवक्ता परम तपस्वी कपिल मुनि है ।

हिरण्यगर्भने सनकादिक एवं सनकादिक सनातन को योग का उपदेश दिया । सनक, सनातन, सनन्दन, कपिल, आसुरि, बोढू, पंचशिख, पद्मृत विद्वान राजयोग के अनुयायी हुए । 'कर्मयोग' की शाखा में संसार के कार्य करते हुए परमात्मा की साधना करनेवाले, विवस्वान, मनु, इक्ष्वाकु एवं अन्य राजर्षि हुए । गीता में (४/१-२) कहा है- मैंने इस ऐनाशी योग को सूर्य को कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र विवस्वान को कहा, विवस्वान ने अपने पुत्र मनु को कहा, मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को कहा । इस तरह से प्राप्त यह योग सप्तर्षियों द्वारा जाना गया । इसके बाद यह योग लुप्तप्राय हो गया । तु मेरा भक्त ओर प्रिय सखा है, इसलिए वही पुरातन योग आज मैंने तुझे बताया है । यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखने योग्य है । इस तरह योग की दो महान परम्परा चली- १. वैदिक (निगम) योगपरम्परा २. नाथ पंथ (आगम) योगपरम्परा ।

आचार्य पतंजलि योग के प्रतिपादक नहीं है, उनकी योग सम्बन्धी विचारधारा हिरण्यगर्भ सांख्य (कपिल) आदि से प्राप्त योग अनुशासन का पश्चाद्वर्ती उपदेश है, जिसे महर्षि पतंजलि ने अपने ज्ञान से प्रकाशित किया है । यह उनका प्रौढ चिंतन, मनन एवं निदिध्यासन का प्रतिफल है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महर्षि पतंजलि लगभग ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी में हुए और गोरक्षनाथ लगभग १०वीं शताब्दी के आसपास हुए है । कुछ विद्वानों का मत है कि पतंजलि 'शेषावतार' थे । जो त्रिविध दुखों से पीडित मानवसमाज के कल्याण के लिए एवं कैवल्यप्राप्ति के उपायों के लिए अर्घ्य देते हुए ऋषि की अंजलि में बालक के रूप में आकर गिरे थे । जनश्रुति के अनुसार अंजलि में गिरने के कारण इनका नाम पतंजलि पडा था । इन्होंने आदिकाल से चली आ रही योग-विद्या का प्रचार प्रसार किया ।

मानव में तीन प्रकार के मल होते हैं- १. शरीर का मल, २. वाणी का मल और ३. चित्त का मल । इनकी नितृत्ति करने के लिए पतंजलि ने तीन ग्रन्थ लिखे ऐसा माना जाता है जो इस प्रकार हैं-

१. चरकसंहिताः शरीर साधना का मुख्य अंग है । शरीर के मलों को दूर कर उसे सम्पूर्ण स्वस्थ एवं नीरोगी रखने के लिए पतंजलि ने चरकसंहिता की रचना कर आयुर्वेदचिकित्साशास्त्र के द्वार खोले । यह आयुर्वेद का महत्वपूर्ण शास्त्र है । यदि स्वस्थ एंव नीरोगी शरीर नहीं है तो वह योग साधना में विघ्न करता हैं ।

२. महाभाष्यः शुद्ध उच्चारण महत्वपूर्ण है । वाणी के मल को दूर करने के लिए एवं परिष्कृत करने के लिए विशाल 'महाभाष्य' पाणिनिकृत अष्टाध्यायी लिखा गया ग्रन्थ है ।

३. योग सूत्र : चित्त के मल को दूर करने के लिए चार पादो में विभक्त 'योग-सूत्र' की रचना की गई है । 'योगसूत्र' योग जगत का अति महत्वपूर्ण एवं उच्चकोटि का महान ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ भारत के गौरव का विषय है । यहीं हमारी पूँजी है ।

गोरक्षनाथ एवं पतंजलियोग में साम्यः

इन दोनों के अध्ययन से इन दोनों में अनेक समानताएँ दिखाई देती है तो कहीं पर असमानताएँ भी । थोडा बहुत अंतर होने के बावजूद इन दोनों का लक्ष्य एक ही है- 'मोक्ष' ।

१. आधार साम्यः गोरक्षनाथ का साहित्य अवैदिक अर्थात् आगम साहित्य आधारित है । फिर भी पतंजलि का भी सहारा लिया है । पतंजलि का साहित्य वैदिक (निगम) साहित्य पर आधारित है । शिव-पार्वती के संवादात्मक ग्रन्थों याने शिव का पार्वती को उपदेश आगम (अवैदिक) कहा जाता है । आगम और निगम दोनों ही भारत वर्ष का सनातन और अपौरुषेय वचन है । दोनों की प्रमाणिकता पर किसी प्रकार की शंका नहीं की जा सकती है । दोनों ही अपनी जगह सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् है ।

२. विभूति-सभ्यताः दिव्य सामर्थ्यशक्ति, समृद्धि को विभूति कहते है । योगसाधना के मार्ग में अनके विभूतियाँ प्राप्त होती है, बिखरी पडी रहती है । सारी विभूति के द्वार खुल जाते है । जो चाहोगे वही मिलेगा । किन्तु साधारण योगसाधक को यह विभूतियाँ आकर्षित कर सकती है । किन्तु सिद्ध योगी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के लिए यह कंकण, पत्थर, धूल के समान होती है । योगी का लक्ष्य यह विभूतियाँ नहीं है, उसका लक्ष्य कैवल्य (शिवतत्त्व) है, वह तो परमपद, परमतत्त्व चाहता है । विभूति की समृद्धि पतंजलि के 'राजयोग' एवं गोरक्षनाथ के 'हठयोग' दोनों में है । लेकिन सच्चे योग-साधक को इनको देखने का समय ही नहीं मिलता है । योग एक कल्पवृक्ष है, पारसमणि है, कामधेनु है । जो मांगो वह मिलेगा ।

३. प्रयोजन–साम्य: महर्षि पतंजलि का अंतिम लक्ष्य है- स्वरूपावस्थान । पतंजलि कहते है- ''तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थाम्।॥३॥'' जब चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है, उस समय द्रष्टा (आत्मा) की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है । अर्थात् कैवल्य प्राप्त करता है और शिव और शक्ति का मिलन कराकर स्वयं शिवरूप हो जाना गोरक्षनाथ योग का लक्ष्य है । पतंजलि कैवल्य से जाने जाते है और गोरक्षनाथ परमपद (शिवत्व) से जाने जाते है । त्रिविध दुःखों याने भवताप का शमन करना दोनों योग-दर्शन का अंतिम लक्ष्य है ।

४. पिण्ड महत्त्व–साम्य: पिण्ड का अर्थ है- शरीर, देह, काया, मानव की इसको लेकर दोनों में साम्यता है । योग-साधना का एक मात्र साधन नीरोगी एवं स्वस्थ शरीर है । चित्त की वृत्तियों का निरोध चित्त के द्वारा ही होता है, चित्त देह के बिना कुछ भी नहीं कर सकता । देह नाशवान् होता है और व्याधि का घर है तो भी काया के बिना योग का कोई साधन नहीं है । अजर-अमरता का मार्ग इस क्षणभंगुर देह से गुजरता है । इसलिये ब्रह्मचर्य का पालन देह के स्थैर्य के लिए है । ताप और शौच भी देह की पवित्रता के लिए है । गोरक्षनाथ ने 'हठयोग' क्रियाएँ- धाँति, बस्ती, नौली आदि देह के आरोग्य के लिए ही कहा है । षट्कर्म, षट्मुद्राएँ, और षट्चक्रों की साधना देह को नीरोगी करके लक्ष्य तक पहुँचाता है ।

५. भक्ति साम्य: पतंजलि एवं गोरक्षनाथ दोनों ही भक्ति के महत्त्व को मानते है । इन दोनों ने 'ईश्वर प्रणिधान' समाधि याने लक्ष्य के लिये साधन के रूप में स्वीकारा है ।

गोरक्षनाथ एवं पतंजलि के योग में वैषम्यता:

'योग' की धारा प्राचीन विशुद्ध धारा के रूप में गोरक्षनाथ एवं पतंजलि से आयी है । पतंजलि की धारा 'राजयोग' नाम से एवं गोरक्षनाथ की धारा 'हठयोग' के नाम से जानी जाती है । इन दोनों का कहीं भी परस्पर विरोध नहीं है । दोनों ही अपने आप में पूर्ण और स्वतन्त्र है । दोनों की धारा एक ही दिशा में आती है । दोनों का लक्ष्य परमपद की प्राप्ति है । इनमें जो अतंर है वह है-

१. साधना वैषम्य: पतंजलि ने 'योग-सूत्र' में प्रमुख चार साधन माने है । (१) अभ्यास और वैराग्य (२) यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि (३) तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान और (४) कैवल्य प्रणिधान । इसे भक्तियोग कहते है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गोरक्षनाथ ने योग के छः अंग माने है । मुख्य रूप से आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । नाथ योगी शिष्यों को दीक्षा तब देते थे, जब उन्हें लगे कि शिष्य यम और नियम का पालन कर उसका आचरण कर रहा है, बिना यम, नियम के आचरण दीक्षा नहीं दी जाती थी, इसलिए 'हठयोग साधना' में यम-नियम विरुद्ध रूप से वर्णित नहीं किया गया है । गोरक्षनाथ ने इसे स्वीकारा है और इसका निरूपण भी किया है । इसे योग्यता के रूप में लिया है । इसलिये ध्यान नहीं दिया है । षडंगयोग में भी षट्कर्म, षट्चक्र, कुंडलिनी, षोडश-आधार, दो लक्ष्य और पञ्च व्योम का ज्ञान और साधना गोरक्षनाथ के योग की विशेषता है । गोरक्षनाथ की साधना क्रिया-प्रधान है और पतंजलि की साधना ज्ञान-प्रधान है ।

२. परमतत्त्व वैषम्यः गोरक्षनाथ का दर्शन स्वरूपाद्वैत है और पतंजलि का दर्शन त्रैतवादी है । पतंजलि ने छब्बीस तत्त्व माने है, इनका समाहार तीन तत्त्वों में है- द्रष्टा, द्रश्य और नियामक । द्रष्टा जीवात्मा है, द्रश्य प्रकृति है ओर नियामक ईश्वर है । यह तीनों अनादि, अनंत, एवं अविनाशी है । इस तरह यह त्रैतवादी है । गुरु गोरक्षनाथ स्वरूपाद्वैत याने शिवद्वैतवाद को स्वीकारते है । इनके अनुसार संविदरूप शिव ही परमतत्त्व है । सकल जगत्प्रपंच उसी का रूप है । शिव और शक्ति के तत्त्व नहीं है, वह पूर्ण अभेद है । केवल शब्दों का ही अंतर है । तत्त्व तो एक ही है । इस तरह दोनो में परमतत्त्वविषयक वैषम्य है ।

३. मुद्रा चक्र एवं कुडलिनी–वैषम्यः मुद्रा, चक्र ओर कुण्डलिनी योग-साधना का उल्लेख स्पष्टतः पतंजलि ने नहीं किया है । जब कि गोरक्षनाथ की योग-साधना में उपलब्ध है । योग-साधक न देहशुद्धि एवं चित्तशुद्धि के लिए षट्कर्मो का एवं दिव्य शक्तियों की प्राप्ति और परम लक्ष्य शिवतत्त्व की प्राप्ति के लिए चरका तथा कुंडलिनी शक्ति की साधना के लिए उपयोगी माना है । चक्र, मुद्रा और कुंडलिनी शक्ति की साधना विधि का विस्तृत विवेचन 'हठयोग' के ग्रंथो में ही पाया जाता है । गोरक्षनाथ और नाथयोग की यह विशिष्ट मुख्य देन है ।

४. संसार वैषम्यः संसार विषयक वैषम्य को लेकर इन दोनों में बड़ा अंतर है । महर्षि पतंजलि ने संसार को हेय द्रष्टि से देखा है, वह संसार में दुःख ही दुःख है, ऐसा मानते है, अतः पतंजलि संसार को दुःखमय मानकर समाधिजन्य विवेक ख्याति से संसारचक्र का निरोध मानवजीवन का लक्ष्य मानते है । गुरु गोरक्षनाथ संसार को सर्वथा हेय नहीं मानते । संसार भगवान् शिव की रचना है । वह शिवरूप है । जीव को संसार में रहकर शिव का साक्षात्कार करना है । संसार शिव ओर शक्ति की लीला है । अगर संसार दुःखमय है तो दुःख भी तो शिव की क्रीडा का एक भाग है ।

५. गुरु वैषम्यः गुरु विषय को लेकर दोनों में अतंर है । गोरक्षनाथ ने गुरु को अनिवार्य माना है जब कि पतंजलि ने गुरु को एक हद तक ही माना है । पतंजलि ने कहा है कि योगविद्या सीखने में गुरु का महत्त्व है । गुरु के श्रीमुख से श्रवण कर आगे जाना चाहिए, निर्देश जरूरी है किन्तु सर्वस्व नहीं माना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है । उनका मानना है साधक को योगमार्ग में स्वयं जाना जरूरी है । गुरु गोरक्षनाथ की गुरु विषयक मान्यता पतंजलि की मान्यता से भिन्न है । वह गुरु के बिना योग में सफल नहीं हो सकते है । गोरक्षनाथ का मानना है कि गुरु की अनुकम्पा से योग में सिद्ध हो सकते है । यदि गुरु प्रसन्न हो जाये तो पलभर में जीवन बदल देगा, लेकिन सद्गुरु सबको नहीं मिलता, वह जन्मोजन्म के पुण्यों सें मिलते है । शिव कृपा से योग्य गुरु प्राप्त होता है । योग्य गुरु के मार्गदर्शन-निर्देशन में योग-साधना करनी योग्य है । गुरु को लेकर दोनों में अन्तर है ।

६. माया वैषम्यः माया को लेकर दोनों में अंतर है । पतंजलि ने माया का कहीं भी निरूपण नहीं किया है । अविद्या का उल्लेख किया है । गोरक्षनाथ ने माया का वर्णन किया है । वह माया को महाशक्ति का एक रूप मानते है ।

७. तप और स्वाध्याय-वैषम्यः पतंजलि ने तप और स्वाध्याय को क्रियायोग के अंदर माना है । गोरक्षनाथ की द्रष्टि में इनका महत्त्व नहीं है । वह कहते हैं कि वह शरीर का शोषण है, वह योग में उपयोगी नहीं है । देह ही मुक्ति का द्वार है, देह को कष्ट नहीं देना चाहिए । यदि स्वाध्याय से योग सिद्ध होने लगे तो मेरु पर्वत कम्पित होने लगेगा और पृथ्वी डगमगाने लगेगी ।

इसी प्रकार गोरक्ष एवं पतंजलि की योग-पद्धतियों में भेद-विभेद का उल्लेख मिलता है । दोनों ही अनूठे है, अद्भुत है । पतंजलि एक महान चिन्तक और साधक थे । अपने अनुभवों एवं ज्ञान के आधार पर तत्त्वदर्शन एवं साधना अनुशासन (उपदेश) किया वह विशुद्ध दर्शन प्रस्थान के रूप में माना गया । इनकी परम्परा में कई भाष्यकार हुए, उनके दर्शन एवं उपदेश को आगे लेकर गए । उन्होंने कोई संप्रदाय स्थापित नहीं किया है । पतंजलि आध्यात्मिक जगत की उत्तम मूर्ति है । इनका दर्शन षट्दर्शनों में प्रसिद्ध हुआ । गुरु गोरक्षनाथ ने योगविद्या को प्रतिष्ठापित एवं प्रचार-प्रसारित किया । वह दर्शन प्रस्थापन की जगह लोककल्याण के लिए स्थापित करना चाहते थे । यह लोगों के बीच रहते हुए उनकी भाषा में उन्होंनें स्थापित करके योग को वामाचार की विकृतियों से बाहर निकालकर एक सात्त्विक धरातल पर प्रतिष्ठित किया । उन्होंने 'योगसूत्र' जैसे सिद्धांतग्रन्थ के बजाय सबद, साखी, पदों आदि के द्वारा अपने अनुभव एवं चिंतन मनन का रूप और सही आकार दिया । यह सिद्धांतग्रन्थ मात्र योगी गोरक्षनाथ के नाम से जाना जाता है । सात्त्विक वृत्ति, सदाचार और संयम, नैतिकता आदि पर अधिक बल देकर प्रचार किया, उनकी द्रष्टि हंमेशा चरित्र पर रहती थी ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

યોગનો ચિકિત્સાલક્ષી પ્રયોગ

કિરણ ન. શીંગ્લોત*

યોગ એ આધ્યાત્મિક ભૂમિકા પર રચાયેલું એક પ્રાચીન ભારતીય દર્શન છે. યોગ શબ્દ સંસ્કૃત ધાતુ યુજ્ ઉપરથી બન્યો છે અને એનો જોડવા, બાંધવા, લગાડવા, ઉપયોગ કરવા, ઐક્ય કે સંયોજન કરવાના અર્થમાં ઉપયોગ થાય છે. યોગ ભારતીય ષડ્દર્શનો પૈકીનું એક વૈદિક દર્શન છે. તે શરીર, મન તથા આત્માની સમગ્ર શક્તિઓને એકત્ર કરીને પરમાત્માની પ્રાપ્તિ કરાવી મુક્તિ કે મોક્ષ અપાવનાર અધ્યાત્મ વિદ્યા છે. તમામ ભારતીય દર્શનોની માફક યોગનો એક હેતુ દુઃખોની આત્યંતિક નિવૃત્તિ છે. દરેક મનુષ્યને તેના જીવનકાળ દરમિયાન આધ્યાત્મિક, આધિભૌતિક અને આધિદૈવિક એમ ત્રિવિધ દુઃખો અનિવાર્યપણે ભોગવવાં પડે છે. આમાંથી આધ્યાત્મિક દુઃખોમાં શારીરિક વ્યાધિઓ અને માનસિક સંતાપોનો સમાવેશ થાય છે. નિષ્ઠાપૂર્વક કરવામાં આવતી યોગસાધના વ્યક્તિમાત્રને આ દુઃખોમાંથી મુક્તિ અપાવવાની સંભાવના ધરાવે છે. છેલ્લાં સોએક વર્ષોમાં યોગનો ભૌતિક, શારીરિક અને ચિકિત્સાલક્ષી વિદ્યા તરીકે ઘણો પ્રચાર થયો છે. મૂળભૂત રીતે આધ્યાત્મિક વિદ્યા હોવાને કારણે યોગના ચિકિત્સાલક્ષી ઉપયોગમાં અનેક મર્યાદાઓ રહેલી છે. વર્તમાન સમયમાં માનવીને થતા રોગોની વ્યાપકતા અને જટિલતા ઘણી વધી છે. આવા સમયે રોગોપચારમાં વૈજ્ઞાનિક અભિગમની અપેક્ષા છે. આધુનિક યોગગુરુઓ યોગનો આધુનિક ચિકિત્સાપદ્ધતિ (ઍલોપથી)ના પ્રતિસ્પર્ધી તરીકે ઉલ્લેખ કરે છે એમાં ઘણી અતિશયોક્તિ છે. યોગનું પરંપરાગત દાર્શનિક અને આધ્યાત્મિક સ્વરૂપ જોતાં વૈકલ્પિક ચિકિત્સા તરીકે અન્ય કોઈપણ ચિકિત્સાપદ્ધતિની સામે એને આગળ કરવામાં શાણપણ નથી.

આધુનિક માનવી વ્યાવસાયિક કાર્યબોજ, કૌટુંબિક જવાબદારીઓ, આર્થિક અસલામતિ તેમ જ જીવનની અનિશ્ચિતતા સાથે તાણયુક્ત જીવન જીવી રહ્યો છે. ડૂબતી વ્યક્તિ તરણું ઝાલે તેમ માનસિક તાણથી ઘેરાયેલો માનવી યોગ ભણી વળ્યો છે. અતિશય ચિંતાતુરતા, પારાવાર હતાશા અને અગણિત શારીરિક તકલીફોની વચ્ચે યોગ અને એની પોતાની જાત સાથે પુનઃ જોડાવાનું વચન પૂરું પાડે છે. આધુનિક ચિકિત્સા ઘણી ખર્ચાળ બનતી ચાલી છે ત્યારે યોગનાં અમુક અંગોની નિયમિત સાધના અમુક રોગોમાં નક્કર અને ટકાઉ પુરવાર થઈ શકે છે. યોગમાં આસનો, પ્રાણાયામ આધારિત શ્વસનક્રિયાઓ અને ધ્યાનનો ઉપયોગ કરવામાં આવે છે. આ યોગાંગો શરીર અને મનના પારસ્પરિક સંબંધ પર રચાયેલાં છે. શરીર અને મનના સહયોગથી કરવામાં આવતી યૌગિક ક્રિયાઓમાં સ્નાયુઓનું

'સ્વાધ્યાય' - પુ. ૫૯, વર્ષ ૨૦૨૨, પૃ. ૧૭૫-૧૮૩. ISSN 2250-0391

* યોગનિકેતન, પોસ્ટ ઑફિસ સામે, ફતેગંજ ચાર રસ્તા, વડોદરા - ૩૯૦ ૦૦૨, M: 09426392888, Email: kshinglot@yahoo.co.in

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

વિશિષ્ટ પદ્ધતિથી ખેંચાણ, તેમ જ કરોડસ્તંભની સ્થિતિસ્થાપકતામાં વધારાની સાથે અંતર્મુખતા સંકળાયેલાં છે. પરિણામે એનાથી માનસિક તણાવનું ભારણ નોંધપાત્ર રીતે હળવું થાય છે. માનવીને થતા ૭૫% રોગોમાં તણાવની ભૂમિકા રહેલી છે. ઉપરાંત નાદુરસ્ત જીવનશૈલી અને વિકાસ પાછળની આંધળી દોટે પણ માનવ જીવનમાં વિષમતા પેદા કરી છે. આ સંજોગોમાં યોગને ચિકિત્સાલક્ષી ગણવાને બદલે તણાવ તેમ જ મનુષ્ય સભ્યતાના દૂષણોને ડામવાના હથિયાર (anti-stress and anti-cilvilisation pill) તરીકે માન્યતા આપવાનું વધારે યોગ્ય ઠરે છે. માનસિક તાણ ઘણા રોગોની જનેતા છે. જેમ કે, દીર્ઘકાલીન તાણથી હૃદયરોગનું જોખમ વધે છે. યોગનાં સ્વાસ્થ્યલક્ષી પરિણામો અંગે વિશ્વભરમાં થઈ રહેલાં સંશોધનો હજુ તેની શિશુ અવસ્થામાં છે, છતાં હાલમાં કરવામાં આવેલા કેટલાક તબીબી અભ્યાસોથી એવું જોવા મળ્યું છે કે યૌગિક ક્રિયાઓના અભ્યાસથી બ્લડ પ્રેશર અને હૃદયની ગતિ ઘટે છે. આનાથી હૃદયરોગનું જોખમ ઓછું થાય છે. આ ઉપરાંત તેના બીજા પણ કેટલાક લાભો છે. ઈ.સ. ૨૦૦૬માં કરવામાં આવેલા એક અભ્યાસના તારણ અનુસાર હૃદય અને રુધિરાભિસરણને લગતી બીમારીઓથી પીડિત વ્યક્તિઓમાં યૌગિક વિધિઓથી લોહીમાં કોલેસ્ટેરોલ તેમ જ ટ્રાઇગ્લીસરાઇડ ચરબીની માત્રા ઘટે છે, તેમ જ રુધિરાભિસરણમાં સુધારો થાય છે. આનાથી પ્રેરિત થઈને અનેક હૉસ્પિટલો હવે હૃદયરોગના હુમલા બાદ સાજા થઈ રહેલા દર્દીઓ માટે હૃદયસ્વાસ્થ્યપુનર્વસન (કાર્ડિયાક રિહેબિલિટેશન)ના એક અંગ તરીકે યોગનો કાર્યક્રમ અપનાવી ચૂકી છે. નિયમિત યોગાભ્યાસ કરનારા લોકોમાં બ્લડ ગ્લુકોઝનું નિયંત્રણ વધારે અસરકારક રીતે થાય છે, જેનાથી ડાયાબિટીઝના દર્દીઓને ઉત્તમ લાભ મળે છે. હાઇ બ્લડ પ્રેશર અને ડાયાબિટીઝની બીમારીઓ હૃદયરોગ માટે સ્વતંત્ર પરિબળો છે. તેથી યોગાભ્યાસ હૃદયરોગ સામે અસરકારક રક્ષણ પૂરું પાડી શકે છે.

ચિકિત્સામાં યોગની પૂરક ભૂમિકા

યોગનું પ્રયોજન મૂલતઃ રોગચિકિત્સા નહીં, પણ આધ્યાત્મિક ઉન્નતિ છે. છતાં બીમારીઓના ઈલાજમાં યોગનો માન્ય ચિકિત્સાપદ્ધતિઓના વિકલ્પ નહીં, પણ પૂરક અંગ તરીકે સ્વીકાર કરવો જોઈએ. કોઈપણ ચિકિત્સાપદ્ધતિમાં બીમારીઓના ઈલાજ માટે ઔષધો, શસ્ત્રક્રિયા ઇત્યાદિનો અનિવાર્યપણે ઉપયોગ કરવામાં આવે છે. યોગ દ્વારા કરવામાં આવતા ઉપચારોમાં ઔષધો, શસ્ત્રક્રિયાનો સમાવેશ થતો ન હોવાથી એને ચિકિત્સાપદ્ધતિઓની સમકક્ષ ન મૂકી શકાય. છતાં એના સ્વરૂપમાં પૂરક ચિકિત્સા જોઈ શકાય છે. મૉડર્ન મેડિસિન, આયુર્વેદ, હોમિયોપથી કે નેચરોપથીની જે મર્યાદા છે તે યોગની ક્ષમતા છે. યોગ માનસિક તાણથી મુક્તિ આપી શકે છે. ઘણા રોગો અસ્વસ્થ જીવનશૈલી સાથે સંકળાયેલા છે. આવા રોગોનો સફળ ઈલાજ કેવળ ઔષધોથી ન થઈ શકે. વ્યક્તિએ પોતાની જીવનશૈલીમાં પણ સાનુકૂળ પરિવર્તનો કરવાં પડે. યોગમાં તે સંભાવના છે (न अति अश्नतस्तु योगः अस्ति न च एकान्तम् अनश्नतः । न च अति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो एव न अर्जुन । श्रीमद् भगवद् गीता; ૬-૧૬). સ્થૂળતા પર કાબૂ મેળવવામાં યોગની અસરકારતા વિશે હજુ મતમતાંતરો

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

છે, પણ એક અભ્યાસમાં એવું જણાઈ આવ્યું છે કે યૌગિક જીવનશૈલી અપનાવવાથી વજન ઓછું કરી શકાય છે. સ્થૂળતા માટે કેવળ અતિઆહાર જવાબદાર નથી, પણ બીજાં અનેક પરિબળો ભાગ ભજવતાં હોય છે. યૌગિક જીવનશૈલીમાં યુક્ત આહાર, યુક્ત વિહાર (કસરત ઇત્યાદિ), યુક્ત નિદ્રા અને યુક્ત કાર્યપ્રબંધનો સમાવેશ થાય છે. અહીં શ્રીમદ્ ભગવદ્ ગીતામાં પ્રયોજેલા 'યુક્ત' શબ્દનો અર્થ 'સંતુલિત' એવો થાય છે. અભ્યાસોથી એવું જણાયું છે કે યોગની નિયમિત સાધના કરનારા લોકો આકંઠ ખાવાથી દૂર રહે છે. એ ધીમું ખાય છે અને સ્વાસ્થ્યપ્રદ આહાર પર પોતાની પસંદગી ઉતારે છે. યૌગિક અભ્યાસથી પાચન સુધરે છે. નિયમિત યોગાભ્યાસ કરનારના માનસિક બંધારણમાં પણ સુધારો થાય છે. અતિઆહાર અને કસરતવિમુખ જીવન ગાળનારા લોકો ઘણીવાર નકારાત્મક લાગણીઓ અને વિચારોથી પીડિત હોય છે. નકારાત્મક માનસિક ગ્રંથિઓ અને કડવા જીવન અનુભવો દીર્ઘકાલીન રોગોમાં વાતાવરણીય, ભૌતિક અને વારસાગત પરિબળો ઉપરાંત ભાગ ભજવતા હોય છે. ઔષધોથી કરવામાં આવતી ચિકિત્સા કેવળ બાહ્ય સ્તરની તેમ જ ચિહ્નાત્મક (symptomatic) પુરવાર થાય છે, જ્યારે યોગ આત્મનિરીક્ષણ અને શુભસંકલ્પો દ્વારા નકારાત્મક લાગણીઓ અને વિચારોમાં સાનુકૂળ પરિવર્તનો આણીને રોગપ્રક્રિયાની આત્યંતિક નિવૃત્તિ કરીને રોગમુક્તિનું વચન આપે છે.

યોગની સ્વાસ્થ્યલક્ષી તેમ જ ચિકિત્સાલક્ષી દેહધાર્મિક અસરો

લાંબા ગાળા સુધી નિયમિત અને નિષ્ઠાપૂર્વક કરવામાં આવતા યૌગિક અભ્યાસ (सः दीर्घकाल - नैरन्तर्य - सत्कार - आसेवितः द्रढभूमिः । पातंजल योगसूत्र: ૧-૧૪)થી અન્નમય કોષના સ્તરે સાનુકૂળ અસર થાય છે. એનાથી શરીરના સ્નાયુઓનો ટોન સમધારણ થાય છે. શરીરનાં અંગો અને સાંધાની લવચીકતા અને સ્થિતિસ્થાપકતા વધે છે. હાડકાં અને સ્નાયુઓ મજબૂત બને છે. અંગસ્થિતિ તેમ જ શરીર સંતુલનમાં સુધારો વર્તાય છે. વિશેષતઃ શરીરના સ્નાયુઓમાં જમા થયેલો દીર્ઘકાલીન દૂર કરવામાં યૌગિક ક્રિયાઓ મહત્ત્વની ભૂમિકા ધરાવે છે. ખભા, કમર, ગરદન, પેટ, છાતી, જડબાં અને દાંત, હાથપગના સાંધા અને પીંડીના સ્નાયુઓમાં થતાં કળતર અને જડતા સાથે સ્નાયુઓમાં અજ્ઞાતપણે જમા થયેલો તણાવ ભાગ ભજવે છે. પાચન, શ્વસન અને રુધિરાભિસરણ સાથે સંકળાયેલા ઘણા રોગો પણ એની સાથે સંબંધ ધરાવે છે. યોગાભ્યાસ તેમાં રાહત આપી શકે છે.

યોગની વિધિઓમાં શ્વાસનો લય જળવાય છે. આનાથી ધીમા અને ઊંડા શ્વાસ લેવાની ટેવ પડે છે. પરિણામે શરીરના કોષો અને અવયવોને મળતા પ્રાણવાયુના પુરવઠામાં વધારો થાય છે. યૌગિક ક્રિયાઓ સ્થિતિલક્ષી (વિરુદ્ધ ગતિલક્ષી) હોવાને કારણે શરીરની ચયાપચયની પ્રક્રિયા (મેટાબોલિઝમ)ની ગતિ ધીમી કરે છે. તેથી શરીરના કોષોની પ્રાણવાયુની જરૂરિયાત ૨૦% જેટલી ઘટે છે એવું ૧૯૬૦ના દસકા દરમિયાન કરવામાં આવેલા કેટલાક અભ્યાસોથી સાબિત થયું છે. યૌગિક શ્વસન દરમિયાન દીર્ઘ રેચકની વિધિથી મગજ અને શરીરના કોષોમાં કાયમી તણાવની પરિસ્થિતિને કારણે જમા થયેલા

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

અંગારવાયુનું પ્રમાણ ઘટે છે, જ્યારે દીર્ઘ પૂરકને કારણે મગજ અને શરીરના કોષોને મળતા પ્રાણવાયુના પુરવઠામાં વધારો થતા એમની કાર્યશક્તિ અને રોગપ્રતિકાર ક્ષમતામાં વધારો થાય છે. અવયવ વિકાર (organic diseases) અને કાર્યવિકારના રોગો (functional diseases)થી સાજા થવામાં આ પ્રક્રિયા ઉપયોગી બને છે.

શ્વસન અને રુધિરાભિસરણનાં કાર્યો એકમેક સાથે અંતરંગપણે જોડાયેલાં છે. યૌગિક ક્રિયાઓમાં દીર્ઘ શ્વસનથી હૃદય અને ફેફસાંને માલિશ મળે છે, તથા રુધિરાભિસરણ સુધરે છે. નિયમિત યોગાભ્યાસથી અંગારવાયુયુક્ત રક્તની હૃદય તરફ પાછા વળવાની પ્રક્રિયા (venous return) સક્ષમ બને છે. આના લીધે શરીરના અવયવો અને પેશીઓમાં જમા થયેલા અંગારવાયુનું ભારણ (carbon dioxide retention) ઓછું થાય છે. આ પરિબળથી અવયવોના કાર્યમાં સુધારો આવે છે અને એમની રોગપ્રક્રિયામાંથી સાજા થવાની શક્તિ કેળવાય છે. શરીરમાં રક્તમાંથી છૂટું પડીને બનેલા એક ઘટકને લસિકારસ કહેવામાં આવે છે. લસિકારસના વહન માટે કુદરતે બનાવેલું તંત્ર લસિકાતંત્ર તરીકે ઓળખાય છે. એ આપણા રોગપ્રતિકાર તંત્રનો એક હિસ્સો છે અને વાઇરસથી થતા સંક્રામક રોગો તેમ જ કૅન્સર સામે આપણને રક્ષણ પૂરું પાડે છે. લસિકારસનું વહન અત્યંત બારીક કદની બનેલી લસિકાવાહિની દ્વારા કરવામાં આવે છે. યૌગિક ક્રિયાઓથી લસિકાવહનની કામગીરી અસરકારક બનતાં શરીરની રોગપ્રતિકાર ક્ષમતામાં વધારો થાય છે. યોગાભ્યાસથી હૃદયની ગતિ ધીમી પડે છે, બ્લડ પ્રેશર નીચું આવે છે, તેમ જ રક્તવહિનીઓમાં ફરતા લોહીના ગંઠાવાની સંભાવના ઘટે છે. પરિણામે હૃદયરોગ તેમ જ પક્ષાઘાતનું જોખમ ઓછું થાય છે.

યોગથી શરીરના બાહ્ય તેમ જ આંતરિક અવયવોની કાર્યક્ષમતામાં વધારો થાય છે. ખાસ કરીને તેનાથી આંતરિક અવયવોને માલિશ મળી રહે છે, જેથી પાચન અને મળત્યાગની ક્રિયા સારી થાય છે.

યોગના ચિકિત્સાલક્ષી ઉપયોગમાં બીજો પણ એક લાભ સંકળાયેલો છે. યોગાભ્યાસથી મગજના કોષોમાં ઍન્ડોર્ફિન, સિરોટોનિન, ડોપામિન, મેલોટોનિન, ગામાઍમિનોબ્યુટિરિક ઍસિડ (GABA) અને ડાઇહાઇડ્રોએપિઍડ્રેસ્ટોરિરોન (DHEA) જેવાં સકારાત્મક ચેતારસાયણોનો સ્રાવ થાય છે, જે રોગની પીડા ઘટાડે છે અને સુખાકારીની ભાવનાને પોષે છે. બોસ્ટન યુનિવર્સિટી સ્કૂલ ઑફ મેડિસિન દ્વારા કરવામાં આવેલા એક અભ્યાસમાં યોગનો અભ્યાસ પૂરો કર્યા પછી તેના સાધકના મગજમાં ગામા ઍમિનો બ્યુટિરિક ઍસિડની માત્રા ૨૭% જેટલી વધારે જણાઈ છે. એનાથી વ્યક્તિની માનસિક તાણ અને ચિંતાતુરતાની લાગણી ઓછી થાય છે. સંશોધનોથી એવું પણ જોવા મળ્યું છે કે યોગમાં કાયમી શિરદર્દ, આધાશીશી, કમરદર્દ, સંધિવા, ફાઇબ્રોમાયેલ્જિયા અને કાયમી થાકની બીમારીઓ સાથે સંકળાયેલી પીડાને મટાડવાની સંભાવના છે. યૌગિક આસનોમાં શરીરના આંતરિક અવયવોને અને કરોડરજ્જુને માલિશ પૂરું પાડવાની ક્ષમતા છે, જેના લીધે પણ કાયમી પીડામાં એ રાહત આપી શકે છે. સિરોટોનિન અને ઍન્ડોર્ફિન મગજ દ્વારા બનતા કુદરતી દર્દશામકો છે.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

યોગના અભ્યાસથી ખાસ કરીને મગજના અગ્રભાગમાં આવેલા ચેતાકોષો સક્રિય બને છે. આ કોષો માનવીની માનસિક, સામાજિક અને આધ્યાત્મિક સુખાકારી સાથે સંકળાયેલા છે. યોગ અભ્યાસથી માઠી લાગણીઓથી છુટકારો થાય છે અને વ્યક્તિનું પોતાના લાગણીતંત્ર પર નિયંત્રણ આવે છે. યોગાભ્યાસ મિજાજમાં સાનુકૂળ પરિવર્તન આણે છે અને વ્યક્તિની પોતાની બીમારીમાંથી સાજા થવાની રુચિ કેળવે છે.

જીવનના અંત સાથે સંકળાયેલી કેટલીક બીમારીઓ સાથે પીડા રોગપ્રક્રિયાનો એક અનિવાર્ય હિસ્સો છે. આ પીડાને દૂર કરી શકાતી નથી. ઘણીવાર મરણપથારીએ પડેલા દર્દીની પીડા તેનાં સ્વજનોથી દેખી જતી નથી. પીડા અને મૃત્યુ માનવજીવનના અંતરંગ ભાગ છે. કૅન્સર જેવી બીમારીઓ અસહ્ય પીડા સાથે સંકળાયેલી છે. આ રોગમાં અતિશય રિબાતા દર્દીની પીડાને દૂર કરવામાં તબીબી ઉપચારોના હાથ પણ હેઠા પડે છે. આ સંજોગોમાં યોગ મરણાસન્ન વ્યક્તિને રોગની પીડા તેમ જ મૃત્યુનો સહજ સ્વીકાર કરવામાં તૈયાર કરે છે.

યોગ શરીર અને મનના પારસ્પરિક સંબંધોના સ્તરે કાર્ય કરે છે. તેથી શારીરિક ભૂમિકાએ કરવામાં આવતાં યોગનાં આસનોથી અંતર્મુખતા કેળવાય છે. આનાથી ચિંતાતુરતા અને હતાશાની લાગણીમાં હળવાશ પેદા થાય છે. યૌગિક ધ્યાનથી મગજમાં આલ્ફા તરંગો પેદા થાય છે, જે મનને હળવાશ અને શાંતિ બક્ષે છે. કાયમી તણાવમાં જીવનારી વ્યક્તિના શરીરમાં કૉર્ટિઝોલ નામના તણાવ રસાયણની માત્રા વધેલી જોવા મળે છે. કેટલાક વિજ્ઞાનીઓના અવલોકન મુજબ કૉર્ટિઝોલનું લોહીમાં પ્રમાણ કાયમ માટે ઊંચું રહે તો એનાથી હતાશા (ડિપ્રેશન) પેદા થાય છે અને શરીરની રોગપ્રતિકાર શક્તિ નબળી પડે છે. લાંબા ગાળાના યોગાભ્યાસથી શરીરમાં કૉર્ટિઝોલનું પ્રમાણ ઘટાડી શકાય છે.

યોગનો સર્વાંગીણ ચિકિત્સાલક્ષી અભિગમ

આધુનિક તબીબી ચિકિત્સા ફ્રેન્ચ દાર્શનિક રેને ડેકાર્ટના યંત્રવાદી દૃષ્ટિકોણ પર રચાયેલી હોવાથી રોગોના ઉપચારમાં યાંત્રિક અને એકાંગી અભિગમ અપનાવવા માટે જાણીતી છે. ઔષધો, શસ્ત્રક્રિયા અને વિકિરણ ચિકિત્સા તેનાં મુખ્ય અંગો છે. તેની અસર ઘણું કરીને ચિહ્નાત્મક અને બાહ્ય સ્તરની છે, તેમ જ ઘણી ઝડપી હોવાને કારણે દર્દીને તેના રોગનાં ચિહ્નો અને પીડામાં ત્વરિત રાહત આપવાનો ગુણ ધરાવે છે. આથી સમાજમાં તેની લોકપ્રિયતા ઘણી છે. સંક્રામક રોગો, અકસ્માત ઈજાઓ અને કટોકટીની બીમારીઓમાં તે સંજીવની સમાન નીવડે છે, પણ હાઇબ્લડપ્રેશર, સંધિવા, ડાયાબિટીઝ મેલાઇટસ જેવા દીર્ઘકાલીન રોગોમાં તેના હાથ પાછા પડે છે. એ જ રીતે માનસિક તાણથી ઉદ્ભવતા આધાશીશી અને સંગ્રહિણી (ઈરિટેબલ બૉવેલ ડિઝીઝ) જેવા રોગોમાં પણ તે ખાસ પરિણામ આપી શકતી નથી, કેમ કે દવાઓ માનસિક તાણને દૂર કરી શકતી નથી. વળી ચિકિત્સા માટે દર્દીને કોઈ તબીબી વિશેષજ્ઞની જરૂર પડે છે અને હૉસ્પિટલનાં પગથિયાં પણ ચઢવાં રહે છે. તે

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

વિજ્ઞાન-આધારિત હોવાને કારણે આધુનિક ટેકનોલોજી પર નિર્ભર છે અને ભારે ખર્ચાળ બની ગઈ છે. આધુનિક તબીબી ચિકિત્સાની આ સઘળી મર્યાદાઓ છે.

આની સરખામણીમાં યોગોપચાર સર્વાંગી અભિગમ અપનાવે છે અને રોગનાં મૂળિયાં સુધી ઊતરીને રુગ્ણ વ્યક્તિને તેના અંતર-બહારથી સમગ્ર રીતે સાજો કરે છે. એની અસર ધીમી પણ મક્કમ છે અને દીર્ઘકાલીન રોગોના ઉપચારમાં આધુનિક ચિકિત્સાની સાથે સમન્વય કરવાથી સારું પરિણામ આપી શકે છે ખાસ કરીને માનસિક તણાવ અને નાદુરસ્ત માનસિકતામાંથી નીપજતા રોગોમાં તે ઘણી અકસીર છે. યોગોપચાર વ્યક્તિ પોતાના ઘરે રહીને કરી શકે છે, એને દવાખાને જવું પડતું નથી, તેમ ડૉક્ટર કે આરોગ્યકર્મીઓ પર આશ્રય રાખવો પડતો નથી. યોગચિકિત્સા ટેકનોલોજીની ઓશિયાળી નથી. વિના કોઈ સાધને દર્દીને તેના રોગમાંથી મુક્ત કરી શકાય છે. જો કે સંક્રામક રોગો તથા કટોકટીની તબીબી માંદગીઓમાં તે નિરુપાય છે.

રોગોના ઉપચારમાં યોગની ઉપયોગિતા

પિટ્સબર્ગ યુનિવર્સિટીની નર્સિંગ સ્કૂલના કે. યાંગ દ્વારા ઈ.સ. ૨૦૦૭માં કરવામાં આવેલા એક અભ્યાસના ઈવિડેન્સ બેઝ્ડ કૉમ્પ્લિમેન્ટરી ઍન્ડ ઑલ્ટરનેટિવ મેડિસિન નામના તબીબી સામયિકમાં પ્રકાશિત થયેલા અહેવાલ અનુસાર નિયમિત યોગાભ્યાસથી વજન, બ્લડપ્રેશરનો આંક, લોહીમાં ગ્લુકોઝનું પ્રમાણ તથા કોલેસ્ટેરોલનો આંક નીચો આણી શકાય છે. આના લીધે તે હાઇબ્લડપ્રેશર, ડાયાબિટીસ, હૃદયરોગ અને પક્ષાઘાત જેવા રોગોમાં ઘણી અકસીર પુરવાર થાય છે. સંશોધકોએ એવું પણ નોંધ્યું છે કે યોગથી માનસિક તાણ ઘટે છે. યોગમાં વિશિષ્ટતા ધરાવતી શારીરિક ક્રિયાઓ, સ્વાસ્થ્યપ્રદ આહાર, ઊજળી માનસિકતા, આત્મસન્માન તેમ જ સારાપણાની લાગણી પણ સંકળાયેલાં હોવાને કારણે તે જીવનની ગુણવત્તા સુધારે છે. યૌગિક વિધિઓ અંગસ્થિતિમાં સુધાર તેમ જ ધ્યાન દ્વારા મનની વિશુદ્ધિ પર પણ ભાર મૂકે છે.

આ કારણોસર યોગની હવે અનેક રોગોના ઉપચારમાં પૂરક ચિકિત્સા તરીકે ભલામણ કરવામાં આવે છે. યોગ દ્વારા સંગીન બનાવી શકાય તેવા રોગોની યાદી સંક્ષિપ્તમાં જોઈએ તો -

દીર્ઘકાલીન તથા અસ્વસ્થ જીવનશૈલી સાથે સંકળાયેલા રોગો

- હાઇબ્લડપ્રેશર
- ડાયાબિટીસ
- કૉરોનરી હાર્ટ ડિઝીઝ
- હાઇપરઍસિડિટી
- બ્રૉન્કિયલ અસ્થમા અને ઍલર્જીની બીમારીઓ
- સંગ્રહિણી (ઈરિટેબલ બૉવેલ સિન્ડ્રોમ)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

માનસિક સ્તરની અને માનસિક તાણની કારણે ઉદ્‌ભવતી બીમારીઓ

- અનિદ્રા
- તણાવજનિત શિરદર્દ અને આધાશીશી (માઇગ્રેન)
- ચિંતાતુરતા અને હતાશા
- દર્દ (pain) અને પીડા (suffering)થી મુક્તિ

મહિલા સ્વાસ્થ્યની તકલીફો

- માસિકની અનિયમિતતા, તેની સાથે સંકળાયેલું દર્દ, અતિરકતસ્રાવ, અનિયમિત રક્તસ્રાવ, ઇત્યાદિ
- વંધ્યત્વ
- જાતીય જીવનને લગતી વિષમતાઓ
- રજોનિવૃત્તિ (મેનોપોઝ)ની તકલીફો

બાળવ્યાધિઓ

- અ'ટેન્શન ડેફિસિટ હાઇપર ઍક્ટિવિટી ડિઝ્ઑર્ડર (એ.ડી.ઍચ.ડી)
- ઑટિઝમ

યોગ ચિકિત્સા નિર્દોષ નથી !

પીડામુક્તિની આશા લઈને ચિકિત્સકને આંગણે આવનાર દર્દીને ચિકિત્સકની નિષ્કાળજી અથવા તેને આપવામાં આવેલી સારવારની આડઅસરને કારણે જાણે કે અજાણે કોઈ નવી તકલીફ઼ ઊભી થાય તો એને ચિકિત્સક પ્રેરિત માંદગી (iatrogenetic disorder) કહેવામાં આવે છે. કોઈ ચિકિત્સાપદ્ધતિ કે ચિકિત્સક નિર્દોષ હોઈ શકે નહીં. યોગને પણ આ વિધાન લાગુ પડે છે. પૂર્ણ સ્વાસ્થ્યપ્રાપ્તિની ઇચ્છાથી યોગાભ્યાસ કરનાર વ્યક્તિને યૌગિક વિધિઓની આડઅસરને કારણે ક્યારેક સામાન્યથી ગંભીર આડઅસરો કે જીવલેણ આપત્તિ ઊભી થઈ શકે છે. શરીરની નાનીમોટી બીમારીઓમાં પણ યોગાભ્યાસમાં વિશેષ કાળજીની આવશ્યકતા રહે છે. કઈ બીમારીમાં કઈ યૌગિક વિધિઓ વર્જિત છે એનું પોતાના તબીબ કે યોગશિક્ષક પાસે માર્ગદર્શન મેળવીને પછી જ પોતાનો અભ્યાસ હાથ ધરવો હિતાવહ છે.

- યોગ્ય યોગશિક્ષક કે યોગ નિષ્ણાતના સીધા માર્ગદર્શન હેઠળ જ યોગાભ્યાસ કરવો. કોઈની દેખાદેખી કે ટી.વી.ના કાર્યક્રમો, સામયિકો અને વર્તમાનપત્રોમાં પ્રકાશિત લેખોનું અનુકરણ કરીને યોગાભ્યાસ કરવામાં જોખમ રહેલું છે.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

- પોતાની પ્રકૃતિ અને ક્ષમતાને અનુકૂળ હોય તેટલું જ કરવું.
- આસનો કરવામાં જબરદસ્તી કે ઉતાવળ ન કરવી, નહિ તો ફાયદાને બદલે નુકશાન થાય. અનિયમિત યોગાભ્યાસ પણ હાનિ કરે છે.
- આસનો અને યૌગિક ક્રિયાઓમાં કોણે, કયારે, શું કરવું અને શું નહીં તે જાણીને તે બાબતમાં ખાસ તકેદારી રાખવી. પોતાના સ્વાસ્થ્ય તેમ જ ક્ષમતા બાબતમાં ભ્રમણામાં રહીને જોખમી યૌગિક ક્રિયાઓ ન કરવી.
- યોગાભ્યાસ દરમિયાન સતત પોતાના શરીર સાથે સંવાદ જાળવવો અને અભ્યાસ દરમિયાન કે પછી કોઈ માઠાં ચિહ્નો જણાય તો અભ્યાસ રોકીને પોતાના યોગશિક્ષક કે ચિકિત્સકની તરત સલાહ લેવી.

બેધ્યાનપણે અને ક્ષમતા ઉપરવટ યોગાભ્યાસ કરવા જતાં નીચેની આપત્તિઓ ઊભી થઈ શકે છે. યોગ નિર્દોષ નથી, તે જીવ પણ લઈ શકે છે!

૧. સંચાલન તંત્રની ઈજાઓ: મચકોડ (sprain), હાડકું પોતાના સ્થાનમાંથી ખસી જવું (dislocation), અસ્થિભંગ (fracture), સ્નાયુ ખેંચાઈ જવો, કમરની ઈજા અને કમરની ગાદી ખસી જવાની તકલીફ (disc prolapse).

૨. મગજ અને ચેતાઓને ઈજા: ઘૂંટીની ચેતાને ઈજા પહોંચવાથી પગનો પંજો નબળો પડી જવો (foot drop), રાંઝણની તકલીફ (સાયેટિકા), કરોટીય ચેતા પર અસાધારણ દબાણ (spinal nerve compression), ખભા પાસે આવેલી હાથની ચેતા પર અસાધારણ દબાણ આવવાથી હાથમાં પીડા થવી, ખાલી ચઢવી કે નબળાઈ આવી જવાની તકલીફ (thoracic outlet syndrome), લકવો થઈ જવો, મગજની રકતવાહિનીને ઈજા થતાં પક્ષાઘાત (સ્ટ્રોક) લાગુ પડવો.

૩. રકતવાહિનીઓની ઈજા અને અસાધારણ રક્તસ્રાવ થવો: આ આડઅસર મગજ, છાતી, પેટ અને પગની રકતવાહિનીઓમાં થઈ શકે છે અને જીવલેણ નીવડી શકે છે.

૪. ફેફસાંની ઈજાઓ: ન્યુમોથોરેક્સ, જે ગંભીર તબીબી કટોકટી છે.

૫. મૃત્યુ

સારાંશ

- સર્વાંગીણ સ્વાસ્થ્યની પ્રાપ્તિમાં અને કેટલાક રોગોના ઉપચારમાં યોગની અન્ય ચિકિત્સાપદ્ધતિઓની સાથે મળીને પૂરક ભૂમિકા છે.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

- ચિકિત્સામાં યોગના ઉપયોગમાં વિવેકની અપેક્ષા છે. યોગ માન્ય ચિકિત્સાપદ્ધતિઓનો વિકલ્પ નથી.

- યોગ સર્વસંભવિત વિદ્યા નથી, તેને પોતાની મર્યાદાઓ અને આડઅસરો છે. નાનીમોટી તમામ બીમારીઓ અને માનવજીવન સાથે સંકળાયેલી તમામ માનસિક અને સાંસારિક સમસ્યાઓનો યોગ પાસે ચમત્કારિક ઉકેલ નથી.

- યોગ ભલે બધી બીમારીઓની ચમત્કારિક જડીબુટ્ટી નથી, છતાં તેના અભ્યાસથી બીમાર વ્યક્તિ સારાપણાની લાગણીનો અનુભવ કરી શકે છે. યોગથી તણાવ દૂર થઈ શકે છે અને જીવનની ગુણવત્તા સુધરે છે.

- યોગ નિર્દોષ નથી. બેદરકારીથી અને ક્ષમતા ઉપરવટ યોગાભ્યાસ કરવાથી ઈજાઓ અને નવી તકલીફો ઊભી થઈ શકે છે.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

શ્રીસયાજી સાહિત્યમાળા

		રૂા. પૈ.
૩૫૧	ગુજરાતનો પૉટરી ઉદ્યોગ - શ્રી શાંતિલાલ પી. પુરોહિત (૧૯૭૫)	૯.00
૩૫૨	ઊંડાણનો તાગ - શ્રી છોટુભાઈ સુથાર (૧૯૭૫)	૧૫.00
૩૫૩	ભારતીય વીણા - (સ્વ.) પ્રો. રસિકલાલ એમ. પંડ્યા (૧૯૭૮)	૩૧.00
૩૫૪	ચરકનો સ્વાધ્યાય, ભાગ ૨ - (સ્વ.) બાપાલાલ ગ. વૈદ્ય (૧૯૭૯)	૯૬.00
૩૫૫	ચાંપાનેર : એક અધ્યયન - પ્રો. રમણલાલ ના. મહેતા (૧૯૭૯)	૩૬.00
૩૫૬	દ્વારકાના પ્રદેશનો સાંસ્કૃતિક ઇતિહાસ - (સ્વ.) શ્રી ક. ન. જોષી (૧૯૭૯)	૪૪.00
૩૫૭	આધુનિક ગુજરાતના સંતો, ભાગ ૨ - ડૉ. કેશવલાલ ઠક્કર (૧૯૭૯)	૪૫.00
૩૫૮	સૂર્યશક્તિ - શ્રી પદ્મકાન્ત ર. શાહ (૧૯૮૧)	૫૩.00
૩૫૯	કવિ ગિરધર : જીવન અને કવન - ડૉ. દેવદત્ત જોશી (૧૯૮૨)	૫૧.00
૩૬૦	વનૌષધિ-કોશ - અધ્યા. કે. કા. શાસ્ત્રી (૧૯૮૨)	૩૬.00
૩૬૧	સહસ્રલિંગ અને રુદ્રમહાલય - (સ્વ.) શ્રી કનૈયાલાલ ભા. દવે (૧૯૮૩)	૭૯.00
૩૬૨	વૈષ્ણવતીર્થ ડાકોર - (સ્વ.) ડૉ. મંજુલાલ ર. મજમુદાર (૧૯૮૪)	૪૮.00
૩૬૧	વૃદ્ધત્રયી અને લઘુત્રયી - (સ્વ.) બાપાલાલ ગ. શાહ (૧૯૮૪)	૩૩.00
૩૬૩	વડોદરા : એક અધ્યયન - પ્રો. રમણલાલ નાગરજી મહેતા (૧૯૮૭)	૪૪.00
૩૬૪	મહારાજા સયાજીરાવ ત્રીજા - (સ્વ.) પ્રો. હસિત હ. બૂચ (૧૯૮૮)	૪૯.00
૩૬૫	નાભાજીકૃત ભક્તમાલના ઐતિહાસિક ભક્તો - એક અધ્યયન - શ્રી મૂલશંકર હી. કેવલિયા (૧૯૮૮)	૪૪.00
૩૬૬	લેસર (પરમતેજ) - શ્રી પદ્મકાન્ત ર. શાહ (૧૯૯૦)	૪૮.00
૩૬૮	અર્વાચીન સંસ્કૃત સાહિત્યનો ઇતિહાસ - (અનુ.) એ. જે. રાવલ અને વી. એસ. લેલે	૧૮૮.00
૩૬૯	મંજુલવિમર્શ - શ્રી જે. પી. ઠાકર (૧૯૯૨)	૨૩૬.00
૩૭૦	પ્રાણવહસ્રોતોના રોગો : શ્વાસ-દમ - વૈદ્ય મણિભાઈ બ્રહ્મભટ્ટ (૧૯૯૫)	૧૭૬.00
૩૭૧	વડોદરાનાં મંદિરો - કુ. મંજુલા એમ. સોની (૧૯૯૫)	૬૮.00
૩૧૭	આહારવિજ્ઞાન - (પુનઃમુદ્રણ) ડૉ. જયશંકર ધ. પાઠક અને (સ્વ.) અનંતરાય મ. રાવળ (૧૯૯૦)	૬૦.00
૩૭૨	ભવાઈ : સ્વરૂપ અને લક્ષણો - કૃષ્ણકાંત ઓ. કડકિયા (૧૯૯૬)	૧૯૩.00
૩૭૩	શ્રીમદ્ ઉપેન્દ્રાચાર્યજી - ડો. લવકુમાર મ. દેસાઈ (૧૯૯૬)	૧૯૫.00
૩૭૪	નાભાજીકૃત ભક્તમાલના ઐતિહાસિક ભક્તો - એક અધ્યયન, ભાગ ૨ - શ્રી મૂલશંકર હી. કેવલિયા (૧૯૯૮)	૧૦૬.00
૩૭૫	ભવાઈ : ભક્તિ, રસ અને આહાર્ય - કૃષ્ણકાંત ઓ. કડકિયા (૨૦૦૩)	૧૩૫.00
૩૭૬	પ્લેટોના કેટલાક સંવાદો - હરસિદ્ધ એમ. જોશી (૨૦૦૪)	૧૯૦.00
૩૭૭	કૈવલજ્ઞાન સંપ્રદાય : સિદ્ધાંત અને સાહિત્ય - બહેચરભાઈ પટેલ (૨૦૦૫)	૨૨૫.00
૩૭૮	વિદુરનીતિનું વિષયપરિશીલન - ડૉ. અંબાલાલ દ. ઠાકર (૨૦૦૭)	૧૧૫.00
૩૭૯	સ્વાધ્યાય-સૂચિ (પુસ્તક ૧-૨૫) - જયંત ઉમરેઠિયા (૨૦૦૭)	૨૧૫.00
૩૮૦	મહાભારતનો યુદ્ધકાળ, - વસંત અ. ગોડબોલે (૨૦૧૧)	૧૪૦.00
૨૮૩ } ૨૮૪	વડોદરા નરેશ શ્રીમંત સયાજીરાવ ગાયકવાડ (ત્રીજા) - ચિમનલાલ મગનલાલ ડોકટર, બીજી આવૃત્તિ (૨૦૧૪)	૫૮૫.00
૩૮૧	મહાભારતનાં ગૂઢ રહસ્યો - અનુ. વિજયા લેલે (૨૦૧૬)	૪૩૦.00
૩૮૨	સ્વાધ્યાય-સૂચિ (પુસ્તક ૨૬-૫૦) - જયંત ઉમરેઠિયા (૨૦૧૮)	૧૯૦.00
૩૮૩	દેવર્ષિ નારદ - અનુ. વિજયા લેલે (૨૦૨૧)	૩૬૫.00

પ્રાપ્તિસ્થાન : યુનિવર્સિટી પુસ્તકવેચાણ વિભાગ
પ્રો. સી.સી. મહેતા ઓડિટોરિયમ નજીક, જનરલ એજ્યુકેશન સેન્ટર સામે
ડી.એન. હોલ ક્રિકેટ ગ્રાઉન્ડ સામે, પ્રતાપગંજ, વડોદરા - ૩૯૦ ૦૦૨; ફોન નં. : ૦૨૬૫-૨૭૮૧૭૦૦

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ગોરક્ષનાથવિરચિત નિરંજનપુરાણ

મનસુખ કે. મોલિયા*

નાથસંપ્રદાયમાં ગોરક્ષનાથનું વ્યક્તિત્વ અપ્રતિમ છે. તેમને સાક્ષાત્ પરમશિવ માનવામાં આવે છે. ગોરક્ષનાથના સમય અંગે નિશ્ચિત વિધાન કરી શકાય એમ નથી. ભિન્ન ભિન્ન વિદ્વાનોએ તેમનો સમય સાતમીથી બારમી સદી માન્યો છે. હજારીપ્રસાદ દ્વિવેદી તેમને દશમી સદી કરતાં પૂર્વવર્તી માને છે.[૧] ગોરક્ષનાથના નામે સંસ્કૃત અને હિન્દીમાં અનેક ગ્રન્થો પ્રાપ્ત થાય છે. તેમના કર્તૃત્વ અંગે ઘણા પ્રશ્નો છે. તેમાંના કેટલાક પરવર્તી કાળે રચાયા જણાય છે. ગોરક્ષનાથના સિદ્ધાન્તોને સ્વીકારીને તેમના નામે ગ્રન્થોની પરંપરા શરૂ થઈ હોય એમ માની શકાય. હજારીપ્રસાદ દ્વિવેદીએ ગોરક્ષનાથના નામે મળતા ૨૮ ગ્રન્થો અંગે સંક્ષિપ્ત વિગતો આપી છે. ત્યારબાદ એક સૂચિ આપી છે. તેમાં કુલ ૪૦ ગ્રન્થોની નામાવલિ છે. તેમાં ૨૮મા ક્રમે નિરંજનપુરાણનો નિર્દેશ જોવા મળે છે.[૨] ગોરક્ષનાથના જીવન અને દર્શન વિષયક ગુજરાતી ગ્રન્થમાં કુલ ૫૧ પૃષ્ઠોમાં ગોરક્ષનાથની સાહિત્યવિષયક ચર્ચા કરવામાં આવી છે.[૩] પંડિત હજારીપ્રસાદ દ્વિવેદીએ આપેલી સૂચિ અહીં પણ ઉદ્ધૃત કરવામાં આવી છે. અહીં ડૉ. નગેન્દ્રનાથે તૈયાર કરેલી સંસ્કૃતમાં લખાયેલા ૧૫ ગ્રન્થોની એક વધુ સૂચિ પ્રાપ્ત થાય છે.[૪] આ ૧૫ ગ્રન્થો પૈકી સિદ્ધસિદ્ધાન્તપદ્ધતિ (ગોરક્ષોપનિષદ) અને ગોરક્ષસંહિતા વિશે થોડા અંશે વિગતો પણ આપવામાં આવી છે. પરંતુ આશ્ચર્યની વાત એ છે કે સંસ્કૃતની આ ગ્રન્થસૂચિમાં નિરંજનપુરાણનો નિર્દેશ મળતો નથી.

પ્રસ્તુત લેખમાં ગોરક્ષનાથની કૃતિ નિરંજનપુરાણના મૂળ સંસ્કૃત પાઠને પ્રથમ વખત જ પ્રકાશિત કરવાનો પ્રયાસ છે. પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, વડોદરામાં ઉપલબ્ધ નિરંજનપુરાણની બે હસ્તપ્રતોને આધારે આ પાઠસંપાદન કર્યું છે. સંસ્કૃતમાં પુરાણોની સંખ્યા અઢાર માનવામાં આવી છે પણ પુરાણ

'સ્વાધ્યાય' – પુ. ૫૯, વર્ષ ૨૦૨૨, પૃ. ૧૮૫-૧૯૯. ISSN 2250-0391

* સંસ્કૃત ભાષાભવન, સૌરાષ્ટ્ર યુનિવર્સિટી, રાજકોટ-૩૬૦૦૦૫ M. 09687692933

૧. नाथ-संप्रदाय, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद, ई.स. १९५०, पृ.१८

૨. नाथ-संप्रदाय, उपर्युक्त, पृ.९८-१०१

૩. ગોરખનાથ – જીવન અને દર્શન, હસમુખ વ્યાસ, પ્રવીણ પુસ્તક ભંડાર, રાજકોટ, પ્રથમ આવૃત્તિ, ૨૦૧૫, પૃ. ૬૦-૧૦૧

૪. ગોરખનાથ – જીવન અને દર્શન, ઉપર્યુક્ત, પૃ. ૯૬

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

સાહિત્યનો વ્યાપ ખૂબ જ મોટો છે. અઢાર મુખ્ય પુરાણ સિવાયના કેટલાય ગ્રન્થો પુરાણો તરીકે પ્રસિદ્ધ પામ્યા છે. કોઈ દેવતા કે દાર્શનિક-ધાર્મિક વિચારધારાનું પ્રતિપાદન કરવા માટે લખાયેલાં પુરાણોની સંખ્યા બહુ મોટી છે. આવાં પુરાણોને ઉપપુરાણ કે ઔપપુરાણ કહે છે. સ્થળપુરાણ અને જ્ઞાતિપુરાણ પ્રકારનાં પણ ઘણાં પુરાણો જોવા મળે છે.

પુરાણ શીર્ષકથી પ્રસિદ્ધ મોટા ભાગના ગ્રન્થોમાં અત્યન્ત સરળ અનુષ્ટપ્ વૃત્તમાં પ્રચલિત પુરાણશૈલીનું અનુસરણ જોવા મળતું હોય છે. પ્રસ્તુત નિરંજનપુરાણ અંગે પણ આવી ધારણા હોય તે સ્વાભાવિક છે. પરંતુ અહીં સમગ્ર ગ્રન્થ ગદ્યમાં લખાયેલો છે. ક્યાંક ક્યાંક પદ્યના પ્રકીર્ણ અંશો હોય તેવો ભાસ થાય છે પણ ક્યાંય ચાર પાદનો સળંગ શ્લોક જોવા મળતો નથી. આ ઉપરાંત અહીં ઉપયોગમાં લીધેલી બન્ને હસ્તપ્રતોમાં ક્યાંય પણ શ્લોકાંક દર્શાવવામાં આવ્યા નથી. તેથી પાઠનું સંપાદનકાર્ય મુશ્કેલ બની રહે એવું છે. 'હસ્તપ્રત-અ'માં મહદંશે બે દંડચિહ્નથી વાક્યની સમાપ્તિ દર્શાવવામાં આવી છે જ્યારે 'હસ્તપ્રત-બ'માં મહદંશે એક દંડનું ચિહ્ન જોવા મળે છે. વળી, સમગ્ર ગ્રન્થનું કોઈ પ્રકારે વિભાજન પણ પ્રાપ્ત થતું નથી. અહીં સંપાદિત સંસ્કૃતપાઠમાં કુલ ૨૧ વિભાગ કે ખણ્ડ પાડ્યા છે. પ્રત્યેક ખણ્ડમાં વાક્યને ક્રમાંક જોવા મળે છે તે સંપાદકે કથાનકમાં અર્થસંગિત બેસે એ પ્રમાણે સ્વવિવેકથી આપ્યા છે. ગ્રન્થના નામ પ્રમાણે તેમાં પરમતત્ત્વ તરીકે નિરંજન દેવનો મહિમા પ્રતિપાદિત થયો છે. ભગવાન અલક્ષ્ય નિરંજનના શ્રેષ્ઠત્વને પ્રગટ કરતી પુરાણકથાઓ અહીં નિબદ્ધ થઈ છે. એ રીતે નિરંજનપુરાણ નામ સાર્થક ઠરે છે. ગ્રન્થના અન્તે પ્રાપ્ત થતા ત્રણ નિર્દેશો નોંધપાત્ર છે. (૧) આ ગ્રન્થ યોગના આરંભકાળે સિદ્ધિદાયક છે. (૨) આ જ્ઞાનદીપપ્રબોધ છે. (૩) અહીં યોગશાસ્ત્રનો ગ્રન્થ પૂરો થાય છે. નિરંજનપુરાણ યોગશાસ્ત્રનો ગ્રન્થ છે એવું આ નિર્દેશોમાં જણાવ્યું છે પણ તેમાં યોગશાસ્ત્રનું સહેજ પણ નિરૂપણ થયું નથી એ વાસ્તવિકતા છે. આ પુરાણના પ્રતિપાદ્ય દેવતા ભગવાન નિરંજન યોગી છે. તેમના મહિમાનું પ્રતિપાદન હોઈ નિરંજનપુરાણને યોગશાસ્ત્ર કહેવામાં આવ્યું હોય એમ જણાય છે.

હસ્તપ્રતોનું વિવરણ

હસ્તપ્રત - અ : દેવનાગરી લિપિમાં કાગળ પર લખાયેલી આ હસ્તપ્રત પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, વડોદરાના હસ્તપ્રત ગ્રન્થભંડારમાં ક્રમાંક ૩૦૧૧૫ પર રહેલી છે. તેનું પ્રાપ્તિસ્થાન મેહરાનગઢ મ્યુઝિયમ ટ્રસ્ટ, જોધપુર દર્શાવ્યું છે. તે કુલ નવ પત્રો ધરાવે છે. બધા પત્રો આગળ પાછળ લખાયેલ હોઈ કુલ ૧૮ પૃષ્ઠમાં ગ્રન્થનો પાઠ મળે છે. અંતિમ પત્રને બાદ કરતાં બધાં જ પૃષ્ઠોમાં અગિયાર લીટીઓ છે. અંતિમ પત્રોમાં ગ્રન્થની સમાપ્તિ થતી હોઈ ચાર લીટીઓ જોવા મળે છે. આમ કુલ મળીને ૧૯૧ લીટીઓમાં ગ્રન્થનું લખાણ સુવાચ્ય અક્ષરોમાં છે. ચીવટપૂવક ગ્રન્થ લખાયો જણાય છે કેમ કે

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ક્યાંય હાંસિયાનું લખાણ જોવા મળતું નથી કે ક્યાંય લુપ્તાંશની પણ પ્રતીતિ થતી નથી. હસ્તપ્રતની નોંધપાત્ર વિશેષતા એ કહી શકાય કે તેમાં અનેક સ્થળે અવગ્રહનું ચિહ્ન જોવા મળે છે.

હસ્તપ્રત - બ : આ હસ્તપ્રત પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, વડોદરાના હસ્તપ્રત ગ્રન્થભંડારમાં ક્રમાંક ૩૦૧૧૬ પર રહેલી છે અને તે દેવનાગરી લિપિમાં કાગળ પર લખાયેલી છે. આ હસ્તપ્રત પણ મેહરાનગઢ મ્યુઝિયમ ટ્રસ્ટ, જોધપુરથી પ્રાચ્યવિદ્યામંદિરને પ્રાપ્ત થયેલી છે. તે કુલ સાત પત્રો ધરાવે છે. બધા પત્રોમાં આગળ પાછળ લખાયેલ હોઈ કુલ ૧૪ પૃષ્ઠોમાં ગ્રન્થનો પાઠ મળે છે. અંતિમ પત્રને બાદ કરતાં બધાં જ પૃષ્ઠોમાં તેર લીટીઓ છે. અંતિમ પત્રમાં ગ્રન્થની સમાપ્તિ થતી હોઈ બાર લીટીઓ જોવા મળે છે. આમ સંપૂર્ણ ગ્રન્થ કુલ ૧૮૧ લીટીમાં લખાયેલો છે. ગ્રન્થનું લખાણ સુવાચ્ય અક્ષરોમાં છે. આમ છતાં 'હસ્તપ્રત-અ'ની સરખાણીમાં અહીં કેટલાક અંશે અશુદ્ધિઓ જોવા મળે છે. પત્ર '૧-બી'માં એક વાક્ય બે વાર લખાયેલું છે. પત્ર '૪-બી'માં પહેલી લીટીમાં પણ એક વાક્યનું પુનરાવર્તન થયું છે અને પછી તેને છેકી નાખવામાં આવ્યું છે. પત્ર '૬-એ'માં એકધારાં ચાર વાક્યો લહિયાની ભૂલથી ચૂકી જવાયાં છે. પત્ર '૬-બી'માં લખાણમાં ચૂકી જવાયેલા એક વાક્યને હાંસિયામાં લખવામાં આવ્યું છે. અહીં પણ અનેક સ્થળે અવગ્રહનું ચિહ્ન કરવામાં આવ્યું છે.

બન્ને હસ્તપ્રતો કોઈ એક જ મૂળનું અનુસરણ કરતી હોય એવું સ્પષ્ટ થાય છે. ગદ્યખણ્ડ ૧૧માં 'દેવી' કર્તાપદ હોઈ દેવી શબ્દપ્રયોગ આવશ્યક છે પણ તેમાં બે વખત દેવિ એવું સંબોધન પદ જોવા મળે છે, જ્યારે ત્રીજા પ્રયોગમાં બન્ને હસ્તપ્રતમાં દેવી એવું શુદ્ધ પદ પ્રાપ્ત થાય છે.[૫] પાઠની અશુદ્ધિની આ સમાનતા બન્ને હસ્તપ્રતોના પાઠના સમાન મૂળ તરફ સંકેત કરે છે.

ગ્રન્થના આરંભે અને અંતે પ્રાપ્ત થતી માહિતી

બન્ને હસ્તપ્રતનો આરંભ બિલકુલ સમાન છે. તેમાં સૌ પ્રથમ શ્રીનાથને અને પછી ગુરુને નમસ્કાર કરવામાં આવ્યા છે. ત્યારબાદ ''ॐ श्रीगोरक्षनाथो विचारशृङ्गारः ॥'' એવો નિર્દેશ થયો છે. ગ્રન્થના અન્તભાગમાં ગ્રન્થનામ 'નિરંજનપુરાણ' અને ગ્રન્થકર્તા 'ગોરક્ષનાથ'નો સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ છે. અહીં નિરંજનપુરાણને યોગશાસ્ત્ર કહેવામાં આવ્યું છે. તેના પઠન અને શ્રવણના મહિમાને દર્શાવતા કહ્યું છે કે આ પુરાણનું શ્રવણ કરવાથી ધર્મનું સાન્નિધ્ય પ્રાપ્ત થાય છે અને પાપ દૂર થાય છે. તેનું શ્રવણ કરનારના પાપનો નાશ થાય છે અને તેના વક્તા મોક્ષને પામે છે. વાચક અને શ્રોતાને થતી ફળપ્રાપ્તિ અંગે પુનરુક્તિ કરીને કહેવામાં આવ્યું છે કે વાચનાર અને સાંભળનાર પાપથી લેપાતો નથી અને તેના પુણ્યનો નાશ થતો નથી. તે ગમન અને આગમનને અટકાવે છે. જ્ઞાનદીપપ્રબોધ એવું આ

---

૫. स्वामिन् शङ्कर जले देवि स्थले देवि देवी चाकाशमण्डले ॥ निरञ्जनपुराणम्, ११.२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

પુરાણ યોગારંભે સિદ્ધદાયક છે અને મનુષ્યોને મોક્ષદાયક છે. શંભુનાથ ગુરુની પાદુકાઓને નમસ્કાર કરીને પુરાણની સમાપ્તિ દર્શાવી છે.[૬]

નિરંજનપુરાણનું કથાવસ્તુ

પ્રારંભે સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ પૂર્વેની સ્થિતિનું વર્ણન છે. તદનુસાર હજારો વર્ષોથી અંધકાર હતો. ત્યારે માતા, પિતા, વર્ણ, ચિહ્ન, રૂપ, રેખા, ઉપર, નીચે, ગામ, ઘર, ધરતી, ગગન, સૂર્ય, ચન્દ્ર વગેરે કંઈ જ ન હતું. વેદ, શાસ્ત્ર વગેરે પણ કંઈ ન હતું. તે સમયે ભગવાન શંભુ નિરંજન સ્વરૂપે વિદ્યમાન હતા. સર્વત્ર શૂન્યની વ્યાપ્તિ હતી. તે શૂન્યમાં નિરંજન રાજા શૂન્ય સ્વરૂપે હતા. તેઓ નિરાલંબ હતા. તેમના એ દેહમાં પાપ અને પુણ્યનો પ્રવેશ ન હતો.

ત્યારબાદ સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિને વર્ણવવામાં આવી છે. એ અનાદિ શંભુના શરીરના અડધા ભાગમાંથી દેવીનો પ્રાદુર્ભાવ થયો. ભગવાન નિરંજન દેવ અને તે દેવીથી સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ થઈ. બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને મહેશ્વર એમના પુત્રો થયા. સત્ત્વ, રજસ્ અને તમસ્ એ ત્રણ ગુણો, ૮૪ લાખ યોનિઓ, એમનાં અન્ન અને જળ તેમજ પાંચ વેદોની ઉત્પત્તિ થઈ. ઋગ્વેદ, યજુર્વેદ, સામવેદ અને અથર્વવેદની સાથે સૂક્ષ્મવેદને ગણાવીને વેદોની સંખ્યા પાંચ કહી છે. ગાયત્રી, સાવિત્રી, સરસ્વતી વગેરે એમની પુત્રીઓ થઈ. કુલ ૭૨૦૦ પ્રકારની પ્રજા ઉત્પન્ન થઈ. જે સૃષ્ટિના રહસ્યને જાણતો નથી તે પશુ છે. ભગવાન નિરંજન શબ્દથી તત્ત્વજ્ઞાનનો બોધ કરાવે છે. તેથી તેઓ જ ગુરુ છે.

બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને દેવી વચ્ચેના વિવાદની એક મનોરમ્ય કથા મળે છે. બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને દેવી માનતા હતા કે તેમણે સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ કરી છે. નિરંજન ઈશ્વરે બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને દેવી સૃષ્ટિના સર્જક નથી એવું સિદ્ધ કર્યું. બ્રહ્માને તેમણે કહ્યું કે જો સૃષ્ટિની રચના બ્રહ્માએ કરી હોત તો બધાને ચાર મુખ હોત. વિષ્ણુએ જો સૃષ્ટિની રચના કરી હોત તો બધાને ચાર ભુજાઓ હોત. એ જ રીતે જો દેવીએ સૃષ્ટિની રચના કરી હોત તો બધાને અષ્ટ ભૂજાઓ હોત. નિરંજન દેવ આ સૃષ્ટિના સર્જન અંગેનું આ રહસ્ય નહિ સમજવાને કારણે બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને દેવીને ભ્રમિત કહેવાયાં છે. બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને ઇન્દ્રના ઘણા અવતારો થઈ ગયા હોય તેઓ સૃષ્ટિના સર્જક નથી.

---

૬. निरञ्जपुराणमदिं स्थितं पूर्णम् ॥७॥ तच्छृण्वतां धर्मः सान्निध्यमायाति ॥८॥ पापं याति दूरम् ॥९॥ शृण्वतां पापं नश्यति वक्ता मोक्ष लभत इति श्रीनिरञ्जनपुराणनामको ग्रन्थविरचितो गोरक्षनाथेन तं च पठन्तः शृण्वन्तः पापेन न लिप्यन्ते न चापि पुण्येन ह्लियन्ते ॥१०॥ श्रीनृणां मोक्षदायकः ॥११॥ योगारम्भे सिद्धिदः ॥१२॥ गमागमौ निवर्तयति ॥११॥ एष ग्रन्थो ज्ञानदीपप्रबोधः ॥१२॥ योगशास्त्रं संपूर्णम् ॥१३॥ शम्भुनाथपादुकाभ्यां नमस्ते ॥१४॥ इति श्रीनिरञ्जनपुराणं समाप्तम् ॥१५॥ श्रीः ॥१६॥ ખણ્ડ ૨૧

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

દેવોના સૃષ્ટિસર્જન અંગેના મિથ્યા પ્રવાદથી મહાદેવ ગુસ્સે થયા અને તેમણે શંખ નામના દાનવને ઉત્પન્ન કર્યો. ચારેય વેદોનું હરણ કરીને તે સાતમા પાતાળમાં લઈ ગયો. વેદોને પાછા મેળવવા માટે બ્રહ્મા અને વિષ્ણુ દેવીની સાથે મળીને ભગવાન નિરંજન પાસે આવ્યા. ભગવાને તેમનો તિરસ્કાર કર્યો અને બ્રહ્માને સાત વાર નાકલીટી તાણવા, વિષ્ણુને દશ અવતારો અને દેવીને સાત અવતારો ધારણ કરવા આજ્ઞા કરી. મહાદેવની આજ્ઞા પ્રમાણે બ્રહ્માએ સાત વાર નાકલીટી તાણી. વિષ્ણુના દશ અવતારો થયા અને દેવીના સાત અવતારો થયા.

મહાદેવની આજ્ઞાને અનુસરીને વિષ્ણુએ મત્સ્યાવતાર લીધો અને સાતમા પાતાળમાં જઈને વેદને પાછા લાવ્યા અને બ્રહ્માને સોંપ્યા. બ્રહ્માએ ભગવાન નારાયણ વિષ્ણુને ગુરુ તરીકે સ્વીકાર્યા. પછી અલક્ષ્ય નિરંજને વિષ્ણુને કહ્યું કે તમે સાતમા પાતાળમાં જઈને અલક્ષ્ય નિરંજનનાં ચરણ છે તેની પૂજા કરીને આવો. ગરુડ પર બેસીને વિષ્ણુ સાતમા પાતળમાં ગયા. માર્ગમાં વાસુકિનું વિઘ્ન આવ્યું. પાદુકાનો પાર પામ્યા વિના જ તેઓ પરત ફર્યા. આવીને તેમણે ભગવાનને સત્ય કહ્યું કે તેઓ પ્રભુના ચરણનો પાર પામી શક્યા નથી. વિષ્ણુના સત્યવચનથી શંભુ રાજા પ્રસન્ન થયા અને તેમણે વિષ્ણુને ઉત્તમ ભોગો અને ત્રિભુવનના રાજ્યપદનું વરદાન આપ્યું.

નિરંજન પ્રભુએ બ્રહ્માને એકવીસમા બ્રહ્માણ્ડમાં જઈને પોતાના જટામુકુટની પૂજા કરવા મોકલ્યા. બ્રહ્મા જટામુકુટને પ્રાપ્ત કરી શક્યા નહિ. તેમણે કાકઋષિ, કેતકી અને ગાયને સાક્ષી બનાવીને કહ્યું કે પોતે પૂજા કરીને પાછા આવ્યા છે. નિરંજન ભગવાન સમજી ગયા કે ત્રણેય સાક્ષીઓ સહિત બ્રહ્મા ખોટું બોલતા હતા. ભગવાને બ્રહ્માને જન્તુઘ્ન થવાનો શાપ આપીને કહ્યું કે તું માંસનો વિક્રેતા બન. બ્રહ્મા યવનત્વને પામ્યા. પછી તેમણે કાકઋષિને પાપભક્ષણ કરવાનો અને કેતકીને ગંધહીન થવાનો શાપ આપ્યો. દેવીનો કાશરી રાજાને ઘરે જન્મ થયો. તેમણે નારાયણને પતિ તરીકે પ્રાપ્ત કર્યા.

નિરંજનપુરાણમાં ઐતિહાસિક કહી શકાય તેવા કેટલાક ઉલ્લેખો મળે છે. યથાર્થ અર્થઘટનના અભાવે આ નિર્દેશો રહસ્યમય જણાય છે. નાથસંપ્રદાયની પરંપરાનું અધ્યયન કરીને આ નિર્દેશોનું અર્થઘટન કરવામાં આવે તો તેમાંથી મહત્ત્વપૂર્ણ તથ્યોનું ઉદ્ઘાટન થવાની સંભાવના છે. નિરંજનપુરાણના પ્રાપ્ત કેટલાક ઉલ્લેખો જોઈએ.

(૧) શાલિવાહન રાજાને ત્યાં ચતુરંગપાદનો જન્મ થયો હતો. તે મૂર્ખ રાજા દ્વારા તેના હાથપગનું છેદન, ભક્ત ગોપાલ દ્વારા બાર વર્ષ સુધી તેનું પાલનપોષણ વગેરે નિર્દેશોમાં ઇતિહાસનો કોઈ ગૂઢ તંતુ હોવાની સંભાવના છે. ગોપાલ મત્સ્યેન્દ્રનાથના શિષ્ય થયા અને તેઓ યતિ ગોરક્ષનાથ તરીકે ઓળખાયા છે. (ગદ્યખણ્ડ ૬)

(૨) આર્યવર્ણ ચન્દ્રકૌલ, યવન સંપ્રદાયનું પ્રવર્તન, રાજા મકેશ્વર વગેરે નિર્દેશો પણ અગમ્ય જણાય છે. (ગદ્યખણ્ડ ૧૮)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(૩) નવસો યવનો અને તેમનો યવનેતરો સાથેનો સંઘર્ષ, જિંદ નામે વૃદ્ધ યવન, ષાજષિદર, રત્નરાવલ હાજી, આદમ, શ્રીમહંમદરસૂલ વગેરે નિર્દેશો કથાનકની અર્થસંગતિમાં દુર્બોધ બની રહે તેવા છે. નાથસંપ્રદાયની પરંપરા અને ઐતિહાસિક સામગ્રીનું અધ્યયન કદાચ અહીં મદદરૂપ થઈ શકે.

નિરંજનપુરાણનું ગદ્ય

નિરંજનપુરાણનું ગદ્ય ખૂબ આકર્ષક બની રહે તેવું છે. તેની શૈલીમાં મહદંશે પ્રાસાદિકતાનો અનુભવ થાય છે. તેના કેટલાક અંશો ધ્યાનપાત્ર છે. સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ પૂર્વેની સ્થિતિનું વર્ણન આપતો આ ગદ્યાંશ જુઓ. તેમાં કયાંક ભુજંગપ્રયાત, ઉપજાતિ કે અનુષ્ટુપનું પાદ વાંચતા હોઈએ એમ જણાય છે.

न वर्णो न चिह्नं न रूपं न रेखा ॥६॥ मूर्तिविहीनोऽगम्योऽलक्ष्यः ॥७॥ न चोर्ध्वं न चाधो न गेहो न च ग्रामः ॥८॥ सर्वतो विवर्जितोऽतीतोऽनुपमः ॥९॥ न धरित्री न गगनं न चन्द्रो न सूर्यः ॥१०॥ बाह्यो न चान्तर्न चान्तिके न दूरे ॥११॥ न चोत्पत्तिर्न मरणं न खनिर्न वार्णी ॥१२॥ असङ्गश्चयुगतो योगी योगध्यानी ॥१३॥ न ब्रह्मा न विष्णुर्न देवी न महादेवः ॥१४॥ शम्भुर्निरञ्जनोऽलक्ष्यरहस्यः ॥१५॥ भेदो न चाभेदः ॥१६॥ न दर्शनं न वेषः ॥१७॥ अगम्योऽगोचरमूर्तिरेकोऽलक्ष्यक्रियः ॥१८॥ न शुचिभावो न भ्रान्तः ॥१९॥ नोत्तमो न चाधमः ॥२०॥ न जातिमान् न च पङ्क्तिमान् ॥२१॥ वेदा न शास्त्राणि च पुस्तकानि पुराणानि न यवनेतरो न चापि यवनो म्लेच्छः ॥२२॥ (खण्ड १)

વિવિધ કાયાઓનું વર્ણન કરતો નીચેનો અંશ પણ આસ્વાદ્ય બની રહે તેવો છે. મનુષ્યની કાયાઓમાં કોઈ યોગી તો કોઈ ભોગી, કોઈ રોગી, કોઈ અશ્વપતિ તો કોઈ ગજપતિ કે કોઈ ભૂપતિ, કોઈ નરપતિ કે કોઈ યતિ, કોઈ સત્યવાદી કે કોઈ સૂક્ષ્મવેદી, કોઈ અલ્પાહારી તો કોઈ કંથાધારી.

कोऽपि कायो योगी कोऽपि कायो भोगी कोऽपि कायो रोगी कोऽपि कायोऽश्वपतिः ॥३॥ कोऽपि कायो गजपतिः ॥४॥ कोऽपि कायो भूपतिः ॥५॥ कोऽपि कायो नरपतिः ॥६॥ कोऽपि कायो यतिः ॥७॥ कोऽपि कायो सत्यवादी ॥८॥ कोऽपि कायो सूक्ष्मवेदी ॥९॥ कोऽपि कायोऽल्पाहारी कोऽपि कायः कन्थां परिधाय लक्ष्यः ॥१०॥ (खण्ड ८)

ભગવાન નિરંજન સૃષ્ટિના કર્તૃત્વ અંગે બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને દેવીને પ્રશ્નો પૂછે છે ત્યારે તે ત્રણેય દેવતાઓ પોતાનું સર્વવ્યાપકત્વ દર્શાવી સૃષ્ટિના સ્વામીત્વ અંગેના પોતાના અધિકારીપણાને પ્રગટ કરે છે. ત્રણેયના શબ્દોમાં રહેલું સામ્ય ચિત્તને પ્રસન્ન કરી દે તેવું છે. અહીં ગદ્યમાં એક પ્રકારનું નાટ્યત્વ અનુભવાય છે.

ब्रह्मोवाच ॥१४॥ स्वामिन् शङ्कर जले ब्रह्मा स्थले ब्रह्मा ब्रह्मा चाकाशमण्डले ॥१६॥ ज्वालमालाकुले ब्रह्मा स्थाने स्थानान्तरे चापि ब्रह्मा ॥१७॥ सर्वैव निरन्तरं ब्रह्मणो माया ॥१८॥ एवंविधिना स्वामिन् मया सृष्टिरुत्पादिता ॥१९॥ (खण्ड ९)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विष्णुरुवाच ॥८॥ स्वामिन् शङ्कर जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुराकाशमण्डले ॥९॥ ज्वालमालाकुले विष्णुर्विष्णुः स्थाने स्थानान्तरे च ॥१०॥ सर्वैव निरन्तरं विष्णोर्माया ॥११॥ एवंविधिना स्वामिन् मया सृष्टिरुत्पादिता ॥१२॥ (ખણ્ડ ૧૦)

देव्युवाच ॥१॥ स्वामिन् शङ्कर जले देवि स्थले देवि देवी चाकाशमण्डले ॥२॥ ज्वालमालाकुले देवी देवी स्थाने स्थानान्तरे ॥३॥ सर्वैव निरन्तरं देव्या माया ॥४॥ भगमुखेन मयेयं सृष्टिरुत्पादिता ॥५॥ (ખણ્ડ ૧૧)

ભગવાન નિરંજને બ્રહ્માને એકવીશમા બ્રહ્માણ્ડમાં જઈને પોતાની પૂજા કરીને આવવાની આજ્ઞા કરી હતી પણ બ્રહ્મા તેમાં સફળ થયા ન હતા. આથી તેમણે કાકઋષિ, કેતકી અને ગાયને સાક્ષી બનાવ્યા. પછી બ્રહ્મા અને ત્રણેય સાક્ષીઓએ ભગવાન શંકર પાસે જે રીતે પોતાની વાત રજૂ કરી તેમાં સાવ નાનાં વાક્યોનો પ્રયોગ કરીને તેમનું પુનરાવર્તન થયું છે. આ સંવાદમાં પ્રયુક્ત ગદ્યને લીધે કથાનો પ્રવાહ જીવંત બને છે અને વાચકને પોતાની સમક્ષ દૃશ્ય ભજવાતું હોય તેવી તાદૃશ અનુભૂતિ થાય છે.

ओमिति शङ्करपूजां कृत्वा समागतोऽस्मि ॥४॥ ब्रह्मन्नत्र किं साक्ष्यम् ॥५॥ साक्षिणोऽत्र कर्मणि काकऋषिः केतकी गौः ॥६॥ वद काकऋषे ब्रह्मा कृत्वा पूजां समागतः ॥७॥ ओमिति शङ्करस्वामिन् कृत्वा पूजां समागतः ॥८॥ स्नापयित्वा मार्जयित्वा पुष्पमाला निधायेत्यादिपूजां कृत्वा समागतः ॥९॥ वद केतकि पूजां कृत्वा समागतः ॥१०॥ ओमिति शङ्करस्वामिन् पूजां कृत्वा समागतः ॥११॥ स्नपयित्वा मार्जयित्वा पुष्पमालां निधायेत्येवंविधिना स्वामिन् पूजां कृत्वा समागतः ॥१२॥ वद गो पूजां कृत्वायं समागतः ॥१३॥ ओमिति स्वामिन् पूजां कृत्वा समागतः ॥ स्नपयित्वा मार्जयित्वा पुष्पमाला निधायेत्येवं स्वामिन्पूजां कृत्वा समागतः ॥१४॥ (ખણ્ડ ૧૭)

નિરંજનપુરાણના અંત ભાગમાં દશાંશની વાત આવે છે. અહીં મળતી પુનરાવૃત્તિ આહ્લાદ્ય અને આસ્વાદ્ય બની રહે તેવી છે. (ખણ્ડ ૨૦)

दशसु स्त्रीषु एका दशसु पुत्रेष्वेकः पुत्रः ॥३॥ दशसु पुत्रीष्वेका पुत्री ॥४॥ दशसु ग्रामेष्वेको ग्रामो दशसु हस्तिष्वेको हस्ती ॥५॥ दशस्वश्वेष्वेकोऽश्वः ॥६॥ दशसु गोष्वेका गौः ॥७॥ दशसु वृषेष्वेको वृषः ॥८॥ दशसु मुद्राधानीष्वेका मुद्राधानी ॥९॥ दशसु गौणीष्वेका गौणी ॥१०॥ दशसु मुद्रास्वेका मुद्रा ॥११॥ दशसु रौप्यमुद्रास्वेका रौप्यमुद्रा ॥१२॥ दशसु ताम्रमुद्रायुगलेष्वेकं ताम्रमुद्रायुगलम् ॥१३॥ दशसु ताम्रमुद्रास्वेका ताम्रमुद्रा ॥१४॥ दशसु वस्त्रेष्वेकं वस्त्रम् ॥१५॥ दशसु सुवर्णादिखण्डेष्वेकं तत् खण्डम् ॥१६॥ दशसु दामसु एकं दाम ॥१७॥ दशसु कवलेष्वेकं कवलम् ॥१८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

મૂળ ગ્રન્થ નિરંજનપુરાણ

હસ્તપ્રત અ અને બ ના આધારે નિરંજનપુરાણનો સંસ્કૃત પાઠ નીચે પ્રમાણે પ્રાપ્ત થાય છે.

श्रीनाथाय नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ ओम् श्रीगोरक्षनाथो विचारशृंगारः ॥

बध्नाति[७] बन्धनैः ओंकारः ॥१॥ शिवशक्ति न सृष्टिसंसारः ॥२॥ असंख्ययुगतोऽ[८]भव-दन्धकारः ॥३॥ न जातिर्न कुलं न माता न च पिता ॥४॥ शंभुर्निरञ्जन आत्मानैवात्मा ॥५॥ न वर्णो न चिह्नं न रूपं न रेखा ॥६॥ मूर्तिविहीनोऽगम्योऽलक्ष्यः ॥७॥ न चोर्ध्वं न चाधो न गेहो न ग्रामः ॥८॥ सर्वतो विवर्जितोऽतीतोऽनुपमः ॥९॥ न धरित्री न गगनं न[९] चन्द्रो न सूर्यः ॥१०॥ बाह्यो न चान्तर्न चान्तिके न दूर ॥११॥ न चोत्पत्तिर्न मरणं न खनिर्न वाणी ॥१२॥ असंख्ययुगतो योगी योगध्यानी ॥१३॥ न ब्रह्मा न विष्णुर्न देवी न महादेवः ॥१४॥ शंभुर्निरञ्जनोऽलक्ष्यऽरहस्यः ॥१५॥ भेदो न चाभेदः ॥१६॥ न दर्शनं न वेषः ॥१७॥ अगम्योऽगोचरमूर्तिरेको ऽलक्ष्यक्रियः ॥१८॥ न शुचिभावो न भ्रान्तः ॥१९॥ नोत्तमो न चाधमः ॥२०॥ न जातिमान् न च पंक्तिमान् ॥२१॥ वेदा न शास्त्राणि न च पुस्तकानि पुराणानि न यवनेतरो न चापि यवनो म्लेच्छः ॥२२॥ (१)

पवने पवनो निरञ्जनो राजा ॥१॥ तानि सर्वाणि सूक्ष्मशून्यस्य मायैव ॥२॥ शून्ये शून्यं निरञ्जनो राजा ॥३॥ शून्ये निरालम्बोऽभूत् स्वामिनो निरञ्जनस्य कायः ॥४॥ कायो मायिकस्तथापि[१०] निरालम्बे तत्र पापानि पुण्यानि न प्रविशन्ति ॥५॥ शून्यतोऽभूत् सर्वमिदं स्थूलम् ॥६॥ अनादिना धर्मेण विरचितं[११] सृष्टेर्मूलम् ॥७॥ अनादेरर्धाङ्गेण देव्या गृहीतोऽवतारः ॥८॥ देव्या अर्धाङ्गेण रजोवीर्येण स्थापिता स्थिरा मेदिनी[१२] यस्या सृष्टिसंसारः ॥९॥ अनादिना[१३] पवनेन स्थापित आकाशः ॥१०॥ देव्या देवस्याभूद्गृहवासः ॥११॥ सूर्याचन्द्रावुभावपि दीपकौ स्थापितौ ॥१२॥ तौ च धरित्रीं विहाय गगनं च विहायोभौ स्थितौ ॥१३॥ अनादेर्धरित्र्यां गृहस्थायां[१४] ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः पुत्रा आगताः ॥१४॥ (२)

---

૭. બન્ને હસ્તપ્રતોમાં અહીં बन्धनैः પાઠ છે.

૮. भवधुन्धुकारः । હસ્તપ્રત બ

૯. હસ્તપ્રત બ चन्द्रः પાઠ હોઈ સન્ધ્યભાવ છે.

૧૦. निरालम्बेऽप्य तत्र .... । હસ્તપ્રત બ

૧૧. सृष्टेर्मूलो । હસ્તપ્રત બ

૧૨. બન્ને હસ્તપ્રતોમાં यस्या પાઠ મળતો હોવા છતાં અહીં यस्याः પાઠ હોવાની સંભાવના રહે છે.

૧૩. હસ્તપ્રત બ માં અહીં સ્પષ્ટ રીતે पवतेन વાંચવા મળે છે.

૧૪. ब्रह्मविष्णुर्महेश्वराः .... । હસ્તપ્રત અ, અશુદ્ધ પાઠ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सत्त्वरजस्तमांस्युत्पादितानि ॥१॥ एतानि पृथक् पृथक् गुणाः स्थिताः ॥२॥ अनादेरिन्द्रियत इन्द्रो देवता उत्पन्नः ॥३॥ येन चतुरशीतिलक्षसंख्याका जीवयोनय उत्पादिताः ॥४॥ चतुरशीतिलक्षसंख्याकानां जीवयोनीना[१५] माहारपानीयं पूरितम् ॥४॥[१६] अनादेः पञ्च भूतात्मकादात्मनः पञ्च वेदा उत्पन्नाः ॥६॥ पञ्चापि ते वेदाः सम्पूर्णाः स्थिताः पानीयेन बिन्दुरुत्पादिताः ॥७॥ तत्र मनो वत्स्यः कायो गौः ॥८॥ ब्रह्मण ओम्कारः ॥९॥ श्रवणगोचरः कृतः ॥१०॥ गायत्री सावित्री सरस्वती भगवत्येता ब्रह्मणः पुत्र्य[१७] उत्पन्नः ॥११॥ इडा नाम ऋग्वेदः पिंगला नाम यजुर्वेदः ॥१२॥ सुषुम्त्रा नाम सामवेदः ॥१३॥ शंखिनी या साऽथर्ववेदः ॥१४॥ निज आत्मा सूक्ष्मवेदः ॥१५॥ स च सूक्ष्मवेदोऽनन्तसिद्धैः प्राप्तः ॥१६॥ (३)

ते च चत्वारो वेदा ब्रह्मणे दत्तः ॥१॥ ब्रह्माऽकथयत्[१८] स्वामिना कृताः सद्गुरुणा बोधिताः ॥२॥ सूक्ष्मो वेद आत्मध्यानतो दत्तोऽनन्तसिद्धेभ्यो भेदस्तेन भिद्यते यतः सिद्धयति दुर्लभः कायः पठन् गृणन् पुस्तकं कथयन् ब्रह्मा[१९] तत्राभणत् वेदाः शास्त्राणि सम्पूर्णानि प्राप्तानि ॥३॥ अथर्ववेदः पार्वत्या गोपिताः ॥४॥ वेदत्रयी[२०] ब्रह्मणा प्राप्ता श्रेयोऽभूच्छ्रेयोऽभूत् स्वामिन् ॥५॥ वेदत्रयी संपूर्णा प्राप्त ॥६॥ भगलिङ्गयोः पूजां कृत्वा रचनां विदधे ॥७॥ यदा मानसी देवी ईश्वरेण बाहुर्ग्राहितः ॥८॥ अनाहतस्तु स दारहितः ॥९॥ अन्यत्तु सर्वमपि ममैव माया ॥१०॥ द्वासप्तिशतसङ्ख्यका ममैव प्रजा ॥११॥ चतस्रो जातयो भगिन्यो भागिनेयाश्च ॥१२॥ त्रयोऽपि देवा एकजातयः ॥१३॥ ज्ञानेन ध्यानेन भेदोऽवसीयते ॥१४॥ (४)

यश्च लोकत्रयस्य रहस्यं जानीयात् ॥१॥ स तु कर्मणोत्तम् देवं पूजयेत् ॥२॥ स्नानं कुरु ब्रह्मा धावनं च कुरु आचारविचारं च कुरु सूतकं पातकं च गृहाण पृथिव्या भारम् ॥३॥ अबोधस्य मार्गः प्राप्त उदरार्था बुद्धिः प्राप्त येन स तु पशुर्न जानाति तत्त्वज्ञानस्य रहस्यम् ॥४॥ अनिलेनानिलनिरञ्जनो ज्ञानं बोधितः ॥५॥ अस्माभिर्न गुरु दृशा दृष्टः ॥६॥ वयं तु गुरुणा शब्देनैव प्रतिबोधितः ॥७॥[२१] गुरुः स ईश्वरो महादेवः ॥८॥

---

१५. महारपानीयंः .... । હસ્તપ્રત બ, અશુદ્ધ પાઠ

१६. अनादः .... । હસ્તપ્રત બ, અશુદ્ધ પાઠ

१७. उत्पन्नः । હસ્તપ્રત બ, અશુદ્ધ પાઠ

१८. स्वामिनाः .... । હસ્તપ્રત બ, અશુદ્ધ પાઠ

१९. तत्रभणत ... । હસ્તપ્રત બ, અશુદ્ધ પાઠ

२०. અહીં હસ્તપ્રત અ માં ब्राह्मणा એવો અશુદ્ધ પાઠ છે. જ્યારે હસ્તપ્રત બ માં ઉપર મુજબનો શુદ્ધ પાઠ છે.

२१. स गुरुः स ના સ્થાને હસ્તપ્રત બ માં सद्गुरुः शब्दः એવું વાંચવા મળે છે.

२२. भागिनेयोऽनादिना .... । હસ્તપ્રત બ

२३. બન્ને હસ્તપ્રતમાં गोपिता એવો સમાન પાઠ મળતો હોવા છતાં અહીં गोपिताः પાઠ હોવાની સંભાવના છે.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वर्गमृत्युपाताले व्याप्तः ॥९॥ मानस्या देव्या बाहुरीश्वरेण ग्राहितः ॥१०॥ बहुभाषणं बहुप्रसरणं पृथिव्याः प्रजा बोधिताः ॥११॥ भगिन्यो[२२] भागिनेया अनादिना गुरुणा[२३] गोपिता ॥१२॥ (५)

मीनमाता मीनपिता राघवगर्भे श्रुतः ॥१॥ जलमध्ये मीनोऽवततारः ॥२॥ राघवगर्भस्थितेन ज्ञानविचारो गृहीतः ॥३॥ राज्ञः शालिवाहनस्य गृहे पुत्रो जातः ॥४॥ तत्रत्येन मूर्खेण राज्ञा चतुरङ्गपादस्य करौ चरणौ छेदितौ गहने च स उत्सारितः ॥५॥ तत्र चाकस्माद्भक्तो गोपालः समागतः ॥६॥ द्वादशवर्षाणि यावद्दुग्धघटिका पूरिता यतश्चतुरङ्गपादस्य कायो दृढो जातः ॥७॥ छेदितावपि करौ चरणौ च पुनः समारुरुहतुः ॥८॥ ज्ञानस्य प्रशंसा गृह्णन् रक्तो गोपालो मत्स्येन्द्रस्य बभूव शिष्यः ॥९॥ ईश्वरो मत्स्येन्द्रो बहुगुणवान् ॥१०॥ एकत्र स्थानेऽतिष्ठत् ॥११॥ आत्मनैवात्मनो नाम दधार ॥१२॥ ईश्वरोऽवश्रोतव्यं मत्स्येन्द्र स्वामिन् ॥१३॥ एकादृग् यः कोऽपि शूरो वीरः क्षत्रियो यः साधनेन योगस्य सिद्धयोगी भवेत् ॥१४॥ यस्यान्तो न केनापि गृह्यते यश्च लालो गोपालो यतिगोरक्षनाथो भवेत् ॥१५॥ (६)

पञ्च तत्त्वानि गृहीत्वा मत्स्येन्द्रस्य शिष्यः कृतः ॥१॥ यतिस्तु गोरक्षनाथ स्वामी अहं तु कनीयानो भवतोऽग्रे योगपन्थारहो रहस्यं तत्रस्थो भवास्माकमग्रे ॥२॥ अहं भवतोऽग्रे कनीयान् भवामि यतो मदग्रे योगिन आदेशं करिष्यन्ति ॥३॥ स्वामिन् कन्थां गृह्णामि भ्रमामि ॥४॥ अलक्ष्यं शब्देन चतुरशीतिलक्षसङ्ख्याका जीवयोनीर्जागरणं नयामि ॥५॥ मम नाम तु योगी पुरुषः ॥६॥ नवनवतिकोटिसङ्ख्याकानां राज्ञां मस्तकानि मुण्डयितव्यानि ॥७॥ कथनीयं ब्रह्मज्ञानं मस्तके निवेशनीयः पाणिः ॥८॥ ऋद्धयः सिद्धयो बह्वयः पूरयितव्याः ॥९॥ (७)

आत्मनैवावादयद्यतिर्गुरुगोरक्षनाथनामा योगी रजोवीर्यसंयोगतो नवदशमासावधिरन्तः[२४] प्रावित् ॥१॥ वदति गच्छति सर्वमपि भक्षते स च ज्योतिः पुरुषो मध्ये गुप्तोऽतिष्ठत् ॥२॥ कोऽपि कायो योगी कोऽपि कायो भोगी कोऽपि कायो रोगी कोऽपि कायोऽश्वपतिः ॥३॥ कोऽपि कायो गजपतिः ॥४॥ कोऽपि कायो भूपतिः ॥५॥ कोऽपि कायो नरपतिः ॥६॥ कोऽपि कायो यतिः ॥७॥ कोऽपि कायो सत्यवादी ॥८॥ कोऽपि कायो सूक्ष्मवेदी ॥९॥ कोऽपि कायोऽल्पाहारी कोऽपि कायः कन्थां[२५] परिधाय लक्ष्यः ॥१०॥ आत्मनैवात्मा पुरुषोऽलक्ष्यः ॥११॥ चतुरशीतिलक्षसङ्ख्याकानां जीवयोनीनामाहारपानीयं पूरणीयम् ॥१२॥ आत्मा कारणं यो निरञ्जनो यतिगोरक्षनाथो योगी ईश्वरेण कथितं ब्रह्मज्ञानम् ॥१३॥ (८)

---

२४. બન્ને હસ્તપ્રતમાં અહીં प्रावित् મળે છે પણ प्राविशत् એવો પાઠ હોવાની સંભાવના છે.

२५. परिधायालक्ष्यः । હસ્તપ્રત બ

२६. બન્ને હસ્તપ્રતોમાં અહીં સન્ધિનો અભાવ છે.

२७. देवी अवदत् । હસ્તપ્રત બ. હસ્તપ્રત અ માં ઉપર મુજબ અવગ્રહનું ચિહ્ન છે. બન્ને હસ્તપ્રતોમાં સન્ધિનો અભાવ છે.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ईश्वरः संस्थितो योगध्याने ब्रह्मविष्णुदेवीनामन्योन्यं विवादो विधातव्यः ॥१॥ ब्रह्माऽकथयत् सृष्टिर्मम विष्णुरकथयम् सृष्टिर्मम ॥२॥[२६] देवी अकथयत् सृष्टिर्मम ॥३॥ एवं च त्रयाणां देवानां विवादो जातः ॥४॥ ब्रह्माऽवदत् मया सृष्टिरुत्पादिता ॥५॥[२७] देवीऽवदत् ॥६॥ त्वं मे पुत्रोऽहं ते माता कथं ब्रह्मन् त्वया सृष्टिरुत्पादिता ॥७॥ ब्रह्मोवाच ॥८॥ रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुस्तमो देवो महेश्वरः ॥९॥ स्थाने स्थाने विष्णोर्माया ॥१०॥ एवं मया सृष्टिरुत्पादिता ॥११॥ श्रीईश्वर उवाच ॥१२॥ ईश्वरोऽवददच्छब्दं विचार्य आगच्छ ब्रह्मन् कथय त्वं स्वकीयं विचारम् ॥१३॥ उत्पद्यसे क्षीयसे चासङ्ख्यप्रकारं येन त्वया कथं सृष्टिरुत्पादिता ॥१४॥ ब्रह्मोवाच ॥१५॥ स्वामिन् शङ्कर जले ब्रह्मा स्थले ब्रह्मा ब्रह्मा चाकाशमण्डले ॥१६॥ ज्वालमालाकुले ब्रह्मा स्थाने स्थानान्तरे चापि ब्रह्मा ॥१७॥ सर्वैव निरन्तरं ब्रह्मणो माया ॥१८॥ एवंविधिना स्वामिन् मया सृष्टिरुत्पादिता ॥१९॥ (९)

[२८]ईश्वर उवाच ॥१॥ यदेयं ब्रह्मन् सृष्टिस्तवैव स्यात्तदा मुखानि चत्वार्येव सर्वेषां भवेयुः ॥२॥ तन्नास्ति ॥३॥ यतो भवता न ज्ञातं सृष्टे रहस्यं कर्तास्याः सृष्टेरन्य एव निरञ्जनो देवः ॥४॥ आगच्छागच्छ भो विष्णो कथय भवतो विचारम् ॥५॥ उत्पद्यसे क्षीयसे कोटिवेलम् ॥६॥ कथमियं भवतापि सृष्टिरुत्पादिता ॥७॥ विष्णुरुवाच ॥८॥ स्वामिन् शङ्कर जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुराकाशमण्डले ॥९॥ ज्वालमालाकुले विष्णुर्विष्णुः स्थाने स्थानान्तरे च ॥१०॥ सर्वैव निरन्तरं विष्णोर्माया ॥११॥ एवंविधिना स्वामिन् मया सृष्टिरुत्पादिता ॥१२॥ ईश्वर उवाच ॥१३॥ यदेयं विष्णो सृष्टिर्भवत एव स्यात्तर्हि चत्वारश्चत्वार एव भुजाः सृष्टौ सर्वेषां स्युः ॥१४॥ यतो भवता न ज्ञातं सृष्टे रहस्यं कर्तास्याः सृष्टेरन्य एव निरञ्जनो देवः ॥१५॥ आगच्छागच्छ हे देवि कथय भवत्या विचारम् ॥१६॥ उत्पद्यसे क्षीयसे बहुवारम् ॥१७॥ यया त्वया कथमुत्पादिता सृष्टिरियम्॥१८॥ (१०)

देव्युवाच ॥१॥[२९] स्वामिन् शङ्कर जले देवि स्थले देवि देवी चाकाशमण्डले ॥२॥ ज्वालमालाकुले देवी देवी स्थाने स्थानान्तरे ॥३॥ सर्वैव निरन्तरं देव्या माया ॥४॥ भगमुखेन मयेयं सृष्टिरुत्पादिता ॥५॥ ईश्वर उवाच ॥६॥ यदेयं सृष्टिर्देवि[३०] भवत्या भवेत्तर्हि अष्टावष्टावेव भुजाः सर्वेषां भवेयुः ॥७॥ यतस्त्वया न ज्ञातं सृष्टे रहस्यं कर्तास्याः सृष्टेस्तु निरञ्जनो देवोऽन्य एव ॥८॥ ब्रह्मा[३१] विष्णु देवी एते त्रयोऽपि देवा भ्रान्ताः ॥९॥ आत्मनो देवस्य न प्राप्त स्थानस्थितिः ॥१०॥ असङ्ख्यानवतारान्न ब्रह्मा जानाति ॥११॥ विष्णोरपि[३२] कोटिशोऽवताराः प्रलयं गताः ॥१२॥ गङ्गारजःकणसमसङ्ख्याका इन्द्रस्यावतारा जाताः ॥१३॥

---

२८. ईश्वरोवाच । હસ્તપ્રત બ

२९. આ વાક્યમાં બે વખત પ્રયુક્ત देवि શબ્દ અશુદ્ધ છે. બન્ને હસ્તપ્રતોમાં આ અશુદ્ધિ સમાન રીતે છે. અહીં देवी એ શુદ્ધ શબ્દ છે.

३०. भगवत्या .... । હસ્તપ્રત બ

३१. બન્ને હસ્તપ્રતોમાં સમાન રીતે ઉપરનો પાઠ મળે છે. અહીં विष्णुर्देवी પાઠ શુદ્ધ જણાય છે.

३२. कोटशो .... । હસ્તપ્રત અ

३३. कल्पतामि .... । હસ્તપ્રત બ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यदा किञ्चिन्मात्रं ध्यानं महेश्वरस्य भवेत् ॥१४॥ स्वामिन् शङ्कर ब्रह्मा कथमवतारान्न जानाति ॥१५॥ कथं च विष्णोरवताराः प्रलयं गताः ॥१६॥ कथमिन्द्रस्यावताराः प्रलयं गताः रजःकणसमसङ्ख्याकाः ॥१७॥ कथं च किञ्चिद्ध्यानं महेश्वरस्य ॥१८॥ शास्त्रेण बोध्यते ॥१९॥ ब्रह्मा प्रलयं याति ॥२०॥ मायाराज विष्णोरपि प्रलयो भवेत् ॥२१॥ [३३] कल्पनाभिरिन्द्रोपि प्रलयं याति नित्यमिदमेव साहजिकं महेश्वरस्य ध्यानम् ॥२२॥ (११)

यदा कुपितो महादेवस्तेन च शङ्खाभिधानो दानव उत्पादितः ॥१॥ समुद्रस्य मध्यान्निःससार ॥२॥ ब्रह्मणो वेदानाहृतवान् ॥३॥ यदा च कुपिताः श्रीअलक्ष्यो निरञ्जनो देवः ॥४॥ सप्तमे पाताले शङ्खाभिधानो दानवः प्रवेशितः ॥५॥ सप्तमात् पातालादपि निःससार ॥६॥ स्नानं कुर्वन् धावनं च कुर्वन् ॥७॥ ब्रह्मा स्वकीयमाचारं विचार्य कृतवान् ॥८॥ शङ्खासुरो चतुरोऽपि वेदान् गृहीत्वा गतवान् सप्तमे पाताले ॥८॥ ब्रह्मा च मृगयन् विचारयन्नपि न कुत्रापि लब्धवान् वेदान् यतो मूर्छां प्राप्तः ॥११॥ आगच्छागच्छ भोः स्वामिन् विचारयावो गवेषयावश्चतुरो वेदान् ॥१२॥ गवेषयन् ब्रह्मा विष्णोः सन्निधौ गतवान् ॥१३॥ (१२)

ब्रह्मा विष्णुदेवीभ्यां सह गवेषयन् वेदान् ईश्वरस्य संनिधौ गतः ॥१॥ ईश्वरेण ब्रह्मा प्रणमन् तिरस्कृतः ॥२॥ पुनरागच्छन् तिरस्कृतः ॥३॥ स्वामिन् ब्रह्मन् जलेऽपि भवान् स्थले चापि भवान् ॥४॥ आकाशमण्डलेऽपि भवान् ॥५॥ स्थाने स्थाने भवत एव माया ॥६॥ कथं तेन भवता वेदा गमिताः ॥७॥ आगच्छागच्छ भो विष्णो जलेऽपि भवान् स्थलेऽपि भवान् ॥८॥ आकाशमण्डलेऽपि भवान् ॥९॥ स्थाने स्थाने भो विष्णो भवत एव माया ॥१०॥ [३४] भवान् विष्णो कथं प्रार्थनाय समागतः ॥११॥ आगच्छ देवि ॥ जलेऽपि भवती स्थलेऽपि भवती ॥१२॥ आकाशमण्डलेऽपि भवती ॥१३॥ स्थाने स्थानेऽपि भवत्या एव माया ॥१४॥ तया सहैताभ्यां देवाभ्यां कथं वेदा गमिताः ॥१५॥ ब्रह्मन् विष्णो देवि आत्मनात्मना लक्ष्यताम् ॥१६॥ तस्या उपरि तस्य चाधो यूयं तिष्ठत सा धरित्री स चाकाश इति सर्वमपि मम माया ॥१७॥ अहो स्वामिन् ब्रह्मन् अहं तु भिक्षाहारो योगी भिक्षां याचयित्वासि ॥१८॥ वेदानां शास्त्राणां च संनिधौ नयामि ॥१९॥ यद्यल्पमपि संनिधौ गच्छेयं यदा यूयं सत्यं वदत त्रयोऽपि ॥२०॥ सप्तवारं करोतु ब्रह्मा नासाग्रतो रेखाः ॥२१॥ दशावतारानङ्गीकरोतु विष्णुः ॥२२॥ [३५] सप्तावतारान् गृह्णातु देवी ॥२३॥ एवं चेत् करोमि यष्माकं वेदानां गवेषणम् ॥२४॥ (१३)

ब्रह्मणा कृता नासाग्रतः सप्तरेखाः ॥१॥ विष्णुना दशावतारा अङ्गीकृताः ॥२॥ स्वामिन् शङ्कर भवान् पश्यसि त्रिभुवनं तद्विस्तारे देहि मह्यं दशावतारानिति ॥३॥ देव्यापि चाङ्गीकृता [३६] सप्तावताराः ॥४॥ स्वामिन् शङ्कर न लब्धो मया तव पार इति ॥५॥ श्रोतव्यं विष्णो तवावतारनामानि श्रोतव्यानि ॥६॥ प्रथमतो मत्स्यरूपोऽवतारो द्वितीयः कूर्मरूपोऽवतारः तृतीयवराहरूपोऽवतारः ॥७॥ चतुर्थो नृसिंहरूपोऽवतारः

---

३४. सो भवान् ... । હસ્તપ્રત બ

३५. सप्तवारान् .... । હસ્તપ્રત બ

३६. सप्तवाराः .... । હસ્તપ્રત બ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

॥८॥ पञ्चमो वामनरूपोऽवतारः ॥९॥ षष्ठः परशुरामरूपोऽवतारः ॥१०॥ सप्तमो रामचन्द्ररूपोऽवतारः ॥११॥ अष्टमः कृष्णरुपोऽवतारः ॥१२॥ नवमो बुद्धरूपोऽवतारः ॥१३॥ श्रुत्वैता अङ्गीकृतावताराः ॥१४॥ श्रीमहादेवस्याग्रे ॥१५॥ आगच्छागच्छ भो विष्णो गृहाण मत्स्यरूपमवतारम् ॥१५॥ याहि सप्तमे पाताले शङ्खनामानं जहि दानवम् ॥१६॥ एवं कृत्वा नारायणेनानीता वेदाश्चत्वारास्ते च ब्रह्मणे दत्ताः ॥१७॥ यदारभ्य ब्रह्मणा नारायणो गुरुः कृतः ॥१८॥ (१४)

आगच्छागच्छ भोः स्वामिन् विष्णो याहि सप्तमे पाताले यत्र च जलबिम्बमयः कायः ॥१॥ यत्र श्रीअलक्ष्यनिरञ्जनस्य पादौ ॥२॥ यत्र[३७] श्रीशिवस्य पादुके पूजयित्वा समागम्यताम् ॥३॥ गरुडं वाहनमारुह्य विष्णुर्गतवान् सप्तमे पाताले ॥४॥ अग्रे वासुकिना सहस्रफणाभ्यः प्रेरिता विषमयी ज्वाला ॥५॥ यतश्च नारायणो मूर्धानं कम्पयमानो निपपात ॥६॥ रक्ष रक्ष भो वासुके पूजनाय देह्याज्ञां शिवपादयोः ॥७॥ स्वामिनो विष्णो सप्तमे पालाते शिवस्य चरणौ ॥८॥ ययो रक्षाकरा नवकुलजा नागास्तिष्ठन्ति ॥९॥ गच्छन्तमागच्छन्तं वा भक्षयन्ति ॥१०॥ तद्वृत्तान्तः केन गत्वा निरूप्यते ॥११॥ महादेवस्याग्रे अत्रैव पूर्णा तवैव सेवा ॥१२॥ भवतो वाक् मन्यते ईश्वरदेवेन ॥१३॥ यादृशो दृष्टस्तादृशं कथय सत्येन शब्देन महादेवेन सह स्थातव्यम् ॥१४॥ अर्धमार्गत एव परावृत्य नारायणः समागतः ॥१५॥ ईश्वरेण पृष्टः स्वामिन् विष्णो पूजां कृत्वागतः ॥१६॥ स्वामिन् शङ्कर सप्तमे पाताले शिवस्य पादौ यत्र रक्षाकरा नवकुलजा नागास्तिष्ठन्ति ॥१७॥ वासुकिना नागेनामृतकुम्भे स्नापितः ॥१८॥ स्वामिन् भवतः पादुकयोर्नान्तो मया प्राप्तः ॥१८॥ सत्यं वदसि हे नरपतीनां राजन् विषदग्धो दृश्यते भवतः कायः ॥१९॥ तुभ्यं दत्तं राज्यपदं सिंहासनम् ॥२०॥ उत्तमा भोगा त्रिभुवनराज्यपदे स्थानं सत्यं सत्यमिदं वदति शंभू राजा ॥२१॥ (१५)

आगच्छागच्छ भोः ब्रह्मन् भवान् गच्छतु ॥१॥[३८] एकविंशतिमे ब्रह्माण्डे जटामुकुटस्य पूजनं कृत्वा समागच्छतु ॥२॥ हंसवाहनामारुह्य ब्रह्मा गतवानेकविंशतिमे[३९] ब्रह्माण्डे ॥३॥ अग्रे गच्छताऽग्रे मिलिताः काकऋषिः केतकी गौः ॥४॥ स्वामिन् ब्रह्मन् क यासि ॥५॥ जटामुकुटपूजायै यामि ॥६॥ स्वामिन् ब्रह्मन् गच्छतामागच्छतामस्माकमसङ्ख्यानि युगानि व्यतीतानि तथापि न प्राप्तो जटामुकुटस्यान्तः ॥७॥ एवं च भवानपि कुतः प्राप्नुयात्तदन्तम् ॥८॥ असङ्ख्यवारं भवान्मृत्वा मृत्वा यास्यति तथापि न प्राप्स्यति जटामुकुटस्य पारम् ॥९॥ निवर्तस्व स्वामिन् याहि स्थाने ॥१०॥ वयं च भवतः साक्ष्यं करिष्यामः ॥११॥ (१६)

---

३७. शिवस्य .... । હસ્તપ્રત બ

३८. અહીં एकविंशतितमे પાઠ હોવાની સંભાવના છે. एकविंशति मे લેવાથી પણ અર્થ મળતો નથી.

३९. અહીં પણ एकविंशतितमे પાઠ હોવાની સંભાવના છે.

४०. હસ્તપ્રત બમાં વાક્ય ક્રમાંક ૧૭.૮ થી ૧૭.૧૧ એમ એકધારાં ચાર વાક્યો લુપ્ત થયેલ છે.

४१. स्नपयित्वा .... । હસ્તપ્રત અ (અહીં ૧૭.૧૨ અને ૧૭.૧૪ માં પણ હસ્તપ્રત અ स्नपयित्वा પાઠ આપે છે.)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ब्रह्मा चैवं श्रुत्वार्धादेवमार्गान्निवृत्तः ॥१॥ सर्वैश्चितैः मिलित्वा सत्यं मतं कृतं ॥२॥ ईश्वरोऽगच्छत् स्वामिन् ब्रह्मन् पूजयित्वागतोऽस्ति भवान् ॥३॥ ओमिति शङ्करपूजां कृत्वा समागतोऽस्मि ॥४॥ ब्रह्मन्नत्र किं साक्ष्यम् ॥५॥ साक्षिणोऽत्र कर्मणि काकऋषिः केतकी गौः ॥६॥ वद काकऋषे ब्रह्मा कृत्वा पूजां समागतः ॥७॥[40] ओमिति शङ्करस्वामिन् कृत्वा पूजां समागतः ॥८॥[41] स्नापयित्वा मार्जयित्वा पुष्पमाला निधायेत्यादिपूजां कृत्वा समागतः ॥९॥ वद केतकि पूजां कृत्वा समागतः ॥१०॥ ओमिति शङ्करस्वामिन् पूजां कृत्वा समागतः ॥११॥ स्नापयित्वा मार्जयित्वा पुष्पमालां निधायेत्येवंविधिना स्वामिन् पूजां कृत्वा समागतः ॥१२॥ वद गो पूजां कृत्वायं समागतः ॥१३॥ ओमिति स्वामिन् पूजां कृत्वा समागतः ॥ स्नापयित्वा मार्जयित्वा पुष्पमाला निधायेत्येवं स्वामिन्पूजां कृत्वा समागतः ॥१४॥ एवमग्रे त्वोमिति कथयन्तः पश्चान्नेति वदन्तोऽसत्यवादनेन पापं प्रावर्तयन् ॥१५॥ (१७)

ईश्वरेण महादेवेन ध्यानं कृत्वा ज्ञानेन चत्वारोऽप्यसत्यवादिनो दृष्टाः ॥१॥ असत्यवादेन चतुर्णामपि जातं पापं तेन तेभ्यः प्रवर्तित ईश्वरेण महादेवेन शापः ॥२॥ याहि ब्रह्मन् भव जन्तुघाती कपिलाया गोश्छेदय शिरः ॥३॥ हट्टपथे मांसविक्रयणं कुरु ॥४॥ पापोपचयेन यवनत्वमेव प्राप्तम् ॥५॥ याहि काकऋषे कश्मलं भक्ष ॥६॥ याहि केतकि निर्गन्धा भव ॥७॥ याहि देवि केशरिनाम्नो राज्ञो गृहे गृहाणावतारम् ॥८॥ अहं च कार्यरूपी विसर्जयामि ॥९॥ नारायणं भर्तारं कुरु कर्म सर्वम् ॥१०॥ इलहविलहईमनषुदइत्यादि वृषमारुह्य बीजं निवप॥११॥ अर्यवर्णचन्द्रकोल इत्यादि सार्वभौमस्य गृहे रत्तो यवनसंप्रदायप्रवर्तको जातः ॥१२॥ राज्ञो मङ्केश्वरस्य हृदयं चकम्पे ॥१३॥ प्रधानवर्ग एकीकृतः ॥१४॥ (१८)

नवशतसङ्ख्याका वरदा यवनेषु निरुपिता एवं यवनेन यवनेतराणां कलहो जातः ॥१॥ यवनेतराः पराजिता यवना विजयं प्राप्ताः ॥२॥ पश्चिमायां दिशि यवनता स्थापिता ॥३॥ आकाशस्थितेन वृद्धेन जिन्दाभिधानेन यवनधर्मत्वेनेन्द्रियत्वक् छेदिता ॥४॥ अशीतिसहस्राधिकलक्षसङ्ख्याका यवनगुरवो यवनसम्प्रदायप्रवर्तका आहूतिं कुर्वन्ति सुरसरिधारा-मिव तथापि ते न जानन्ति तव रहस्यम् ॥५॥ एकदा यस्य यो विभाग इति ॥६॥ वर्षीयान् जिन्दाभिधानो यः समागतस्तेन षाजषिदर इत्यभिधानो वादितः ॥७॥ चित्तसमानो यः ॥८॥ तेन श्वासकदम्बो वशीकृतः ॥९॥ गोरसः प्रवर्तितः ॥१०॥ पञ्च रत्नानि मुखे दर्शितानि ॥११॥ तत्र च रत्नरावलहाजीति नाम वादितम् ॥१२॥ अथर्ववेदः पार्वत्या छादितः ॥१३॥ रत्नानां सुवर्णमुद्राणां च राशिर्निरूपितः ॥१४॥ प्रेमातिप्रियभक्षणं श्वासः स्त्री अतिप्रिया ॥१५॥ पुत्रश्च वर्षीयान्नादमाभिधानः श्रीमहंमदरसूलनाम्नो जातः ॥१६॥ एकं यवनमन्दिरं दशद्वारं परीक्षितम् ॥१७॥ तत्रालक्ष्यस्य पुंसो वासः ॥१८॥ (१९)

तदर्थं दशांशोनं[42] वर्षयसः ॥१॥ पुरुषस्याङ्गीकृतम् ॥२॥ दशसु स्त्रीषु एका स्त्री दशसु पुत्रेष्वेकः पुत्रः ॥३॥ दशसु पुत्रीष्वेका पुत्री ॥४॥ दशसु ग्रामेष्वेको ग्रामो दशसु हस्तिष्वेको हस्ती ॥५॥ दशस्वश्वेष्वेकोऽश्वः

४२. वर्षयः .... । હસ્તપ્રત ૫

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

॥६॥ दशसु गोष्वेका गौः ॥७॥ दशसु वृषेष्वेको वृषः ॥८॥ दशसु मुद्राधानीष्वेका मुद्राधानी ॥९॥ दशसु गौणीष्वेका गौणी ॥१०॥ दशसु मुद्रास्वेका मुद्रा ॥११॥ दशसु रौप्यमुद्रास्वेका रौप्यमुद्रा ॥१२॥ दशसु ताम्रमुद्रायुगलेष्वेकं ताम्रमुद्रायुगलम् ॥१३॥ दशसु ताम्रमुद्रास्वेका ताम्रमुद्रा ॥१४॥ दशसु वस्त्रेष्वेकं वस्त्रम् ॥१५॥ दशसु सुवर्णादिखण्डेष्वेकं तत् खण्डम् ॥१६॥ दशसु दामसु एकं दाम ॥१७॥ दशसु कवलेष्वेकं कवलम् ॥१८॥ योगिनां यतिनां नादः ॥१९॥ संन्यासिनां शङ्खः ॥२०॥ वैष्णवानां दर्शनम् ॥२१॥ ब्राह्मणानां वेदाः ॥२२॥ जङ्गमानां रूपम् ॥२३॥ जैनानां बौद्धानां दर्शनम् ॥२४॥[४३] यवनभिक्षुकाणां स्वच्छानां चाहूतिः ॥२६॥ (२०)

एतानि दर्शनानि शृण्वन्तु ॥१॥ यवनो यदि भक्षणं करोति तदा शूकरं भक्षेत् ॥२॥ यवनेतराः शूणवन्तु यदि भक्षणं करोति यः स चापि गोमांसभक्षणं कुर्यात् ॥३॥ प्रथमतः पूरणीयं पात्रम् ॥४॥ पश्चाच्च पुरणीयं कांस्यपात्रम् ॥५॥ कांस्यपात्रस्य गुरुस्तषांण इति पात्रस्य गुरुर्गोरक्षनाथो लक्ष्यः ॥६॥ निरञ्जनपुराणमिदं स्थितं पूर्णम् ॥७॥ तच्छृण्वतां धर्मः सान्निध्यमायाति ॥८॥ पापं याति दूरम् ॥९॥ शृण्वतां पापं नश्यति वक्ता मोक्षं लभत इति श्रीनिरञ्जनपुराणनामको ग्रन्थविरचितो गोरक्षनाथेन तं च पठन्तः शृण्वन्तः पापेन न लिप्यन्ते न चापि पुण्येन ह्रियन्ते ॥१०॥ श्रीनृणां मोक्षदायकः ॥११॥ योगारम्भे सिद्धिदः ॥१२॥ गमागमौ निवर्तयति ॥११॥ एष ग्रन्थो ज्ञानदीपप्रबोधः ॥१२॥ योगशास्त्रं संपूर्णम् ॥१३॥ शम्भुनाथपादुकाभ्यां नमस्ते ॥१४॥ इति श्रीनिरञ्जनपुराणं[४४] समाप्तम् ॥१५॥[४५] श्रीः ॥१६॥ (२१)

-----

४३. यवनक्षिभिक्षुणां .... । હસ્તપ્રત અ માં પ્રાપ્ત પાઠમાં લેખનદોષ જણાય છે.

४४. समाप्ताः ॥ હસ્તપ્રત બ

४५. હસ્તપ્રત બ માં આ નિર્દેશ મળતો નથી.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

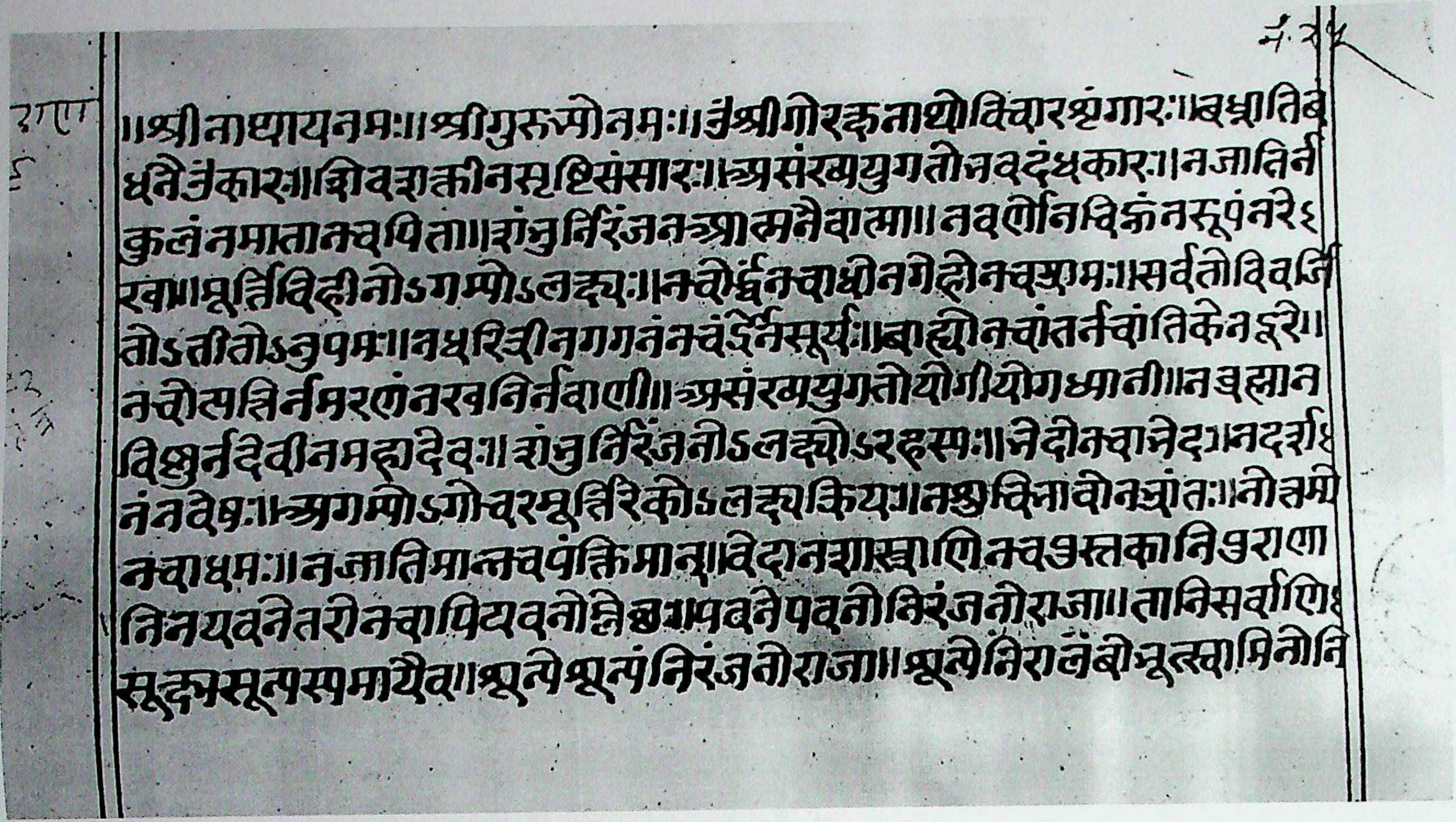
॥श्री नाथाय नमः॥ श्री गुरुभ्यो नमः॥ ॐ श्री गोरक्षनाथो विचारशृंगारः॥ ब्रह्मातिबं
धनिं ॐकारः॥ शिवशक्ती न सृष्टिसंसारः॥ असंख्ययुगतो जवदंधकारः॥ न जातिर्न
कुलं न माता न च पिता॥ शंभुर्निरंजन आत्मा मनैवात्मा॥ न वर्णो न चिह्नं न रूपं न रे
खा॥ मूर्तिविहीनोऽगम्योऽलक्ष्यः॥ न चोर्ध्वं न चाधो न मध्यो न चपुमः॥ सर्वतो विवर्जि
तोऽतीतोऽनुपमः॥ न धरित्री न गगनं न चंद्रो न सूर्यः॥ बाह्यो न चांतर्न चांतिके न दूरे॥
न चोत्पत्तिर्न मरणं न रव निर्निर्वाणी॥ असंख्ययुगतो योगी योगध्यानी॥ न ब्रह्मा न
विष्णुर्न देवी न महादेवः॥ शंभुर्निरंजनोऽलक्ष्योऽरहस्यः॥ न वेदो न चानेदः॥ न दर्शे
नं न वेषः॥ अगम्योऽगोचरमूर्तिरिकोऽलक्ष्य क्रिया नष्ट चिंतावो न ज्ञांतः॥ नो तमो
न चाधमः॥ न जातिमान्न च पंक्तिमान्॥ वेदा न शास्त्राणि न च उस्तकानि उराणा
नि न यवने तरी न चापि यवनो ह्नि आपबने पवनो निरंजनो राजा॥ तानि सर्वाणि
सूक्ष्मसूक्ष्मसमायैव॥ शून्ये शून्यं निरंजनो राजा॥ शून्ये निरालंबी भूत्वा मिनोति

निरञ्जनपुराण, પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, હસ્તપ્રત - ક્રમાંક : ૩૦૧૧૫

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

શ્રીગરીબગિરિ કૃત યોગપાવડી : પરિચય

જે. કે. ઉમરેઠિયા*

પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, મહારાજા સયાજીરાવ વિશ્વવિદ્યાલય, વડોદરાના હસ્તપ્રત ભંડારમાં યોગવિષયક દોઢસોથી વધારે હસ્તપ્રતો સચવાયેલી છે. જુદી જુદી ભાષામાં લખાયેલી આ હસ્તપ્રતો મોટે ભાગે કાગળ પર લખાયેલી છે. આ યોગવિષયક હસ્તપ્રતોમાં 'યોગપાવડી' નામની કૃતિ હસ્તપ્રત ભંડારમાં યોગ્ય રીતે સચવાયેલી છે. થોડા ફેરફાર એક જ શીર્ષકથી આ વિષયની ચાર હસ્તપ્રતો (ક્રમાંક ૧૭૯૩૪, ૨૩૩૬૪, ૨૦૦૦૬, ૨૦૦૦૭) પ્રાચ્યવિદ્યામંદિરના કેટલોગમાં નોંધાયેલી છે. અહીં એમાંથી 'યોગપાવડી' ક્રમાંક ૨૩૩૬૪ નો પાઠ આપી પરિચય તેમજ પાઠાંતર નોંધ્યા છે.[૧] પાઠાંતર નોંધવા માટે યોગપાવડી (ટબા સહિત) ક્ર. ૨૦૦૦૬ ને નજર સમક્ષ રાખી છે.[૨]

'યોગપાવડી' હસ્તપ્રતમાં કુલ ચાર પત્રો છે. એની ગ્રન્થસંખ્યા ૧૦૦ છે. કર્તાનું નામ ગરીબગિરિ છે. કૃતિનો આરંભ વાચકને આકર્ષિત કરે એવો અલંકૃત છતાં સરળ છે. કૃતિના લિપિકારનું નામ કમલરંગ છે અને એ સુશ્રાવિકાના વાચનાર્થે લખાઈ છે. પુષ્પિકામાં રચનાસંવત ૧૭૦૮ જોવા મળે છે. એ રીતે આ કૃતિ મહત્ત્વની વિગતો પૂરી પાડે છે. હસ્તપ્રતની લિપિ દેવનાગરી અને ભાષા ગુજરાતી છે. એનું પરિમાણ ૨૫.૫ x ૧૧ સે.મી. છે. આ હસ્તપ્રત પાટણથી બાબુભાઈ પી. દવે દ્વારા વર્ષ ૧૯૬૪માં પ્રાપ્ત થઈ છે. ક્યારે ? એ રીતે પ્રાચ્યવિદ્યામંદિરને મળેલી આ હસ્તપ્રતનો મૂળ સ્રોત પણ જાણવા મળે છે. કૃતિનો આરંભ-અંત જોવાથી વિગતો વધુ સ્પષ્ટ થશે :

આરંભ : ક્રોધ લોભ દૂરિ પરિહરવા, પરિહરિ મમતા માયા ।
ગોરખનાથ ઇસી ઉપદેસી, કણયારીયા બુઝવાયા ।। ૧।।

અંત : યતિ યોગી કાપડી સન્યાસી ઈણિઇ રાહે જે જાવઈ
ગુરુ કઉ દાસ ગરીબગિરિ છઈ, સોઈ પરમપદ પાવઈ ।। ૬૧।।

'સ્વાધ્યાય' - પુ. ૫૯, વર્ષ ૨૦૨૨, પૃ. ૨૦૧-૨૦૯. ISSN 2250-0391

* પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, મ. સ. વિશ્વવિદ્યાલય, વડોદરા, M: 09427849843

૧. *An Alphabetical List of Manuscripts in the Oriental Institute,* Vadodara, Vol.4, Pub. Oriental Institute, M. S. University, Vadodara, Com. & Edited : Usha Brahamachari, Sweta Prajapati, Frist Edition, 2008, p. 464

૨. એજન

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ઈતિ યોગ ૫(પા)વડી ॥
લિખિતા કમલરંગ મુનિના ।
સુશ્રાવિકા સુખમાદે વાચનાવ્યે (થૅ) ઈતિ ।
સં. ૧૭૦૮ કાર્ત્તિ વદિ ૧૦ સોમવાસરે ॥ છ ।

કૃતિના અંતમાં યોગી, યતિ, સંન્યાસીને જે અનુસરે તે પરમપદને પામે છે એવો ઉપદેશ આપ્યો છે.

આ કૃતિનો વિષય યોગ છે. કૃતિમાં યોગ કરનાર વ્યક્તિની ઓળખ અને એને માટે જરૂરી સૂચનો લક્ષણોનો વિગતે પરિચય કરાવ્યો છે. યોગ કરનાર વ્યક્તિનાં વાણી-વર્તન ઉપરાંત આહાર-વિહાર બાબતે સલાહ આપવામાં આવી છે. પ્રથમ પંક્તિમાં જ ક્રોધ અને લોભનો ત્યાગ કરવાની વાત કરી છે. શરૂઆતથી અંત સુધી ઉપદેશની ભાષામાં વાત થઈ છે. રસ્તામાં ચાલતાં ચાલતાં જીવજંતુ પર પગ ન મુકાઈ જાય અને એકવસ્ત્રથી ચલાવી લેવું તેમજ ચિત્ત એકાગ્ર રાખવું. પૂજા કરતા હોય તો એનો અહંકાર ન રાખવો ને કોઈ અપમાન કરે તો એના પ્રત્યે ખેદ ન રાખવો આવી સલાહ આપવામાં આવી છે. યોગ કરનારે મીઠા-મધુરા આહાર ન લેવા, ખારા-ખાટા-તીખા સ્વાદનો ત્યાગ કરવો વગેરે. યોગી માટે કઠિન નિયમો બતાવ્યા છે જેમ કે સૂતી વખતે વસ્ત્ર ન ઓઢવું ને નીચે કાંઈ પાથરવું નહીં. લીલા તથા સૂકા વનસ્પતિ ચૂંટવાની મનાઈ કરી છે ને વધારે પાણી પીવાની પણ મનાઈ છે. વધુ માત્રામાં આહાર ન લેવો, હાથપગ ધોવા નહીં ને સ્ત્રીને માતા સમાન ગણવી, છાની વાત ન કરવી, માર્ગમાં ચાલતાં વાત ન કરવી, પીપળ તથા વડની નીચે રહેવું નહીં કેમ કે ત્યાં રહેવાથી એનાં બીજ પગ નીચે દબાય ને એમાં રહેલા જીવ કચડાય. યોગીને કહેવામાં આવ્યું છે કે ઇન્દ્રિયોનો વિશ્વાસ ન કરીશ. જો યોગ વખતે મનને વશમાં નહીં કરે તો પછતાવાનો વારો આવશે. ગરુડાસન, પદમાસન અને દંડાસને બેસી ધ્યાન ધરવું જોઈએ. શાસ્ત્રથી યોગાભ્યાસ જાણવો જોઈએ. કપટ કરવું નહીં. એનાથી દુર્ગતિ પામીએ. બીજાનાં સુખ દુખ જોવાં નહીં ને હર્ષ શોક કરવો નહીં. યોગીએ લૂખો-સૂખો આહાર કરી માઠો આહાર લેવો નહીં, પેટ ભરી ખાવું નહીં, સ્નાન-દાન કરવા, મનનો મેલ, કપટ, દ્રોહનો ત્યાગ કરવા, જીવની રક્ષા કરવી, કરણી-કથની એક રાખવી, રાત્રે જમવું નહીં, દિવસે નિદ્રા ન કરવી, પગ લાંબા કરીને સૂવું નહીં, અઘોર નિદ્રા ન કરવી, અજવાળામાં જ ચાલવું, ફરતા રહેવું એ જ ગુણનું કારણ છે.

આ યોગનાં લક્ષણ કોઈ સામાન્ય માણસ માટે નથી પણ યોગી, સંન્યાસી માટે છે એ સ્પષ્ટ થાય છે. નાત, જાત અને સ્ત્રીથી દૂર રહેવાની વાત પંક્તિ ૩૫ માં કરી છે એના પરથી આ સાબિત થાય છે. બીજાના ગુણ જોવા ને પોતાના અવગુણ જોવા, ગામની વસતીથી દૂર રહેવું, ટૂંકમાં પર્વત કે વનમાં એકાંત સ્થળે રહેવું. યોગીએ મંત્ર, તંત્ર તથા ઔષધ-વૈદક ન કરવા, ક્રોધ કરવો નહીં વગેરે.

કૃતિના પાછળના ભાગમાં શબ્દફેરે પુનરાવર્તનો આવે છે જેમકે સ્ત્રી તથા સોનામાં ચિત્ત રાખવું નહીં (પંક્તિ ૩૫,૬૪) આહાર અલ્પ, કહિણી-રહણી સરખી હોવી વગેરે.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

કૃતિની ભાષા ગુજરાતી તેમજ હિન્દી મિશ્રિત છે. કૃતિની ભાષા અર્થાત્ મૂળ જોડણી હસ્તપ્રત પ્રમાણે જ રાખી છે. કુલ ૬૯ કડીમાં લખાયેલી આ કૃતિમાં જોડણી બાબતે અશુદ્ધિ જોવા મળે છે. જેમ કે દૂરિ, પરિહરિ, ઉપદેસી, ધરિસિ, કરિ, સરિખી, પડાસિ વગેરે. આ બધામાં મોટે ભાગે અંત્ય ઈ હ્રસ્વ લખાયો છે અને સ્ત્રીલિંગવાચક હોઈ વર્તમાન ગુજરાતી ભાષા અને મધ્યકાલીન ગુજરાતી ભાષા વચ્ચે સ્પષ્ટ ભેદ દર્શાવે છે. જ્યાં જ્યાં ષ લખાયો છે ત્યાં ષ ની જગ્યાએ ખ લખ્યો છે. દા.ત. ખોરષનાથ = ગોરખનાથ. કૃતિમાં મારવાડી ભાષાના શબ્દોની છાંટ પણ વરતાય છે. જેમ કે ચલણા, રાખણા, રહણા, બોલણા વગેરે. કૃતિની ભાષા સમજાય તેવી સરળ છે. કૃતિની ૧૦ મી કડીમાં શબ્દો છેકેલા છે. કેટલાક શબ્દો વંચાય છે પરંતુ કેટલાક ઉકલ્યા નથી. ત્યાં ખાલી જગ્યા છોડી દીધી છે. જ્યાં જરૂર જણાઈ છે ત્યાં છગડિયો કૌંસ કરી વધારાનો લાગતો અક્ષર કૌંસમાં રાખ્યો છે. જ્યાં જ્યાં [ ] કૌંસ કર્યો છે ત્યાં સંભવિત અક્ષર ઉમેર્યો છે અને જ્યાં ( ) કૌંસ કર્યો છે ત્યાં ઘટતો અક્ષર /શબ્દ ઉમેર્યો છે.

અહીં અભ્યાસમાં લીધેલી કૃતિના મૂળપાઠમાં અને યોગપાવડી (ટબા સાથે ક્ર. ૨૦૦૦૬) ના પાઠમાં કેટલાક નજીવા ફેરફાર છે જેમ કે ઝબક = ધબક, મૂકિવા = મુકવા, ભણતી = ભણે તે, પૂરા = ઉપરા, રહણા = રખણા, અપમાન નઈ = અપ્પમાને, તઈ = સુ, તઈ = તિ, તરિવા = તરવા, ન કરણ = ન ધરણા, યોગ કદી નહુ કરણી = જોગી કૌઉ ન કરેણી, સંતાપ = તાપ, અવધૂતા = અવધૂતકા, અપરનિંદા = પરિનિંજઝા, જઉ હોવઈ વઈરાગી = જત હોવઈ વઈરાગી, હાસી = હાસુ, બલવત્તર =બલવંતી, પસતાસા = પછતાસી, વિધિ વિ રચી યોગમુદ્રા = ધરતી જોગહ મુદ્રા, યોગ = જોગ, સુખ દેખિ કરી = સુખ દુખ દેખી, આસણ મુદ્રા = આસન હુ કરણા, ન હુવઈ ઉખાણા = નો હિ અપમાણા, અભ્યંતરણ ધરણા = અસિંતર ધરણા, નિરવિષય તે ધ્યાન = અઈસા બ્રહ્મજ્ઞાન, લિયઉ તઉ = લેઈ વઈ, એકપત્ર કરિ ધીરજ = અઈસી કરણી મતિ ધરજે, યોગ રહ્યાજ્યુ લહિયઈ = જોગ અઈસા લહાઈ, કરણી ઘણી = કરણી કથણી, કપડા મોહ કદી નહુ કરણા = એક પિંડ માહો કદી ઉન ધરણા, ભાંતિ પાઉ કરી નઈ = પરિ એક રીતિ, રહઈ ઉદાસી = ભયા ઉદાસા, દિખલાવઈ = દેખલાવે, રાખઈ = રાખે, ઉપજાવઈ = ઉપજાવિ, હોવઈ = પાવે, એહૂ = અઈસા, ત્રાસઈ = વાસઈ, આપણ ઓછા ભાવઈ = આપિ ઉચ્છા ભાવિ, ચ્યારિ દિન રહણા = પંચ દિન રહિણા, કરિ આરામે = ગિરિ આરામિ, કરણા = ધરણા, આપણ કુ ધરણા = આવાગમણા, માહા એ ગાયસંગાઈ = રંગિ ગાવી, પવન = પાવઈ, ઢાકઈ = ચ્છિપાવી, પાવઈ = જાવઈ, ઉહાં નહુ = તિહા ન, ખાવઈ = ખાવિ, રહઈ = રહિવિ, નિદ્રા = નિહાર, દિન નઈ = ચિતિ, સંસાર સબ તિણિ જીતા = સુખ અન તો, ઉસ = અઈસો, ઉન્હકં = અનુકા, આસ = ગ્રાસ, તઉ = તબ, આપ = અલપ, તઉ વાહી = તે બહુ, નીયા = આયા, ઈસ્યા દિખાવી = અઈસા દેખલાયા, ભીતર = ભરથરી, બ્રહ્મજ્ઞાનિ ઈ = મગનાનિ, ઠઉડી રહાવઈ = ઠોરિ હિવિ, પાવઈ = પાવિ, જાવઈ = આવિ, દેખત માહિ ગૂમાવઈ = જોગ દેખતા ગમાવે, રોટી લહઈ મીઠાઈ = ઉસ થૈ મિલૈ મીઠાઈ, ઈસ્યો = સોઈ, દોઝખ = દુર્ગતિ, સઈ ખુસઈ સો જોગી નાહીં = ધોસાધુસી સોઈ ન પઈસઈ

અહીં બે જુદા જુદા સમયની ભાષા સમાન રીતે કયાં જુદી પડે છે એ સંશોધકો માટે અભ્યાસનો વિષય બની રહે છે. જેમ કે લહિયઈ = લહાઈ, રાખઈ = રાખે, ખાવઈ = ખાવિ, રહઈ = રહિવિ, પાવઈ =

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

પાવિ વગેરે. આખી કૃતિ પદ્યમાં છે અને પ્રાસ બાબતે ઘણી કાળજી લેવાઈ છે જેમ કે ખેદં = વેદં, કરણી = ધરણી, ધૂતા = અવધૂતા, ધ્યાનં = બ્રહ્મજ્ઞાનં, મીઠાઈ = ઠકુરાઈ, ચલતા = ફિરતા, મિત્રા = જીતા, ચલણા = ફિરણા વગેરે. આખી કૃતિ યોગસાધક માટે સૂચનોથી ભરપૂર છે. યોગાભ્યાસી માટે ઉપદેશાત્મક ઢબે લખાયેલી આ કૃતિનો મૂળ પાઠ જોવાથી વધુ વિગતો જાણવા મળશે એ હેતુથી 'યોગપાવડી' કૃતિનો અસલ પાઠ આપ્યો છે :

યોગપાવડી

॥ ૬૦ા (ભલે મીંડું) શ્રી ગુરુભ્યો નમઃ ॥

ક્રોધ, લોભ દૂરિ પરિહરવા, પરિહરિ મમતા માયા ।
ગોરખનાથ ઇસી ઉપદેસી, કણયારીયા બુઝવાયા ।।૧।।

ઝબકન બોલણા, ધબક ન ચલણા, જોઈ મૂકિવા પાયા ।
દેસિ વિદેસિ ઈણિ પરિભમણા, ભણતી ગોરખરાયા ।।૨।।

કોપીન પૂરા વસ્ત્ર રાખણા, રહણા વનિ સમસાનિ ।
મુગતિ કાજિ જો યોગી હોસિ, તઉ રહણા ઈક ધ્યાનિ ।।૩।।

માનિંપૂતા મ ધરીસ માન, અપમાન નઈ નહી ખેદં ।
ગીતગાનિં તઈ કાન ન દેણા, મુગતિ મારગ એ વેદં ।।૪।।

મીઠા મધુરા આહાર ન લેણા, સબરસ તઈ પરિહરિવા ।
ઈંદ્રી પોષ કદી મત કરીજે, એ મારગ તુઝ તરિવા ।।૫।।

માટિ ઊપરિ પાઉ ન દેણા, યોગ કદી નહું કરણી ।
ગગન મંડલ ઊપરિ પાગુરણા, સેજ વિછાહી ધરણી ।।૬।।

નીલી સૂકી હરિ મત ખૂંટે (ચૂંટે) બહુ મત પીજે આપ।
બહુ અપરાધ કર્યાંથી પુતા, મન મ ધરિસિ સંતાપ ।।૭।।

અમરી તણીથી વ મત તાકે, પર ન રોધ કરિ પૂતા ।
અજરામર હોણઈકી આસા, તઉ મારગ એ અવધૂતા ।।૮।।

અપરી નિંદા તું મ કરિસિ બાલા, મ કરીસ આપવખાણં ।
ઇચ્છા રોધ કરે તું પૂતા, યોગ એહ પરિમાણં ।।૯।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ઉખાલી .... નહુ કરણા, ... ।
માઈસબ .... માય સરિખી, ચિંત રાખણી ઠાયં ।।૧૦।।

છાની વાત ન કરણી પૂતા, કિસીકે કાનું લાગી ।
વાટિ ચલતા વાત ન કરણી, જઉ હોવઈ વઈરાગી ।।૧૧।।

કથા કલોલ બાલ પરિહરિજે, હાસી મ કરીસ બાપા ।
યોગ લેઈ જઈ તું એ કરિસિ, તઉ આપ વિગોવસિ આપા ।।૧૨।।

પીપલ વડ હેઠલિ નહુ જાણા, ન {ન} કરણા ઉહાં વાસા ।
ઉસકે બીજ ચંપાયઈ પૂતા, સવિહું સરિખી આસા ।।૧૩।।

દેખિ યોગી ઇંદ્રી બલવત્તર, તુઝકું નરગિ પડાસિ ।
યોગ લેઈ નંઈ મન ન નહુ રંધસિ, તઉ પીછઈ પછતાસી ।।૧૪।।

પૂતા પારબતી આસણિ રહણા, ગરુડાસણિ ધરિ ધ્યાન ।
પદ્માસણ દંડાસણ કરણા, અઈસા બ્રહ્મજ્ઞાનં ।।૧૫।।

વીરાસણ ભદ્રાસણ રહણા, વિધિવિ રચી યોગમુદ્રા ।
લેઈ લાઈ તાલી ઉપજાવી, પૂત પરિહરિવિ નિદ્રા ।।૧૬।।

જઉં દંભ કરેસિ તઉ હી મરસી, દંભથી દુર (ગ) તિ હોઈ ।
એક જ પિંડ પોસેવા કારણિ, કાંહો યોગ વિગોવઈ ।।૧૭।।

પૂત પિયારે સુખ દેખિ કરિ, મ {મ} મૂંકિસિઉં યોગં ।
ધ્યાંન ધારણા આસણ મુદ્રા, દેસિઈ વંછિત ભોગં ।।૧૮।।

દેખિ પૂત દિનકરકી કરણી, ઊગત અરુ આથમીયા ।
યોગ લેઈ કુછુ સાધન ન કિયા, તઉ આ લિઈ ભવ ગમિઆ ।।૧૯।।

પરબ મહોચ્છવ આસન કરણી, તહુ ખાણી મીઠાઈ ।
ઉસથી મન વાંકડલા હોસી, જાસી યોગ ઠકુરાઈ ।।૨૦।।

અરસ વિરસ નઈ અરુ, કસમલકસ, પેટ ભરી નહુ ખાણા।
દીઉ ભાડા કાયા કે તાઈ, જઉ ન હુવઈ ઊખાણા ।।૨૧।।

અમરી બજરી રોધ ન કીતા, પવન ઈ પિંડ નહુ ધોવઈ ।
જિહ્વા ઈંદ્રી વસિ નહુ કીની, તઉ ક્યું અજરામર હોવઈ ।।૨૨।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

સ્નાન દાન તઈ એ હુઈ કરણા, ગ્યાન ધ્યાન મનિ ધરણા ।
અઈસા યોગ ધરે તું યોગી, જ્યું ન હુવઈ આવાગમણા ।।૨૩।।

મન મલ છાંડે સોઈ સમા(નો)નં, જીવ રાખઈ સોઈ દાનં ।
જ્ઞાન તત્ત્વ અભ્યંતર ધરણા, નિર વિષય તે ધ્યાનં ।।૨૪।।

વઈરાગઈ તઈ યોગ બિયઉ તઉ, એક પત્ર કરિ ધરિજે ।
માંકડ ફૂકડ સબહિ યોગિની, પહિલું એ પરિહરિજે ।।૨૫।।

બ્રહ્મજ્ઞાન પૂત નિતકા પઢણા, યોગ રહ્યાજ્યું લહિયઈ ।
ન(ભ)ગવત ગીતા શ્રવણ સુણિયઈ, ગુરુકે બોલું રહિયઈ ।।૨૬।।

કરણી કથણી જબ એક હોસી, તબ પાંમિસિ કઈલાસ।
કરણી કથણી જુદી પડિસી, એ તઉ યોગ વિણાસં ।।૨૭।।

જોગી હોઈ સુ રાતિ ન ખાવઈ, દીસઈ નીંદ ન કરણી ।
કપડા મોહ કદી નહુ કરણા, યે યોગહ આચરણી ।।૨૮।।

મુરગીકી ભાંતિ પાઉ કરીનઈ, યોગી ઈણિ પરિ સેવિઈ ।
એકઈ આંખે નીંદ કરીનઈ, દૂજી કાલુક જોવઈ ।।૨૯।।

યતિ યોગીકા તબ હી ચલણા, જબ હોવઈ રાહ ચલતા ।
સૂરિજ કિરણે સબ કુછુ દીસઈ, યોગી ભલા સો ફિરતા ।।૩૦।।

પૂત કિસીકી આસ ન કરણી, આસ ધ[ર]ણી જગદીસા ।
આસા છોડી રહઈ ઉદાસી, સબ જગ ઉસકા દાસા ।।૩૧।।

દાસ [મ], દુની [આ] કું દુખ દિખલાવઈ, યોગી સોઈ ન રાખિઈ ।
બાલ બૂઢાકું સુખ ઉપજાવઈ, યોગી ભઈસા ભાખઈ ।।૩૨।।

કાહે પૂતા જટા વધારઈ, કાહે ભસ્મ લગાવઈ ।
તબ તાંઈ તુઝ મુગતિ ન હોવઈ, જાં સમભાવ ન આવઈ ।।૩૩।।

વયરી વલ્લભ જબ સમ લેખસિ, સોવન તિરણ સમાન ।
દીનાનાથઈ મુઝ દિખલાયા, એહૂ બ્રહ્મજ્ઞાનં ।।૩૪।।

સાપ પરઈ સમુદાયશ્રી ત્રાસઈ, ન કર પર સૌજન્યં ।
શાકિની પરિ સુંદરિથી અલગ તુ, યોગ એહૂ ધન ધન્નં ।।૩૫।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

યોગી હોઈ સુ જુગતિઈ બોલઈ પુઠિમંસ ન દુખાવઈ ।
આગિલેકે તુ બહુ ગુણ દેખે, આપણ ઓછા ભાવઈ ॥૩૬॥

વડેઈ તખતિ ચ્યારિ દિન રહણા, ઈક દિન રહણા ગામે ।
હજાર હસ્ત વસતીથી દૂરઈ, રહણા કરિ આરામે ॥૩૭॥

મંત ન તંત ન, ચીઠી બૂટી, અઘોર મંત નહુ જપણા ।
કિસહી ઊપરિ રોસ ન કરણા, જઉ આપણ કુ ઘરણા ॥૩૮॥

અતિ ઉત્તમ આશ્રય નહુ રહવા, જત્યુ રહિઈ મન મોહ પાવઈ ।
રામ રામા મારા એ રાય સંગાઈ, યોગ ઉન્હું થી જાવઈ ॥૩૯॥

ધુવિઅ ધુવિ ચય એય તિગ ભાવઈ, હેમજલ જિ પયવાવઈ ।
માયા મમતા દૂરિ જન્હુંથી સોઈ સિધ બોલાવઈ ॥૪૦॥

સોઈનાથ જિસી દિસિ રહિવઈ, દુખ સબ જાવઈ દૂરિઈ ।
મરગી, ડમર, દુકાલ ન હોવઈ, લોક સુખી ભરપૂરિઈ ॥૪૧॥

પૂત પઢ્યા સોઈ સબ ગુણ જાંણઈ, મૂરખ કિછૂ ન બૂઝઈ ।
આધઈ કુંઆ દરસ દેખાવઈ, લામા ભલા ન સૂઝઈ ॥૪૨॥

દોઈ ધરમ દુનિયા માંહિ પૂતા, આસી એક નિરાસી ।
સોઈ નિરાસી નિજ મન રંજઈ, નિતુકા પવન અભ્યાસી ॥૪૩॥

દૂજા ધરમ આસીકી કહાવઈ, અપણે ગુણ દિખલાવઈ ।
દૂજે કે સબહી ગુણ ઢાકઈ, સો વિરુઈ ગતિ પાવઈ ॥૪૪॥

સુંદરિ સોનઈ ચિત્ત ન દેવઈ, સરિખા આપ પિયારા ।
વસ્યા વીસમ્યા સબ દન રહિવઈ, સોઈ ગુરૂ હમારા ॥૪૫॥

મન્ન સરીખા મ(મં)ત્ર કોન મિલઈ, ચિત્ત સરીખા ચેલા ।
જ્ઞાન ગોઠિ સરિખા ગુરુ ન મિલઈ, તિણિ ગોરખ ફિર ઈકિલા ॥૪૬॥

જિણિ ઘરિ ઘરિ હેઈ કોઈ દુખ પાવઈ, યોગી ઉહાં નહુ રહિયઈ ।
પ્રાણે જાતે જૂઠ ન બોલે, સાચી હોઈ સો કહીયઈ ॥૪૭॥

ભાંગિ, અફીમ, અમલ નહુ ખાવઈ, રહઈ એકઈ ધ્યાનિઈ ।
આહાર નિદ્રા અલ્પ કરીનઇ, રમઇ ઓ બ્રહ્મજ્ઞાનિઈ ॥૪૮॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ચેલા સોઈ જો દ્દિનમઈ ચાલઈ, મનિ ચાલઈ સોઈ મિત્તા ।
કહણ રહણ સરિખા ગુરુ જેહા, સંસાર સબ તિણિ જીતા ।।૪૯।।

ઉસ યોગીકિ પાઉ પખાલું, આદેશ ઉન્હકું કરણા ।
આસ એક જઉ ઉન્હકું દીજઈ, તઉ સંસાર ન ફિરણા ।।૫૦।।

નરનારીકા સંગ તજ્યા તબ દૂજા ચિંત ન કીના ।
આપ સરકા (સરગકા) સુખ દેખ્યા, જાણઈ સંસાર સબ જીતા ।।૫૧।।

નરનારી દોઈ ભઈ પ્રીતિ જબ, કો કિણિ આણિ મિલાયા ।
જઈસા કરમ કિયા હઈ બાબૂ, તઈસા પિંડ વધાયા ।।૫૨।।

હલૂ હલૂ જબ વાધણ લાગા, ઉન્હકી પૂગી આસા ।
ઉંધઈ મસ્તકિ ઉહી દુખ સહિવઈ, ભોગવિઉ હી ગર્ભવાસા ।।૫૩।।

મોઈ ન બપન ભયણી, ભાઈ,આઈ મિલ્યા બહુ મેલા ।
આંપ આંપનઈ કામું લાગે, તું હી રહ્યા ઈકેલા ।।૫૪।।

ભલા કિયા તઉ વાહી સુખ પાવઈ, દુખ પાવઈ બહુ પાપઈ ।
ભોગવઈ કરણી આંપ આંપકી, કા ચાલઈ માય બાપઈ ।।૫૫।।

ઓહી ઠઉડ તુન્હ હીઉં પિયારા, જિસ હી ઠઉડથી જાયા ।
નાથ નિરંજન ઈસ્યા દિખાવી, ગોરખનાથ બુઝ્યા ।।૫૬।।

અઈસા દેખિ કઈ યોગી હોણા, રહણા એકિ ધ્યાનઈ ।
ભીતરિ ઉજઝાલ કિટકતણિ પરિ, રમણા બ્રહ્મજ્ઞાનિઈ ।।૫૭।।

યોગ મારગ દેખાવઉં બાબા, જે તુમ્હે જાંણઉ સાચા ।
તુમ્હેં ચલાવઉ ત્યુંહી ચાલું, એ મેરી બ્રહ્મ વાચા ।।૫૮।।

મનમોહન અરું ઇંદ્રી જિહ્વા એહ ચ્યારે ઠઉડિ રહાવઈ ।
પાક દલઈ પકડી નઈ રાખઈ, સોઈ પરમ પદ પાવઈ ।।૫૯।।

માસ, પાખ કોઈ મુંડ મુંડાવઈ, કોઈ વાલ ઉચાવઈ ।
તબ તાંઈ સિવપદ નહુ પાવઈ, જબ મન દુહું દિસિ ધાવઈ ।।૬૦।।

પઢ્યા પિંડ પરતીતિ ન આવઈ, આગલેકુ સમઝાવઈ ।
અઉરનકું વિકુંઠિ બોલાવઈ, આપ જમપુરી જાવઈ ।।૬૧।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ગાણા વાણા લોક બુઝાવણ, એ સબ પેટ ભરાઈ ।
એતા કરત મૂએ જે બપરે, તેણે મુગતિ ન પાઈ ।।૬૨।।

મુગતિ પાવઈ તઉ આંપે પાવઈ, કિસકી દીન જાવઈ ।
મહિર ખયર બહુત પઢ કીતઈ, પાવિઉ તુન્હથી પાવઈ ।।૬૩।।

યુગિ જો યોગ જુગતિ જાલવીયઈ, રેખ રોસથી જાવઈ ।
સુંદરિ સોના દેખી ભૂલઈ, યોગ દેખત માંહિ ગૂમાવઈ ।।૬૪।।

યોગ જુગતિ ગમાવી પૂતા, તું ક્યું સદ્‌ગતિ પાવઈ ।
મુંડ મુંડાઈ કિરિઆ ફોકટ, કો જાડા ધામ સહાવઈ ।।૬૫।।

જાડા ધામ સહઈ લોક પતી જણ, રોટી લહઈ મીઠાઈ ।
મૂરખ મનસ્યું ઈસ્યા ન બૂઝઈ, એ મુઝ દોઝગ દાઈ ।।૬૬।।

પ્યાર કરી કોઈ ભિખ્યા દેવઈ, યોગી છુ હેતિ લેવઈ ।
મૂસઈ ખુસઈ સો જોગી નાંહી, યોગી જંગલ સેવઈ ।।૬૭।।

દામ દુનીદે હજો નિઈ મેરી, સોઈ કિહાંકા યોગી ।
પેટકઈ તાંઈ મુંડ મુંડાવઈ, ફિરઈ જ્યું કૂતા રોગી ।।૬૮।।

યતિ યોગી કાપડી સન્યાસી, ઈણિઈ રાહિ જે જાવઈ ।
ગુરુ કઉ દાસ ગરીબગિરિ છઈ, સોઈ પરમપદ પાવઈ ।।૬૯।।

ઈતિ યોગ પ(પા)વડી ।। લિખિતા કમલરંગ મુનિના । સુશ્રાવિકા સુખમાદે વાચનાવ્યે (ર્થે) ઈતિ । સં. ૧૭૦૮ કાર્ત્તિ વદિ ૧૦ સોમવાસરે ।।છા

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

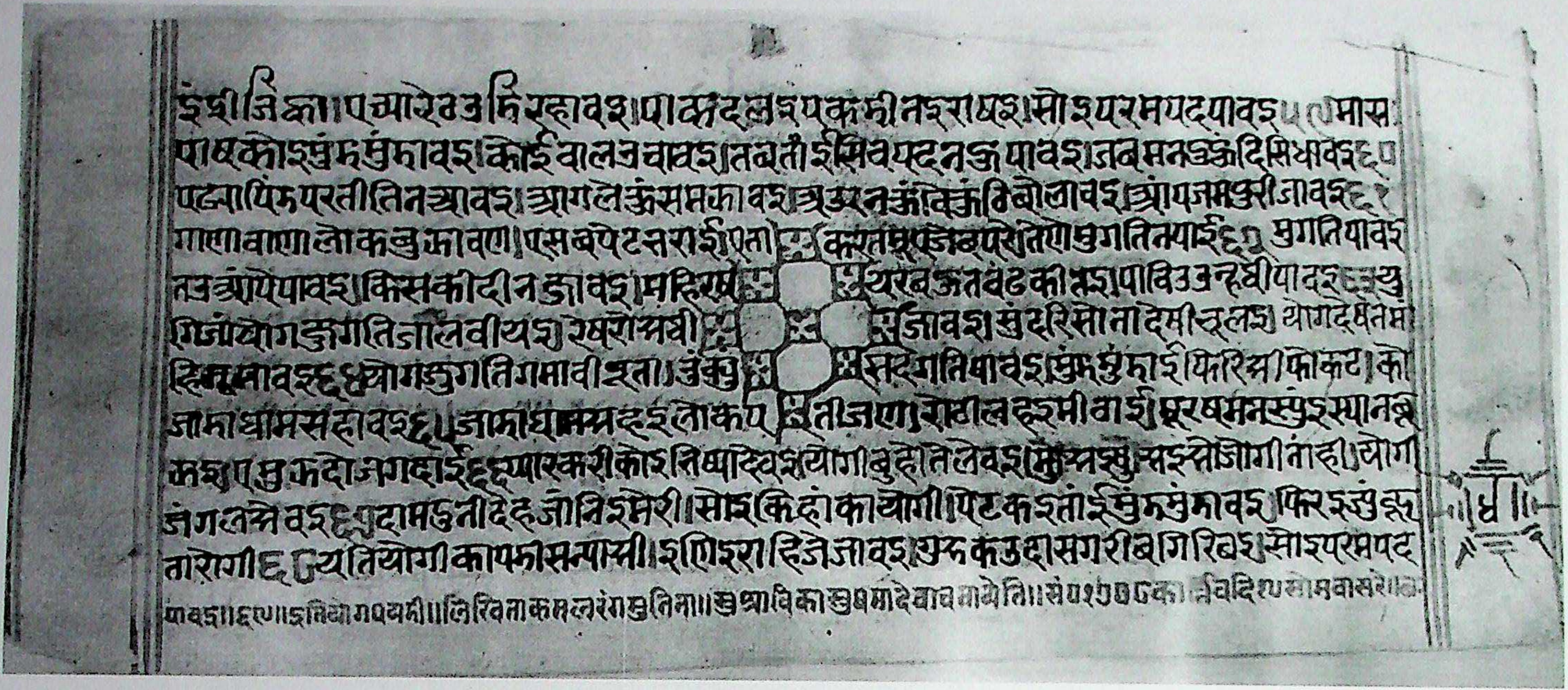

યોગપાવડી, પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, હસ્તપ્રત - ક્રમાંક : ૨૩૩૬૪

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शिवयोगसारसङ्ग्रहः- શિવયોગની એક અપ્રકાશિત કૃતિ

- શ્વેતા પ્રજાપતિ•

- હર્ષલ ભટ્ટ*

ભારતીય આસ્તિકદર્શનમાં યોગદર્શનનું સ્થાન અનેરું રહ્યું છે. પતંજલિને યોગદર્શનના પ્રવર્તક માનવામાં આવે છે, જેમણે યોગસૂત્રોની રચના કરી અને યોગને એક સ્વતંત્ર દર્શન સ્વરૂપે પ્રસ્તુત કર્યું. કિંવદંતીઓના આધારે તેમનો સમય ઈ.સ.પૂ. બીજી સદીનો મનાય છે. સમય જતાં યોગની ઘણી શાખાઓ વિસ્તરિત થઈ અને તેનો બહુ વ્યાપક પ્રભાવ ભારતીય પંથો, સંપ્રદાયો અને સાધકો પર રહ્યો. પતંજલિએ ચિત્તવૃત્તિઓનો નિરોધ[1] એ જ યોગ તેમ પ્રસ્તુત કરીને તેમણે યમ, નિયમ, આસનાદિ અષ્ટાંગયોગને પ્રસ્તુત કર્યો. આ અષ્ટાંગયોગમાં જ હઠયોગનાં મૂળ રહેલાં છે. હઠયોગની શાખા વિસ્તરિત થતાં સુધીમાં પતંજલિનો અષ્ટાંગયોગ જ "રાજયોગ" એવી સંજ્ઞાથી પ્રસિદ્ધ થયો. હઠયોગ એ હઠપૂર્વક યમ આદિ પાંચ અંગો દ્વારા શરીરને શુદ્ધ અને સ્વસ્થ કરવાની ક્રિયા છે, જ્યારે રાજયોગ એ ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિમાં ચિત્તને સ્થિર કરવાની ક્રિયા છે. માટે કહી શકાય કે, હઠયોગ એ રાજયોગ તરફ પહોચવાનું મુખ્ય સોપાન છે. યોગની આ બંને શાખાઓ ઉપરાંત શિવયોગનું પણ વર્તમાન સમયમાં પ્રચલન વધારે છે. શિવયોગમાં માત્ર અષ્ટાંગયોગનાં અંતિમ ત્રણ અંગો ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિનું પ્રચલન વધારે છે.

પ્રસ્તુત शिवयोगसारसङ्ग्रहः નામની કૃતિ પણ આ જ શિવયોગનાં કેટલાંક તત્ત્વોની ચર્ચા કરે છે. ઉપરાંત અહીં ધ્યાનનું વિસ્તૃત નિરૂપણ કરી યમાદિ આઠ અંગોની પણ ચર્ચા તો કરી જ છે. ન્યૂ કેટલોગસ કેટલોગોરોમના આધારે કુલ પાંચ હસ્તપ્રતો અલગ અલગ હસ્તપ્રતભંડારોમાં પ્રાપ્ય છે. આ શોધપત્રમાં વડોદરા સ્થિત પ્રાચ્યવિદ્યામંદિરમાં ઉપલબ્ધ એકમાત્ર હસ્તપ્રત ક્રમાંક ૧૩૬૧૯ના આધારે આ કૃતિને સંપાદિત કરવાનો પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો છે.

કર્તા પરિચય -

સંપૂર્ણ કૃતિમાં કર્તા વિષયક કોઈ માહિતી મળતી નથી. અન્ય પ્રાપ્ત થયેલી માહિતી પ્રમાણે સિદ્ધનાથ સંહિતા[2] માં આ શિવયોગસારસંગ્રહના કર્તા તરીકે યોગી શ્રીગોરક્ષનાથને બતાવવામાં આવ્યા

'સ્વાધ્યાય' - પુ. ૫૯, વર્ષ ૨૦૨૨, પૃ. ૨૧૧-૨૨૧. ISSN 2250-0391

• પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, મહારાજા સયાજીરાવ વિશ્વવિદ્યાલય, વડોદરા, M. 09898472669

* સંસ્કૃત, પાલિ અને પ્રાકૃત વિભાગ, કલા સંકાય, મહારાજા સયાજીરાવ વિશ્વવિદ્યાલય, M. 07874965787

૧. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । पातञ्जलयोग-दर्शनम् १.२

૨. सिद्धनाथसंहिता, विवेकसागर, नवलनाथ मठ, बिकानेर, १९६५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

છે. નવ સિદ્ધોમાંના એક ગોરક્ષનાથના સમય વિષે વિદ્વાનોમાં મતૈકય નથી. તેમના નામ પર સંસ્કૃત અને અન્ય ભાષાઓમાં અનેક કૃતિઓ મળી આવે છે. આર્ચાય હજારીપ્રસાદ દ્વિવેદીએ પોતાના પુસ્તક નાથ સંપ્રદાય[3] માં ગોરક્ષનાથના નામનો ઉલ્લેખ કરેલ છે. તેમણે ભિન્ન ભિન્ન સંસ્કૃતગ્રંથોનું આલોચનાત્મક અધ્યયન કરીને ૨૮ કૃતિઓની સૂચિ આપેલી છે. પરંતુ તેમાં શિવયોગસારસંગ્રહનો ઉલ્લેખ નથી. પ્રસ્તુત હસ્તપ્રતનો નંબર ૧૩૬૧૯ છે. સંસ્કૃત ભાષા અને દેવનાગરી લિપિમાં લખાયેલ આ હસ્તપ્રતનાં ૧૦ પૃષ્ઠ છે અને ૯૫ ગ્રંથસંખ્યા છે. કૃતિના અંતમાં इदं पुस्तकं गणपतिबावामक्तियुक्तं सङ्ग्रहेत् । क्षेत्र कर्णाळी रेवातीरे પરથી સૂચિત થાય છે કે, કોઈ ગણપતિ નામના વ્યક્તિએ ભકિતપૂર્વક કૃતિઓને સંગ્રહ કરવા લહિયા પાસે લખાવી છે. આ હસ્તપ્રત ગુજરાતમાં જ નર્મદા નદીના કિનારે કરનાળી ગામમાં લખાઈ છે.

કૃતિ પરિચય -

રાજયોગ અથવા તો પાતંજલ યોગમાં યમાદિ પાંચ ઉપરાંત ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ દ્વારા મોક્ષને પ્રાપ્ત કરવાની પદ્ધતિ વર્ણવી છે જયારે હઠયોગ એ ચિત્તવૃત્તિઓને સંસારમાંથી વિમુખ કરી અંતર્મુખી કરવાની સાધના પદ્ધતિ છે. જેમાં પ્રસુપ્ત કુંડલિની શક્તિને યમ, નિયમ, આસન, પ્રાણાયામ અને પ્રત્યાહારના માધ્યમથી નાડીમાર્ગ દ્વારા શરીરનાં વિવિધ ચક્રોમાં સ્થિર કરતાં-કરતાં મસ્તિષ્કમાં સહસ્રારચક્ર સુધી લઈ જવામાં આવે છે. સ્વાત્મારામ વિરચિત હઠપ્રદીપિકા આ પ્રકારની સાધનાનો મુખ્ય ગ્રંથ માનવામાં આવે છે. જ્યારે શિવયોગસારસંગ્રહ એ રાજયોગને એટલે કે પાતંજલયોગને જ પ્રસ્તુત કરે છે.

પ્રસ્તુત કૃતિની શરૂઆતમાં જ ૐકારમાં રહેલા અ, ઉ અને મ્ વર્ણને ક્રમશઃ વિષ્ણુ, બ્રહ્મા અને રુદ્રની સંજ્ઞા આપી બંને નેત્રની મધ્યમાં શુકલજ્યોતિ સ્વરૂપ બિંદુનું ધ્યાન કરવાની પદ્ધતિ બતાવી છે. એ જ્યોતિબિંદુના ક્રમશઃ સ્થૂલ, મધ્યમ અને પરાત્પર એમ ત્રણ પ્રકાર બતાવ્યા છે. મોક્ષમાર્ગના અભ્યાસીઓએ નિત્ય આ પ્રકારે ધ્યાન કરવું જોઈએ. ત્યારબાદ ક્રમશઃ સૂર્યત્રાટક અને શાંભવીમુદ્રાનો પ્રયોગ અને તેના ફાયદા બતાવ્યા છે. યોગની ચાર પ્રકારની ભૂમિકા ક્રમશઃ આરંભ, ઘટ, પરિચય તથા નિષ્પત્તિની વિસ્તૃત માહિતી આપેલી છે.

अथातः संप्रवक्ष्यामि चतस्रो भूमिकाः क्रमात् ।
आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयस्तथा ॥३६॥
निष्पत्तिः सर्वयोगेषु योगावस्था भवन्ति ताः ।
तासां विस्तरतो वक्ष्ये लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥३७॥

---

૩. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, नाथसंप्रदाय, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ત્યારબાદ ત્રણ પ્રકારના યોગ ક્રમશઃ સાંખ્યયોગ, તારકયોગ અને અમનસ્કયોગની ચર્ચા કરવામાં આવી છે. દૃષ્ટિને સ્થિર કરવાથી મન સ્થિર થાય છે. મન સ્થિર થવાથી શરીરમાંના પ્રાણવાયુને સ્થિર કરી શકાય છે. યોગદર્શનમાં લયયોગની પણ એક શાખા વિસ્તરિત થઈ છે. દાર્શનિક સિદ્ધાંતના આધારે જે રીતે બ્રહ્માંડના મધ્યમાં બ્રહ્મલોક આવેલ છે, તે જ રીતે મસ્તિષ્કના મધ્યમાં બ્રહ્મરંધ્ર આવેલ છે. ચિત્તને ત્યાં સ્થિર કરવાની ક્રિયાને લયયોગ કહે છે. પ્રસ્તુત કૃતિમાં આ લયયોગની સ્થિતિની પણ વાત કરવામાં આવી છે.

यस्य चित्तं निजे ध्येये मनसा मरुता सह।
लीनं भवति नादेन लययोगी स एव हि ॥४४॥

અર્થાત્ જેનું ચિત્ત કોઈ ધ્યેયને ધારણ કરીને મન દ્વારા પ્રાણવાયુ સાથે એકાકાર થઈ જાય છે તે નાદબ્રહ્મમાં લીન થઈ લયયોગ બની જાય છે. શ્લોક ક્રમાંક ૫૯ થી ૬૫ સુધીમાં યમાદિ અષ્ટાંગયોગની વ્યાખ્યા કરી છે. ત્યારબાદ અંતર્લક્ષ્ય, બહિર્લક્ષ્ય અને મધ્યલક્ષ્ય એમ ત્રણ પ્રકારનાં લક્ષ્યોની ચર્ચા કરવામાં આવી છે. તે મુજબ અંતર્લક્ષ્ય એટલે આંખો બંધ કરી બંને આંખોની મધ્યમાં નીલરંગની જ્યોતિનું ધ્યાન કરવું.

चक्षुर्मध्येऽथवा नीलज्योतिरूपं विलक्षयेत् ।
अन्तर्लक्षमिति प्रोक्तं बहिर्लक्ष्यमधो श्रृणु ॥७२॥

ત્યારબાદ અનેક આકારના બહિર્લક્ષ્ય અને મધ્યલક્ષ્યની ચર્ચા કરવામાં આવી છે. જ્યોતિસ્વરૂપ ૐકારનું ધ્યાન કરતાં કરતાં યોગીને જ્યારે તે જ્યોતિ શિવસ્વરૂપ ભાસે ત્યારે તે યોગી શાંતસ્વરૂપ વિષ્ણુના પરમપદને પામે છે તેવું વર્ણવવામાં આવ્યું છે. અંતમાં આ શિવયોગ જીવોની મુક્તિ માટે છે તેવી ફળશ્રુતિ આપવામાં આવી છે. કૃતિમાં છંદોનું વૈવિધ્ય જોવા મળે છે. સૌથી વધુ અનુષ્ટુપ ત્યારબાદ ત્રિષ્ટુપ્, વસંતતિલકા, પૃથ્વી અને અંતમાં આર્યા જેવા છંદોનો પ્રયોગ મળે છે.

હઠયોગ અને રાજયોગ જેવી અતિ ગહન યોગશાખાઓ કરતાં વર્તમાન સમયમાં શિવયોગની શાખા વધુ પ્રચલિત થઈ છે. તેમાં પણ પ્રસ્તુત કૃતિ શિવયોગને અત્યંત સરળ માધ્યમથી પ્રસ્તુત કરે છે. વર્તમાન સમયમાં જ્યારે શિવયોગ વધુ પ્રચલિત છે ત્યારે શિવયોગસારસંગ્રહ વાચકોને વધુ લાભદાયી થશે.

शिवयोगसारसङ्ग्रहः

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरुभ्यो नमः।
श्रीशिवयोगसारसङ्ग्रहो लिख्यते ।
ज्योतिर्ध्यानात्सदा योगी योगसिद्धिमवाप्नुयात् ।
सर्वभूतहृदिस्थोऽसौ ज्वलत्पावकसंनिभः ॥१॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अंतरात्मकसंज्ञेयं जगन्चेक्षर्न संशयः ।
यच्च तद्दृश्यते शुक्लं नेत्रयोः प्रातसंस्थितम् ॥२॥

अकारो वैष्णवं रूपं सात्विकं परिचक्षते ।
रक्तकृष्णतया तत्र दृश्यते नयनस्थितम्॥३॥

उकारो ब्रह्मणो रूपं राजसं तत्प्रचक्षते ।
यत्र तद्दृश्यते कृष्णमण्डलं नयनस्थितम् ॥४॥

मकारो रुद्ररूपं तु तामसं परिकीर्तितम् ।
सबिंदुरिति विज्ञेयो यत्रात्मा दृश्यते स्फुटम् ॥५॥

बिन्दुमध्ये स्थितं सूक्ष्मं सुस्थिरं ज्योतिरूपकम् ।
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिरद्वैतामृतलक्षकृत् ॥६॥

नेत्राश्रिता तु या छाया भ्रुवोर्मध्ये विनिर्गताम् ।
बिन्दुदेवस्य संस्थानं परात्परतरं महत् ॥।७॥

यस्य प्रसादात् क्रीडन्ते साधकाः सिद्धिपङ्कजे ।
षट्पदा इव पुष्पेषु सबिन्दुरिति संज्ञितः ॥८॥

धूम्राभ्रे पटलाकारो विस्तीर्णः सर्वतोमुखः ।
दृश्यते न दृश्यते चैव स्थूलबिन्दुरिति स्मृतः ॥९॥

दीप्ततामनभश्चैव खद्योतसदृशद्युतिः ।
हरिकुङ्कुमसंकाशो मध्यमो बिन्दुरुच्यते ॥१०॥

नेत्रमध्यं स्थितो दीप्तपूरितस्वैन तैजसा ।
शुद्धस्फटिकसंकाशो बिन्दुर्ज्ञेयः परात्परः ॥११॥

दशरूपं च बोद्धव्यं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं महत् ।
दशदेवमयो बिन्दुर्दशकर्मफलप्रदः ॥१२॥

सितरक्तं तथा कृष्णं नीलमेघसमप्रभम् ।
पीतरक्तं च पीतं च कपिलो धूम्र एव च ॥१३॥

दशमं स्फटिकाभं च फलमेषां पृथक् पृथक् ।
निर्वसीकरणे श्वेतं रक्तं भूतविनाशनम् ॥ १४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पिशाचोच्चाटने कृष्णं शिवेनोक्तं महात्मनः ।
सर्वग्रहविनाशाय नीलं वै परिकीर्तितम् ॥१५॥

मेघो व्याधिविनाशाय पीतरक्तं च मारणे ।
पीतमाकर्षणे प्रोक्तं स्तम्भने कपिलं स्मृतम् ॥१६॥

सर्वकर्मसुम्राभ्रं [च] स्फटिकाभं तु मोक्षदम् ।
इदं मुख्यं शिवाख्यस्य बिन्दुदेवस्य लक्षणम् ॥१७॥

बोद्धव्यं साधकप्राज्ञैर्मुनिभिर्मोक्षकांक्षिभिः ।
नेत्राश्रिता तु याछी? तस्या लक्ष्यं वदाम्यहम् ॥१८॥

येन विज्ञानमात्रेण मुच्यते जन्मबन्धनात् ।
मुखमावर्त्य तिष्ठन्तं लाक्षारुणसमप्रभम् ॥१९॥

आदित्योदयसंकाशं कौसुंभर स संनिभम् ।
निर्धूमाङ्गारभरितं पिण्डीकृतमिव स्थितम् ॥२०॥

अहन्यहनि यो देवो ह्यभ्यसेल्लक्षमुत्तमम् ।
द्वादशार्धेन मासेन व्याधिभिश्च न पीड्यते ॥२१॥

अनग्निज्वलनं चैव ब्रह्महत्याविशोधनम् ।
कुरुते नात्र सन्देहः शिवतेजोमयः पुमान् ॥२२॥

सतताभ्यासयोगेन षड्भिर्मासैर्महामते ।
जायते सर्वकामित्वमुदृश्य त्रिदशैरपि ॥२३॥

संवत्सरेण युक्तात्मा योगीन्द्रशिवभावितः ।
त्रैलोक्ये यत्प्रवर्तते प्रत्यक्षं तस्य जायते ॥२४॥

नीलमेघस्यान्तरंग तटिल्लेखाप्रकाशवान् ।
निवाराङ्कुरवत् सूक्ष्मो हेमदीपस्त्वणूपमः ॥२५॥

तस्यात्मनः शिरोग्रे च शक्तिः प्रणवरूपिणी
नादबिन्दुकलायुक्ता तारकारस्वरूपिणी ॥२६॥

विद्याच्छक्त्यूर्ध्वभागेन लिङ्गं कालाग्निसंनिभम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशो कोटिद्युतिभास्करम् ॥२७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कथितं तारकं ब्रह्म महालिङ्गं हि योगिभिः ।
मुद्रेयं शांभवी चित्रमन्तश्चक्षुर्बहिस्मृतम् ॥२८॥

प्रवक्ष्यन्ते मया सम्यक् राजयोगप्रसिद्धये ।
सिद्धासने समासीनो मुद्रां सन्धाय शांभवी ॥२९॥

श्रृणु या दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं सदा ।
अर्धावलोकनं यस्मात्पौर्णमासीं वदन्ति ताम् ॥३०॥

व्यापारोऽभिद्यते यत्र निमिषोन्मेषयोरपि ।
दृष्टिस्थिरायां सत्यां वै मनसस्थिरता भवेत् ॥३१॥

मनसस्थिरताप्राप्तौ पवनस्थिरतामयात् ।
पवनस्थिरता दृष्टिजाग्रत्वं भासयेत्सदा ॥३२॥

मनस्थिरत्वमापन्नं स्वप्नं नाशयति ध्रुवम् ।
पवने निश्चले तत्र सुषुप्तिक्षयमागता ॥३३॥

मरुदृष्टि मनोनाशास्तूर्यमुत्पादयन्ति हि ।
मरुदृष्टि मनोनाश राजयोगवदं लभेत् ॥३४॥

तुर्यं तु राजयोगः स्यात्तत्र का .... ने विद्यते ।
सिद्ध्यन्त्यवस्थास्त्वनया मुद्रया कालवंचनम् ॥३५॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि चतस्रो भूमिकाः क्रमात् ।
आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयस्तथा ॥३६॥

निष्पत्तिः सर्वयोगेषु योगावस्था भवन्ति ताः ।
तासां विस्तरतो वक्ष्ये लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥ ३७ ॥

योगी परित्यज्य समस्तवानां धृतासेनयः कुरुते मरुत्क्रियाम् ।
अतन्द्रितश्चान्तरकर्मसम्यक् आरम्भमेतत्प्रसितात्र सिद्ध्यै ॥३८॥

हंसेति जीवः खलु षट्शताधिकं सदा जपत्येकसहस्रविंशतः ।
जपस्य सर्वस्य च वै परित्यज्यारम्भभूमिं प्रवदन्ति सिद्धाः ॥ ३९ ॥

कायेषु कान्तिर्वदने प्रसादो नेत्रे च नैर्मल्यमतीव रूपम् ।
गन्धः शुभो मूत्रमलं च किञ्चिदारम्भूमिं प्रवदन्ति चिह्नम् ॥ ४० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आदौ मृगध्वनिर्मेघभैरीनादो विचित्रकणनस्त्वनाहतः ।
आनन्दलब्धिस्तु तथैव ब्रह्मग्रन्थैर्विभेदेन च शून्यसंभवः ॥४१॥

ततोऽमिनत्वैन मरुन्मनश्च विभेद्य बन्धद्वयमेति सुस्थिरः ।
अपूर्यकाये गगने सपूर्णं घटाख्यभूमिं प्रवदन्ति सिद्धाः ॥४२॥

मनो मरुत्प्राप्य विनैव घोषा तथैव कुम्भे न तु सर्वकार्य ।
अपूर्यसम्यक् प्रसभं प्रयाति तूर्यं पदं निश्चलभाववृत्तिः ॥४३॥

यस्य चित्तं निजे ध्येये मनसा मरुता सह ।
लीनं भवति नादेन लययोगी स एव हि ॥४४॥

भवेदष्टाङ्गमार्गेण मुद्राकरणबन्धनः ।
तथा केवलकुम्भेन हठयोगीवशानिः ॥४५॥

त्रिषु लक्ष्येषु यो ब्रह्म साक्षात्कारो भविष्यति ।
ज्ञानेनाथ मनोवृत्तिरहितो राजयोगवित् ॥४६॥

योगस्त्रिधा भवेत् सांख्यस्तारकश्चाऽमना इति ।
पञ्चविंशतितत्त्वानां ज्ञानं तत्सांख्यमुच्यते ॥४७॥

बहिर्मूढा परिज्ञानाद्योगस्तारक उच्यते ।
अन्तर्मुद्रापरिज्ञानादमनस्कं तदोच्यते ॥४८॥

शब्दद्वारे स्फुटे यत्र गन्धद्वारे तथैव च ।
समयोगे चतुष्पीठं शृङ्गाटकमिति स्मृतम् ॥४९॥

तस्य त्रिपुटनामापि त्रिवेणीसङ्गमस्थलम् ।
शृङ्गाटकं चतुष्पीठं नामानेकस्थ(ल)स्य तु ॥५०॥

अत एव महश्चर्यं चन्द्रसूर्याग्निसद्मनि ।
कुरुते बन्धना योगी प्रणवध्यानतो मनः ॥५१॥

गुरोर्यस्य प्रभावेन सिद्धे केवलकुम्भके ।
यदि किं करणैर्मुद्रा बन्धनैरेवमादिभिः ॥५२॥

निःशब्दे केवले कुम्भे प्राप्ते विष्णुपदेनिले ।
तदा खलु तयोरैक्यं जीवात्मा परमात्मनः ॥ ५३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मूलोद्धाय तज्जलबन्धविधिकानभ्यस्यतो योगिनो ।
वायोरुद्धयनै निरङ्कुशविधेस्तद्व्योम्नि संरोधनात् ।
भूतोनीन्द्रियवर्गतद्गुणमनोऽहं चित्रबुध्याद् यः ।
सर्वं लीनमुपैति वृत्तिरहितं सौख्यं तदाप्नोति [हि] ॥५४॥

यो पानसूर्यमथ वायुनिरोधनेन प्राणेन्दुनाशा सह तदूर्ध्वगतिं प्रकृत्या ।
योगेकसिद्धिमनिशं कुरुते समस्त-[बन्धेषु] गोपितमभू खलु मूलबन्धाः ॥५५॥

अधश्चोर्ध्वं च नाभेयोर्बन्धनं कुरुते बलात् ।
.......यनो.......संरुणो जरामृत्युविनाशकः ॥५६॥

कण्ठमाकुञ्च्य हृदये स्थापयेच्चुबुकं दृढम् ।
एष जालन्धरो बन्धो ऊर्ध्वामृतनिरोधकः ॥५७॥

बन्धत्रयेणासनबन्धनेन मन्त्रेण नादश्रवणेन योगी ।
भवेत्तथा केवलकुम्भकेन ध्यानेन चित्राष्टविधाविधानी ॥५८॥

आहारनिद्रेन्द्रियसर्वदेहव्यापारशीतातपसंज्ञिकानाम् ।
जयश्च शान्तिश्च भवद्यमाङ्गः शनैः शनैः साधयितुं सशक्यः ॥५९॥

भक्तिर्गुरो परमतत्त्वपदेनुरक्तिर्निःसङ्गता स्वयमुपागतलाभतुष्टिः ।
एकान्तवासपरतत्वमनप्रवृत्तिवैराग्यविभवो नियमः स एव ॥६०॥

स्वस्वरूपे सदा कालमासनं हि सुखासनम् ।
सर्ववस्तुन्युदासीनभावमासनमुच्यते ॥६१॥

बिन्दुबुदाधारे च कपूरकुम्भ सघट्टनिश्वासनयात्प्रयत्नात् ।
प्राणा स्थिरत्वं जगता च मिथ्या चित्तेति तत्प्राणनिरोधमाहुः ॥६२॥

चित्तस्यान्तरमुखेन प्रतिहृतबहुचैतन्यकल्लोलजाल-
प्राप्तेनास्यांस्य नानाविपुलमतिविकारस्य संव्यक्तिरेव्य ।
तत्र नानाविकारग्रस्वनमिति तथा कथ्यते योगसिद्धैः
प्रत्यानत्प्ररः स एवाविचलति सुमनसास्तत्पदं याति योगी ॥६३॥

स्फुरति मत्वत्वं (स्य?) चारेभ्यन्तरस्या
सततमतिसुमुत्थाधारणाभिश्चलेन ।
पुनरपि च वदामस्ते प्रकारं सुगोप्यं
चलनरहितचित्तं केवला धारणा स्यात् ॥६४॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निजानुभवशीलता निखिलतत्त्वसाम्यस्थितिः
स्मृतेरविचलस्थितिस्थिरतया निदिध्यासता ।
सदेकपरिभावना सहजबाह्यगा याचला
समाधीरिति कीर्तिता सकलनिर्विकल्पात्मिका ॥६५॥

मन्त्रेण लययोगेन हठयोगेन सर्वदा ।
यावद् ब्रह्म न पश्यन्ति तावत्कृश्यन्ति योगिनः ॥६६॥

नेत्रे [नि]मीलिते किञ्चित्किञ्चिदुन्मीलिते सति ।
यो मनश्चक्षुषा ब्रह्म पश्यन्तीति स योगिराट् ॥६७॥

शशिभास्करयोर्मध्ये (तारयोस्थितेजसोः?) ।
बिन्दुद्वयं च संयोज्य ब्रह्मतारकमभ्यसेत् ॥६८॥

मूलकं दादण्डलग्ना ब्रह्मनाडीशशीप्रभा ।
तस्या मध्ये तटित्कोटिनिभां तामूर्ध्वगामिनि ॥६९॥

मनसा लक्षयेन्मूर्ति सदृशी विसतंतुना ।
आब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं गामिनी सिद्धिदा स्मरेत् ॥७०॥

ललाटोर्ध्वं तथा लक्ष्यं योगी गोल्हाटमण्डले ।
विस्फुरतारकाकारं मनसा लक्षयेन्मुहुः ॥७१॥

चक्षुर्मध्येऽथवा नीलज्योतिरूपं विलक्षयेत् ।
अन्तर्लक्षमिति प्रोक्तं बहिर्लक्ष्यमधो शृणु ॥७२॥

नासाग्रदेशाच्च चतुःषष्टाष्टौ च तथा दशा ।
द्वादशाङ्गुलसंख्याकैः क्रमाल्लक्ष्यं विलोकयेत् ॥७३॥

बहिः स्मरन्नील सुधम्नरक्ततरङ्गपीताभसुतत्त्वपञ्चकम् ।
स्वभाविकेनैव विभा समानरूपेण हि यः पश्यति योगिराट् स्वयम् ॥७४॥

अथवा सम्मुखाकाशं स्थिरदृष्ट्या विलोकयेत् ।
ज्योतिर्मयूखा दृश्यन्ते योगिभिर्धीरमानसैः ॥७५॥

दृष्टेरग्रेप्य[भा]गे वा तप्तकाञ्चनसंनिभम् ।
भूमौ स लक्षयेत् दृष्टिः स्थिरा भवति योगिनः ॥७६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथवा शिरसश्चोर्ध्वं द्वादशाङ्गुलसंमिते ।
ज्योतिपुञ्ज निरालम्बं लक्षयेन्मुक्तिदं भवेत् ॥७७॥

यत्र यत्र स्थितो योगी तत्र तत्र विलोकयेत् ।
आकाशमेव यस्तस्य चित्तं भवति तादृशम् ॥७८॥

इत्यनेकविधाकारं बहिर्लक्ष्यमुदीरितम् ।
शृणुध्वं मध्यलक्ष्यं च कथितं पूर्वसूरिभिः ॥७९॥

श्वेतादिवर्णां भव मौक्तिचन्द्रं
ज्वलं नभो वा स्थलहीनमेकम् ।
सौदामिनीवह्निशिखेव बिम्बा-
न्विलक्षयेत् तत् खलु मध्यलक्ष्यम् ॥८०॥

निराकारं पश्यन्गुणरहितमाकाशमथवा
तमोरूपं तारानिभमिह पराकाशमथवा ।
महाकाशं कालानलनिभमथात्यं तरु चिरं
परं तत्त्वाकाशे रविशशिनिभं सूर्यरवमपि ॥८१॥

व्योमपञ्चकमत्तद्धि स बाह्याभ्यन्तरस्थितिः ।
यः पश्यति नरो लक्ष्यं स व्योमसदृशो भवेत् ॥८२॥

फलमेकं द्विधाचारो यथार्थं सांख्ययोगयोः ।
उपाधिरहितं साख्यं योगः सोपाधिकः स्वयम् ॥८३॥

नान्तस्थं नवभिव्याप्तमपरोक्षं स्वसूयताम् ।
आकाशाभ्यन्तराकाशमन्तर्लक्ष्यं तदेव हि ॥८४॥

लक्ष्यलीनमनत्सा...निलेन यो वर्त्तते ज्वलिततारको महान् ।
(खेचरीपमितिः?) शैवशाम्भवीमुद्रिका स तु तया जगद्गुरुः ॥८५॥

तालुमूले द्वादशान्तमध्ये प्रत्यग्दृशामुनिः।
एवं त्रिज्योतिषि मनो दत्वा निजहृदि स्थिरम् ॥८६॥

(अवरूंबा?) तारकस्य राजयोगं पदं व्रजेत् ।
दृष्टिः सा पौर्णिमा ज्ञेया दृश्यमादौ तमोमयम् ॥८७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तन्मध्ये मनसा पश्य ज्योतिर्लिङ्गं सुनिश्चलम् ।
अखण्डमण्डलाकारं सच्चिदानन्दरूपकम् ॥८८॥

नासाग्रदत्तनिमेषोन्मेषोन्मेषबाह्यदृष्ट्या मध्ये
सदाशिवविमर्शकगूढदृष्ट्या।
ज्योतिस्वरूपविमलं हृदि बाह्यहीनं
पश्यन्त एव इह संयमिनः कृतार्थः ॥८९॥

यदा यो ज्योतिरोङ्कारो ब्रह्मामृतशिवात्मकम् ।
पश्यन्ति सूरयः शान्तं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥९०॥

पूर्णेन्दुबिम्बमणिसन्मणिदीपकेव
मध्याह्नसूर्य इव वह्निशिखेव सत्यम् ।
विद्युत्प्रभेव शिवलिङ्गमहो विचित्रं
लक्ष्यान्तरं ज्वलति पश्यति चक्षुरग्रे ॥९१॥

शृङ्गाटके तत्र मनो नियम्य त्रिकोणमार्गाच्छशिभास्कराभ्याम् ।
बाह्यान्तरङ्गप्रणवै (?) दृष्टीरष्टावधानी हठराजयोगी ॥९२॥

शिवयोगमिदं पुण्यं जीवन्मुक्तिकरं नृणाम् ।
दृग्दृश्यं भावसंबन्धानुन्मन्यन्तं विचिन्तयेत् ॥९३॥

सर्वेन्द्रियगुणरहिता रूपातीता निरञ्जना शान्ता ।
भावाभावविदुरा सहजावस्थेति सा कथिता ॥९४॥

स्वप्नवदखिलं लोकं पश्यन्शरदभ्ररूपमिव चित्ते ।
तिष्ठति सत्तामात्रे स्वप्नावस्थान्वितो महायोगी ॥९५॥

इति श्रीशिवयोगसारसङ्ग्रहः संपूर्णः समाप्तः ।
शुभं भूयात् । श्रीसाम्बशिवाय नमः ।

इदं पुस्तकं गणपतिबावाभक्तियुक्तं सङ्ग्रहेत् । क्षेत्र कर्णालि रेवातीरे ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

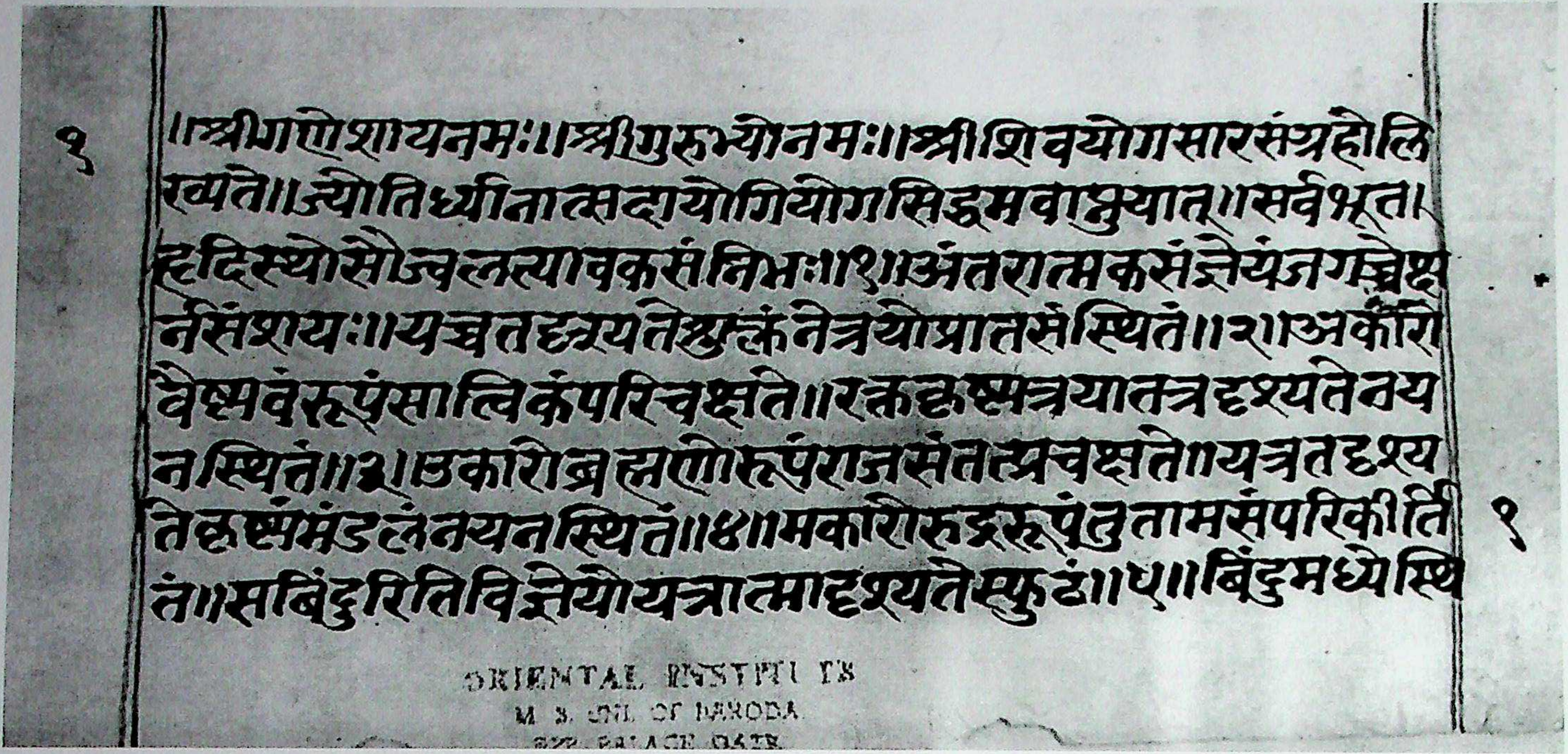

१ ।।श्रीगणेशायनमः।।श्रीगुरुभ्योनमः।।श्रीशिवयोगसारसंग्रहोलि
ख्यते।।ज्योतिर्ध्यानात्सदायोगीयोगसिद्धमवाप्नुयात्।।सर्वभूत।
हृदिस्थोसौज्वलत्पावकसंनिभः।।१।।अंतरात्मकसंज्ञेयंजगत्स्वेष्ठ
नेसंशयः।।यच्चतद्दृश्यतेशुक्लंनेत्रयोप्रांतसंस्थितं।।२।।अकारो
वैष्णवंरूपंसात्विकंपरिचक्षते।।रक्तकृष्णात्रयातत्रदृश्यतेनय
नस्थितं।।३।।उकारोब्रह्मणोरूपंराजसंतत्प्रचक्षते।।यत्रतद्दृश्य
तिकृष्णंमंडलेनयनस्थितं।।४।।मकारोरुद्ररूपंतुतामसंपरिकीर्ति १
तं।।सबिंदुरितिविज्ञेयोयत्रात्मादृश्यतेस्फुटं।।५।।बिंदुमध्येस्थि

ORIENTAL INSTITUTE
M. S. UNI. OF BARODA
PALACE GATE

શિવયોગસારસઙ્ગ્રહઃ, પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, હસ્તપ્રત – ક્રમાંક : ૧૩૧૬૯

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राच्य-विद्यामन्दिर की वार्षिक गतिविधियाँ-२०२१-२०२२

वर्ष २०२१-२२ सत्र में कोरोना के भयावह संक्रमण के पश्चात धीरे-धीरे संस्थान अपने स्वाभाविक जीवन में लौट रहा है । कोरोना के दूसरे चरण में संस्थान के लगभग सभी कर्मी सपरिवार कोरोना के शिकार बनें लेकिन सभी परिजन सफलतापूर्वक इस विपत्ति से बाहर निकल आये । महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय द्वारा चलाये गये वेक्सीनेशन ड्राइव ने इस बीमारी की रोकथाम में बहुत सहायता की । फिर भी संस्थान के नियमित संचालन में व्यघात उत्पन्न हुआ । पूरे वर्ष हमारी गतिविधियाँ निम्न प्रकार रही-

पाण्डुलिपि - विभाग (मेन्यूस्क्रिप्ट सेक्शन)

प्राच्य-विद्यामन्दिर मूलतः पाण्डुलिपि-पुस्तकालय है । इसी कारण से समस्त विश्व के विद्वान यहाँ हस्तप्रतियों की प्रतिछाया लेने के लिए स्वयं आते है अथवा अब ई-मेल द्वारा उसको प्राप्त करते है । कोरोना का प्रभाव अध्ययन एवं शोध की गतिविधियों पर भी पड़ा है । किन्तु अब स्थिति धीरे धीरे सामान्य होती जा रही है । इस वर्ष हमने ७० पाण्डुलिपियों की प्रतिछाया ३२ विद्वानों को ऑन-लाइन उपलब्ध करायी । जिनमें से छः आयुर्वेद के शोधार्थी हैं । इस वर्ष हमें सिद्धनाथ गणेश मन्दिर, गणेशवाडी, वडोदरा से पाण्डुलिपियों का बहुत बडा खजाना दान में मिला है जिनका परिष्करण किया जा रहा है ।

समीक्षित-आवृत्ति विभाग (क्रिटिकल-एडिशन विंग)

समीक्षित-आवृत्ति विभाग की स्थापना **वाल्मीकि-रामायण** की समीक्षित आवृत्ति परियोजना हेतु की गयी थी । परवर्ती काल में इस विभाग ने **विष्णुपुराण** एवं **मार्कण्डेयपुराण** की भी समीक्षित आवृत्तियाँ बना कर संस्था को और उज्जवल किया । इस समय यह विभाग **वायुपुराण** की समीक्षित आवृत्ति तैयार करने में व्यस्त है जिसका कॉनकोर्डेस तैयार हो रहा है । इस वर्ष पूरा ध्यान गयामाहात्म्य (वायुपुराण का एक अंश) के प्रकाशन की तैयारी पर दिया गया । **गयामाहात्मय** का परितुलन/कोलेशन किया जा रहा है जहाँ आठ पाण्डुलिपियों के एक से लेकर आठ अध्याय कोलेट किये जा चुके है । एक से चार अध्याय की समीक्षित आंवृत्ति की टाइपिंग, जांच आदि कार्य हो चुका है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संस्था के प्रकाशन

इस वर्ष **जर्नल ऑफ ओरियेन्टल ईन्स्टीट्यूट** का **७० वा अंक** तथा **स्वाध्याय** का ५७ एवं ५८ वा अंक प्रकाशित किया गया हैं । **जर्नल ऑफ ओरिएन्टल ईन्स्टीट्यूट** के ७१ वें अंक व **स्वाध्याय** के ५९वें अंक की तैयारी पूरी हो चुकी है ।

संगीत मर्मज्ञो के विशेष अनुरोध के कारण इस वर्ष गायकवाड ओरियेण्टल सीरीज (जी ओ एस) के तीन पूर्व प्रकाशनों का पुनर्प्रकाशन किया जा रहा है- संगीत चूडामणि, राग तत्त्वबोध एवं वीणाप्रपाठक । इन तीनो पुस्तकों को एक ही पुस्तक में संकलित किया गया है । पुस्तक का प्रिंटिंग कार्य पूर्ण हो चुका है तथा प्रस्तुतिकरण की अन्तिम तैयारियाँ चल रही है । गुजराती भाषा में **चरकनो स्वाध्याय** का प्रकाशन कार्य समाप्त हो चुका है । एक नयी पुस्तक **आधुनिक गुजरातना संतो** का कार्य चल रहा है । प्राच्यविद्या-मन्दिर में उपलब्ध पाण्डुलिपियों की सूची पुस्तक के पांचवे भाग का कार्य सम्पूर्ण हो चुका है ।

पाण्डुलिपियों एवं पत्रिकाओं की डिजिटल प्रतिकृतियाँ

कोरोना महामारी के प्रभाव के कम होने के साथ ही विद्वानों में शिक्षा सम्बन्धी गतिविधियाँ पुनः आरम्भ हो गई है । वर्ष २०२१-२०२२ में हमने ३२ व्यक्तियों को ७० पाण्डुलिपियों की डिजिटल प्रतिकृतियाँ उपलब्ध करायी । हमारी दोनो शोध-पत्रिकाओं के पुराने अंक और उनमें प्रकाशित लेखों की डिजिटल कॉपी की बहुधा लोगो द्वारा मांग की जाती हैं । इस वर्ष हमने अंग्रेजी पत्रिका के २४ पुराने अंक देश-विदेश में तथा स्वाध्याय की ६१ डिजिटल प्रतियाँ ग्राहकों को उपलब्ध करायी है ।

मुद्रित विभाग (लाइब्रेरी)

प्राच्य-विद्यामन्दिर का मुद्रित ग्रन्थागार अनेक मूल्यवान पुस्तकों की प्रथमतम आवृत्ति के अधिकारी के रूप में विख्यात है । अनेकों भाषाओं में प्राच्य-साहित्य की पुस्तकों, भारतीय-विद्या (इन्डोलॉजी) की पत्रिकाओं के आकर्षण से अनेक विद्वान यहाँ दौड़े चले आते हैं । हमारी संस्था द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं **-जर्नल ऑफ ओरिएन्टल इंस्टीट्यूट** (जे ओ आई) तथा **स्वाध्याय** के एवज में हमें १०४ पत्रिकायें निःशुल्क प्राप्त होती हैं । इस वर्ष हमें २८५ पत्रिकायें प्राप्त हुई हैं । ३५० नयी पुस्तकें हमारे पुस्तक-भंडार में सम्मिलित हुई हैं । बहुधा विद्वान-गण किसी पुस्तक-विशेष की डिजीटाइज कॉपी अथवा **गायकवाड ओरिएण्टल सीरीज** की पुस्तक की डिजिटाइज कॉपी या फिर हमारी पत्रिकाओं में छपे पुराने लेखों की प्रतिकृति की माँग करते हैं तो उन्हें हम वह भी उपलब्ध कराते हैं । हमारी लाइब्रेरी मात्र वाचनालय है अर्थात यहाँ बैठ कर ही पुस्तक/पत्रिका का वाचन किया जा सकता है, पुस्तकें इश्यू नहीं की जाती । प्रतिदिन १०-१५ पाठक/शोधछात्र हमारी लाइब्रेरी का लाभ लेते है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पाण्डुलिपि-रक्षण एवं संरक्षण परियोजना

नेशनल मिशन फॉर मेन्युस्क्रिप्ट नई दिल्ली ने प्राच्य-विद्यामन्दिर, वडोदरा को **पाण्डुलिपि-रक्षण एवं संरक्षण परियोजना** के लिए गुजरात क्षेत्र का **संसाधन केन्द्र (रिसोर्स सेन्टर)** चुना है । संस्था में यह परियोजना दि. १.३.२०१९ को आरम्भ हुई । लम्बे समय तक चलने वाली इस परियोजना में अभी तक इसके अन्तर्गत ३०००० पाण्डुलिपियों के पृष्ठों को धूल एवं अन्य क्षतियों से मुक्त कर उनका उपचार किये जाने की योजना है । अभी तक लगभग ६०००० पृष्ठों का संरक्षण किया गया है । पाण्डुलिपियों के पृष्ठों को न केवल धूलादि से मुक्त कर अम्लरहित (De-acidification) किया जाता है बल्कि टूटे हुए पृष्ठों को जापानी टिशू पेपर का आवरण देकर नया जीवन दिया जाता है । इस वर्ष ८००० पृष्ठों का इस प्रकार संस्कार किया गया है ।

गुरुपूर्णिमा और सरस्वती-पूजा (नवरात्रि) का आयोजन

प्रतिवर्ष की भाँति इस बार भी गुरुपूर्णिमा का आयोजन श्रद्धापूर्वक किया गया । इस वर्ष यह दि. २३ जुलाई २०२१ को आयोजित की गई जिसमें गुरुवन्दना के स्तोत्र तथा गुरु प्रणाम के मन्त्रों का गायन किया गया ।

आश्विन माह की नवरात्रि पर हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी मूल-नक्षत्र (सप्तमी २१ अक्टूबर २०२०) में माँ सरस्वती का आवाहन किया गया एवं श्रवण नक्षत्र (नवमी २३ अक्टूबर २०२०) को विसर्जन किया गया (**मूले आवाहनं श्रवणे विसर्जनम्**) । तीन पुरोहितों द्वारा मन्त्रोच्चारण द्वारा विधिपूर्वक देवी का आवाहन किया गया । अगले दो दिन उत्साहपूर्वक गरबा नृत्य का आयोजन किया गया जिसमें युनिवर्सिटी प्रेस के कर्मियों ने भी हर्षोल्लास से भाग लिया ।

प्राच्य-विद्यामन्दिर के अभ्यागत (विजिटर्स)

कोरोना के यदा-कदा पुनरागमन के कारण दूसरे चरण तक लोगो का शहर में आवागमन सामान्य नहीं हो पाया था । किन्तु कोरोना का तीसरे चरण में ही संस्था में अभ्यागतों की आवाजाही आरम्भ हो गयी । वर्ष २०२१-२२ में चालीस लोगो ने जिनमें विद्वानों, आई टी क्षेत्र से जुड़े व्यक्तियों, डाक्टरों, आधिकारिक वर्ग के व्यक्तियों, हेरिटेज वाकर्स ने संस्था की मुलाकात ली । इनके अतिरिक्त स्वामीनारायण संस्था (BAPS), सारंगपुर के अठारह, महाराजा सयाजीराव वि. वि. के फाइन आर्टस् विभाग के तीस विद्यार्थियों ने भी संस्था का अवलोकन किया । हम निरन्तर आस-पास के विद्यालयों व कॉलेजो के विद्यार्थियों को हमारी संस्था के अवलोकनार्थ प्रोत्साहित करते रहते है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सौंदर्यलहरी

(शंकराचार्यविरचिता)

(Text in Sanskrit with Translations in English, Hindi, Marathi and Gujarati with Multi-Colour Pictures)

Edited by

R. I. NANAVATI

Translation

English : HARISH ZAVERI

Hindi : RADHAVALLABH TRIPATHI

Marathi : SAROJA BHATE

Gujarati : R. I. NANAVATI

General Editor

M. L. WADEKAR

First Edition 2013

Price : Rs. 1000/-

Copies available at :

The University Publications Unit
General Education Centre
A. I. C. S. Building
Opp. C. C. Mehta Auditorium
Pratapgunj, Vadodara - 390002
Ph. No. 0265 2781700

The University Facilitation Centre
Below University Head Office
Fatehgunj
Vadodara-390002
Ph. No. 0265 2795555

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Statement about the ownership and other particulars about newspapers

SVĀDHYĀYA (स्वाध्याय)

(To be published in each issue)

FORM IV

(See Rule 8)

1.	*Place of the Publication :*	**Oriental Institute** The Maharaja Sayajirao University of Baroda Vadodara-390 001
2.	*Periodicity of its Publication :*	**Annual**
3.	*Printer's Name :* *Nationality :* *Address :*	**Jatin H. Somani** Indian Manager. The Maharaja Sayajirao University of Baroda Press (Sadhana Press) Vadodara - 390 001
4.	*Publisher's Name :* *Nationality :* *Address :*	**Dr. Sweta Prajapati** Indian C-62, Akshardham Society Aksharchawk,Vadodara - 390 020
5.	*Editor's Name :* *Nationality :* *Address :*	**Dr. Sweta Prajapati** Indian C-62, Akshardham Society Aksharchawk,Vadodara - 390 020
6.	*Names & Addresses of Individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one percent of the total capital*	**The Maharaja Sayajirao University of Baroda** Maharaja Fatehsinghrao Gaekwad Road Fatehgunj Vadodara - 390 002

I, Sweta Prajapati, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dr. Sweta Prajapati
Signature of Publisher

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लेखको से :

१. पृष्ठ के एक तरफ ही यूनिकोड फॉन्ट (१४ प्वाइन्ट में) टाइप कर आलेख की सॉफ्ट कॉपी निम्न ईमेल पर भेजें - director-oriental@msubaroda.ac.in

अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जायेंगे।

२. लेख में यदि उद्धरण, अन्य विद्धानों के मंतव्य आदि उद्धृत किये जाये तो उनका पूरा- पूरा विवरण देना अनिवार्य है। पादटीप (फुटनोट) में संदर्भ का विवरण देते समय इस क्रम में लिखें - लेखक अथवा संपादक/संशोधक का नाम (उपनाम/सरनेम पहले), पुस्तक का नाम, प्रकाशक, प्रकाशन-वर्ष, आवृत्ति (वोल्यूम/अंक संख्या), पृष्ठ संख्या।

३. स्वाध्याय में प्रकाशित सभी लेखों का प्रकाशन अधिकार (कॉपीराइट) प्रकाशक - प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा के अधीन हैं। लेखक अथवा अन्य कोई व्यक्ति लेख का कोई भी अंश प्रकाशक की लिखित आज्ञा के बिना पुनः प्रकाशित नहीं कर सकता।

४. ग्रन्थों अथवा लेखक के लिये प्रयुक्त संक्षेप-शब्दों (एब्रीवियेशन) का प्रयोग करने से पहले उनका पूरा-पूरा रूप पहले उल्लेख किया जाना चाहिए, साथ ही आगे प्रयोग किया जाने वाला संक्षिप्त रूप भी संकेतित किया जाये ताकि पाठक को किसी प्रकार की दुविधा न हो।

५. पादटीप (फुटनोट) का क्रम पूरे लेख में लगातार रखा जाना चाहिए (संख्या एक से आरम्भ करके) तथा लेख में उन्हे यथा - स्थान निर्देशित करना चाहिए।

स्वाध्याय

स्वाध्याय एवं संशोधन की वार्षिक पत्रिका

संपादक : श्वेता प्रजापति

एक वर्ष में पत्रिका का एक अंक प्रकाशित किया जाता है जिसकी सदस्यता शुल्क निम्न रूप से है :

भारत में - ₹ ३००.०० (डाक व्यय सहित)

विदेश में - यूनाइटेड् स्टेट्स ऑफ अमेरिका के लिये - $ ५०.०० (डाक व्यय सहित)

सदस्यता-शुल्क निम्नलिखित पते पर चेक द्वारा भेजा जाना चाहिए -

नियामकश्री

प्राच्यविद्यामंदिर

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, राजमहल गेट के पास

राजमहल रोड, वडोदरा - ३९०००१

फोन नं. ०२६५-२४२५१२१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Regd. No. 9219/63

लेखक - विवरण

- **बनमाली बिश्वालः**
केन्द्रीय-संस्कृत-विश्वविद्यालयः ५६-५७, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी, नई दिल्ली - ११००५८
M: 09450781742, Email: banamali7@gmail.com
- **रवीन्द्रकुमारः पण्डा**
संस्कृतपालिप्राकृत-विभागः, महाराजा सयाजीराव-विश्वविद्यालयः वडोदरा, M: 09974262038
Email: panda_rabindra@rediffmail.com
- **अनिलकुमारः**
साहित्यविभागः, केन्द्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, श्रीरधुनाथकीर्तिपरिसरः, देवप्रयागः, पौडी गढवालः, उत्तराखण्डः - २४९३०१
M: 09968115307, Email: anillbs.kumar@gmail.com
- **वी. सौम्यनारायणन्**
संस्कृतविभागः, द्वारका डोस गोवर्धन डोस वैष्णव कॉलेज, अरुम्बक्कम्, चेन्नई - ६००१०६
M: 09884462729, Email : anusowmyan@gmail.com
- **एस. नरसिम्हन्**
संस्कृत विभागः, द्वारका डोस गोवर्धन डोस वैष्णव कॉलेज, अरुम्बक्कम्, चेन्नई - १०६
M: 08778798755, Email : srinarasimhan05@gmail.com
- **बी. केशवप्रपन्नः पाण्डेयः**
संस्कृतविभागः, द्वारका डॉस गोवर्धन डॉस वैष्णव कॉलेज, अरुम्बक्कम, चेन्नई - १०६
M: 08124970316, Email: keshavaprapanna@gmail.com
- **वी. बालाजी**
द्वारका दास गोवर्धन दास वैष्णव कॉलेज, अरुम्बक्कम्, चेन्नई - १०६, M: 09791699411, Email: balbalram1990@gmail.com
- **शर्मिला बागची**
प्राच्यविद्यामन्दिर, म.स. विश्वविद्यालय, वडोदरा - ३९०००१, M: 09426947941, Email: bagchisharmila3@gmail.com
- **नन्दकिशोर मिश्र**
प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय वडोदरा, M: 09998807874, Email: mishrank187@gmail.com
- **धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी**
श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची, M: 07992362827, 09431590113
Email : dvd74@rediffmail.com; dvd1309@gmail.com
- **सत्यव्रत वर्मा**
७/३४, पुरानी आबादी, नामदेव फ्लोर मिल के पास, श्रीगंगानगर - ३३०५५१, M: 08778798755
Email : srinarasimhan05@gmail.com
- **शैलेश कुमार मिश्र**
राजकीय संस्कृत कॉलेज, कुम्हारटोली, किशोरगंज, राँची - ८३४००१ (झारखण्ड)
M: 09409494111, Email: profgtvekariya@gmail.com
- **गोविन्दकुमार टी. वेकरिया**
हिंदी विभाग, म्युनि. महिला विनयन कॉलेज, गोंडल, जिला-राजकोट - ३६०३११
M: 09409494111, Email: profgtvekariya@gmail.com
- **કિરણ ન. શીંગ્લોત**
યોગનિકેતન, પોસ્ટ ઑફિસ સામે, ફતેગંજ ચાર રસ્તા, વડોદરા - ૩૯૦૦૦૨
M: 09426392888, Email: kshinglot@yahoo.co.in
- **મનસુખ કે. મોલિયા**
સંસ્કૃત ભાષાભવન, સૌરાષ્ટ્ર યુનિવર્સિટી, રાજકોટ - ૩૬૦૦૦૫, M. 09687692933
- **જે. કે. ઉમરેઠિયા**
પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, મ. સ. વિશ્વવિદ્યાલય, વડોદરા, M: 09427849843
- **શ્વેતા પ્રજાપતિ, હર્ષલ ભટ્ટ**
● પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, મહારાજા સયાજીરાવ વિશ્વવિદ્યાલય, વડોદરા, M. 09898472669
* સંસ્કૃત,પાલિ અને પ્રાકૃત વિભાગ, કલા સંકાય, મહારાજા સયાજીરાવ વિશ્વવિદ્યાલય, M. 07874965787

સંપાદક અને પ્રકાશક : ધી મહારાજા સયાજીરાવ યુનિવર્સિટી ઑફ બરોડા વતી ડૉ. શ્વેતા પ્રજાપતિ, કાર્યકારી નિયામક, પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, મહારાજા સયાજીરાવ વિશ્વવિદ્યાલય, વડોદરા

મુદ્રક : જતીન એચ. સોમાણી, મેનેજર, ધી મહારાજા સયાજીરાવ યુનિવર્સિટી ઑફ બરોડા પ્રેસ (સાધના પ્રેસ), રાજમહેલ દરવાજા પાસે, રાજમહેલ રોડ, વડોદરા-૩૯૦ ૦૦૧, જૂન ૨૦૨૨

MSUP-5068-100+5-6-22